

**TEXT FLY
WITHIN THE
BOOK ONLY**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186339

UNIVERSAL
LIBRARY

*** OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY**

Call No.

^RH
80.5

Accession No. ^H3438

Author

A21-

Title

3154-77

This book should be returned on or before the date
last marked below.

तीस-चालीस वर्ष पहले तक बेतार का तार गप्प या जादू माना जाता था। आज सब देखते, सुनते और समझते हैं कि वह केवल एक वैज्ञानिक यन्त्र है। इसी तरह हमारे भी यह नीचे बताया यन्त्र है जो सब सच्चे हैं और बिना किसी मेहनत-परेशानी कौड़ियों के खर्च पर आपको न सिर्फ लक्ष्मि बना देंगे बल्कि हर समाज में आपको मान-प्रतिष्ठा दिलाएँगे। जादू-सम्राट् का सम्मान राजा से कम नहीं होता। यह सब शो घर बैठे ही केवल एक दिन में सहज ही सीखे जा सकते हैं और फिर दूसरे ही दिन कहीं भी कभी भी दिखाए जा सकते हैं। कोई सिद्धि कोई जप नहीं करना पड़ता। प्रत्येक शो में वर्षों तक काम देने वाला उसका पूरा बना बनाया तैयार सेट, उसकी सरल और पूरी विधि सहित भेजा जाता है।

* **मैजिक बक्स** : इस बक्स में ताश का पता जला कर डाल देने से फिर खोल कर देखने पर वह पता सही और साबुत निकलेगा। मादा कागज जला कर डालने पर, नोट और रुपया डालने पर एक बार वह गायब हो जाएगा और दूसरी बार मिल जाएगा।
मूल्य २)

* **मैजिक फ्लेमेल** : इसको रस्ती ही नहीं, किसी पुरुष की भी देह से छुआते ही इसमें से दूध की धारा निकलने लगेगी और इसको हटाते ही धारा निकलना बन्द हो जाएगी। मूल्य २॥)

* **मैजिक गेंद** : यह रंग-बिरंगी गेंद सूत की डोर में पिरोई हुई है। आपके आदेश पर यह चलेगी-दौड़ेगी और रुकेगी। मूल्य १॥)

* **तिरलोचनी** : इस छोटी-सी लकड़ी में तीन छेद हैं। किसी में, चीन के छेद में सीक डालने को कहने पर वह सीक को सिरवाले छेद में ही डालेगा। मूल्य १)

* **कागज से नोट** : मादे कागज को जला कर उसकी राख से सबके देखते-देखते नोट बना देना।
मूल्य १॥)

* **मैजिक मिस्ट्रीज़** : इसके द्वारा अपनी आँखों पर पट्टी बंधवा कर आप खिख सकते हैं, पढ़ सकते हैं और मोटर साइकिल चला सकते हैं। बहुत बड़ा जादूगर जब किसी नगर में जादू-विद्या का प्रदर्शन करना है तो पहले दिन अपनी आँखों पर पट्टी बंधवा कर इसी के द्वारा मोटर साइकिल से नगर के प्रमुख मार्गों पर चल कर सहज ही नागरिकों पर अपना प्रभाव चमा देता है।
मूल्य ५)

* **तिव्यत का बक्स** : किसी दर्शक की घड़ी इस बक्स में उठी से रखवा कर और ताला लगवा कर बक्स उसी को दे दिया जाता है। परन्तु फिर ताला खोल कर देखने पर उसमें घड़ी नहीं मिलती। वह दूर मेज पर रखी डबल रोटी के काटने पर उसके अन्दर से निकलती है।
मूल्य ३॥)

* **विचित्र गोला** : यह एक गोम रंगीन गोला सबके सामने देखते-देखते हाथ ही हाथ में एक से दो, फिर तीन और फिर चार बन जाते हैं। इसके बाद चार के तीन, दो और अन्त में एक रह जाता है। मूल्य ३)

* **मास्टर मैजिक** : सबके सामने दर्शक के हाथ में से अंगूठी उड़ कर दूर रखे गिलास में पहुँच जाती है और फिर वहाँ से भी गायब हो कर डबल रोटी के अन्दर में निकलती है। मूल्य ३॥)

* **ताश का पूरा सेट** : ताश के नवीन चमत्कार के इस पूरे सेट द्वारा आप ताश के बीसों खेल दिखा कर धुरन्धर विद्वानों को भी चकरा कर और हैरत में डाल देंगे।
मूल्य ११)

* **मैजिक सिगरेट** : हवा में से दर्जनों असली सिगरेटें पकड़ लेना और चाहते ही नुरन्त सबको हवा में उड़ा देना। मूल्य २॥)

* **मैस्मेरेजम शो** : लकड़के को जमीन पर छिटा कर और चादर में ढँक कर बेहोशी के हालत में उससे सारे दर्शकों के अजीबो-गरीब प्रश्नों के उत्तर ठीक-ठीक बता देने का गुप्त रहस्य इस कोर्स द्वारा आप घर बैठे ही केवल एक दिन में सीख जाएँगे और फिर आप दूसरे ही दिन अपने आपको "मैस्मेरेस्ट" प्रसिद्ध कर सहज ही धन-मान और यश प्राप्त कर सकेंगे। फ्री ३)

नोट :—(१) वीथ रुपए से कम का माल नहीं भेजा जाता। (२) माल की कम-से-कम चौथाई कीमत पहले अपनी वांछिए।

१४३, यूनाइटेड मैजिक कम्पनी प्राइवेट लिमिटेड, झुंरावाबाद.

Phone No. 4907

N. NARSIMLU

CLOTH MERCHANT

**SULTAN BAZAR NEAR KOTHI
HYDERABAD-DN.**

STOCKISTS
LATEST DESIGN
SILK &
HANDLOOM SAREES
ALL
CENTERS OF INDIA
&
GENTS DRESS
MATERIALS
&
BINNEY & METTUR
DEALERS
DURABLE FOR DAILY USE &
ATTRACTIVE FOR
MARRIAGE PURPOSES

**TRY ONCE
BE SATISFIED.**

**Guaranteed Radical &
Permanent Cure**

FOR

Prematured Grey - Hair
Cowasjee Jiwanjee Memorial Lab's
Genuine Offer

**SHYAMLA
BAL-KALA POWDER**
AYURVEDIC.

- ❖ Breaks Hair-Dye Habit
- ❖ Restores Lustre & Blackness
- ❖ Harmless to Skin Brain & Vision
- ❖ Can be used for Beard &
Moustaches
- ❖ No bad Odour
- ❖ Leaves No Stain
- ❖ Use once a Week for 20 Weeks

Sole Agents (for 2 years only)

M/s. 'ROOPAM'

Chil Bunda, Sultan bazar, Hyderabad

जालिम लोशन

दाद खुजली की मशहूर दवा

दक्षिण भारत के तमाम शहरों में

डिस्ट्रीब्यूटर्स

चाहिए

भरपूर कमीशन माल उधार प्राप्त करने की सहूलियत भी
दी जा सकेगी।

दवाइयां बेचने का अनुभव रखनेवाले ही हिन्दी अथवा
अंग्रेजी में लिखें।

पता :

ओरिएण्टल केमिकल वर्क्स

राउ (इन्वॉर) म० प्र०

अज्ञान

सचित्र मासिक पत्रिका

वर्ष ११

अक्तूबर-नवम्बर १९५६

अंक १०-११

सम्पादक

वंशीधर विद्यालंकार, विद्यामार्तण्ड

संपालक

हिन्दी ग्रन्थार सभा, हैदराबाद-दक्षिण

अनुक्रम

गीत	भारतीय संगीत के वर्षाकालीन राग	
विनोद रस्तोगी	१ चित्तरंजन ज्योतिषी	५७
खोलो द्वार	स्व० नाथूराम माहौर	
प्रवासी	२ हरिनारायण 'विद्रोही'	६०
में	चन्द्रगुप्त नाटक की परम्परा	
अंबाशंकर नागर 'अमिताभ'	३ डॉ० गोपीनाथ तिवारी	६४
अगवानी कर देना	दो कथाएँ	
विद्यानन्दन 'राजीव'	४ रावी	७३
पावस	अवधी भोजपुरी और राजस्थानी : प्राम गीत	
श्रीकृष्ण शर्मा	५ कुमारी माया सक्सेना	७५
मोटिकारलो डायरी के कुछ पृष्ठ	बाघ—एक शिकारी की दृष्टि में	
चनरयाम ठेंगी	७ यशोवती देवी	७६
भारत का प्राचीन विश्वविद्यालय : तच्छशिला	कला-चर्चा	८३
बनारसीलाल आर्य	१४ भारतीय काव्य और कला में वर्षा ऋतु, हमारी कलाओं में दीपावली का स्वरूप	
जिनका नाम ही है : "शान्तिप्रिय लोग"	२० प्रेरणा का स्रोत	
रमेशनारायण तिवारी	चिट्ठी पत्री	८७
सोवियत संघ का प्रथम सन्त : क्रोपाटकिन	२३ अरविन्द मालवीय, पी. एम्. दोड के, कला-प्रेमी	
चिरंजीलाल पाराशर	२८ नीर-क्षीर	९०
आगरा की यात्रा	हिन्दी और कन्नड़ में भक्ति आन्दोलन, सुगुप्ते-ब्रजभाषा और उसका साहित्य, विज्ञान जगत, बापसी, मैत्रीभाव, चित्र कुमारी सभा, देवताओं के देश में, चन्द्रगुप्त मौर्य, हमारे सहयोगी, नागिन और बुलबुले	
श्याम मामचन्द्र कौशिक	३५ सामयिक	९६
डॉ० राधाकृष्णन् और पश्चिम	तेलुगु साहित्य का आदि काल तथा आदि कवि,	
नि. छ. जमींदार	४८ चीन की चित्रकला-पद्धति,	
विवाह-वेदिका	सम्पादकीय	९६
अनु० बालशोरि रेड्डी	५३ वंशीधर विद्यालंकार	
नई कविता के प्रति राजस्थानी दृष्टिकोण		
नरेन्द्र कुमार भनावत		
शरीफ आदमी		
चिरंजीलाल पागशर		
जब लकीरें नहीं मिलती		
बिहारी सरण चौबे		



वर्ष ११

अक्तूबर-नवम्बर १९५९

अंक १०-११

गीत

किरनों की डोली पर चढ़ दीपावलि आई है
 आज तमिस्रा की प्रकाश से हुई सगाई है
 दीपों की बरात मजीली
 नवल वधू-सी रात लज्जिली
 वरग किया आलोक, लोक में बजी बधाई है
 मंगल मिलन हुआ, गूँजी मीठी शहनाई है
 नई नमंगों का मेला है
 प्रीत-पवे, पावन बेला है
 माटी सोना बनी, स्नेह की तरल जुन्हाई है
 श्याम अमा के घर गोरी पूनम सुरकाई है
 रजनीगन्धा खिली चाह की
 टूटी सीमा ज्योति राह की
 घर-घर द्वार-द्वार पर छाई नव तरुणाई है
 जन-जन ने बन कृष्ण ज्योति मौसुरी बजाई है

खोको द्वार

खोलो द्वार, खोलो द्वार
 हे मन,
 खोल दो
 वातायन, द्वार मसी
 तपती बयारों को आने दो :
 आरोही कामना डाट बिछुड़े मृग सी
 रेती में भटकी है, खुलसी है, भागी है,
 अपने आजातु दो बाँहों की छाँह में
 शरण उसे पाने दो

लाल-लाल, पीले-पीले
 ये जो अभिरागों के फूल उबे आते हैं,
 ये हैं निर्मल्य,
 इन्हें शीश गद्दो,
 नमन कहो
 कुण्डा के ब्याल तान फण जो फुत्कार रहे,
 ये हैं वरमाल,
 इन्हें डँसने दो,
 मौन सहो

उमड़ो मत
 कजरारे भावों के सावन घन,
 उमड़ो मत
 घुमड़ो
 बस, घुटो, गलो, जलो
 किन्दु,
 तड़ितों में तड़पो मत
 शिव की अटाओं सी फैली है वाणी की माया जो
 आओ, बस जाओ, इस कुन्तल में रम जाओ
 जन-जन के कुसिठत प्राण प्यासे हैं,
 शापित सगर-पुत्र आसे हैं, आसे हैं
 उतरो इन चारों में, इन्हें गद्दो,
 गीतों की गंगा बन बहो बहो

मैं

बाँध सकते हैं न मुझको
जब * जगत के लुप्त बन्धन
रोक सकते हैं न मेरा
मार्ग भ्रष्ट या प्रभञ्जन

मे नहीं हिम जो कि रवि के
प्रस्तर कर से पिघल जाता
मे नहीं अग्नि जो मुकुल पर
मुरध हो पथ भूल जाता

मे नहीं शतदल जिसे
जब चाहता सज्जिता खिलाता
मे नहीं खातक जिसे
जब चाहता स्वाती पिलाता

मे न केकी कोकिला
घन घुमड़ कर जिनको मना ले
या शलभ जिसको कि कोड़े
दीव दीपित कर बुला ले !

मे न होकर भी नहीं हूँ
रिक्तता का अंश आली
आज मैंने दासता की
शृङ्खलाएँ तोड़ डालीं

अगवानी कर देना !

जीवन जब कोई पन्थ नया निर्माण करे
तुम फूलों से उसकी अगवानी कर देना !

निर्मित रेखाओं पर चलना कुछ कठिन नहीं
संकल्प चाहिए नई लकीर बनाने को,
निष्ठा हो गति की अमिट सदा अन्तर्तम में
मंजिल में निज चरणों का व्याह रचाने को;

पदतल आकर जब कोई शूल समा जाए
उसकी पीड़ा जानी अनजानी कर देना !

जब तरी छोड़ कर चल दे मोह किनारे का
डूबे उतराए भँवरों में मत्तभारों में,
वीणा दे छोड़ पुरातनता अपने स्वर की
साधे कुछ राग नए अपनी भँकारों में

उस समय प्रगति के बोल स्नेह से दुहरा कर
तुम तार-तार में नई जवानी भर देना !

युग-क्रम से कभी तिमिर जब बहुमत पा जाए
बंध जाए जब आलोक कठिन जंजीरों में,
उन्मुक्त उमे करने में सब आश्रय धकेँ
उजियाला भटके रातों की प्राचीरों में

उस समय ज्योति का आकर जो कल्याण करे
तुम फूलों से उसकी अगवानी कर देना !

पावस

किसके नयनी की घटा लू गई है
जो हुआ हवाओं का आँचल- गीला
किस भावुकता का सिंधु उमड़ आया
जो मेरे प्राणों का मरुथल गीला ?

खिल रहे घास में फूल चाँदनी के
यह उषा हँस रही आज करीलों पर
यह भीनी-भीनी गंध करौंदों की—
है बाँट रही मेंदरी मुहाग घर-घर

दादुर, जो पूजन-अर्चन में वेसुध
वह तो मन्दिर के नए पुजारी हैं
जो लगा चुके दाँव पर सभी अपना
वह बादल हारे हुए जुआरी हैं

पश्चिम के तट पर बैथी सुबह से हैं—
अब तक दो-एक बादलों की नौका;
किस चित्रकार की तूली से बनता—
यह चित्र शेर का और कभी गौ का ?

टप-टप-टप टपक रहा भीमे-भीमे
तरु से बरखा का थमा हुआ पानी
अब दूरे-दूरे पातों से भर आई—
पीपल की सूनी डाली पहचानी

खो सकान नभ की गहन नीलिमा में—
वह धुआँ अटक कर गीले छप्पर से
बह गई धूप बरसाती नदिया में
अंधियारा आया है दिन-दुपहर से

किस जयद्रथ को फिर अर्जुन मारेगा—
जो आज सौम्य के बाद दिवस फूला
रेशमी घात रंगों की बोरी से—
पक गया उधर किस रंगिनी का झूला ?

आँचल में सूरज रखा बदलियों ने
मेघों के शिखर लाल—नीले—पीले
मेरी पलकें खुलते ही छिप जाते—
वे तेरे सपने कितने शरमिले ?

नभ की इस विद्युत में मेरे मन का—
दरपन है, व्याकुलता के दर्शन हैं
ये किसकी रूप-ज्वाला में जल-जलकर
गल रहे आज भोमीले पाहन हैं ?

यौवन पर मेरी सुधियों की यमुना
मेरे मनमोहन तुम्हें कहाँ पोंछ
जो चूम तुम्हारे अरुण गुलाबों को
मैं एक वक्रान की भोंति उतर जाऊँ ?

मोंटिकारलो डायरी के कुछ पृष्ठ

रात काफ़ी जा चुकी है। अपनी चागपाई पर पड़ा मैं 'मेनसियोन, की चौथी मंजिल के डम कमरे की खिड़की से बाहर समुद्र में उठती हुई लहरों और उनमें नृत्य कर रहे, मोंटिकारलो की रौशनियों के प्रतिबिम्ब देख रहा हूँ। आज मोनाको नरेश-रेनर और साम्राज्ञी प्रेस क्लब की कन्या करोलिन एक मसाह की हो गई है। पारा मोंटिकारलो नववधूक भ्रमान्ध्रगार में डूबा हुआ है। क्योंकि शाहजादी करइते बीम हज़ार की जन-संख्या वाला, संसार का यह सब से छोटा देश पराधीन नहीं हो सकता। इसी खुशी में 'होटल दी पारी' वाले, पिछले तीन महीनों से, अपने ग्राहकों को मुफ्त 'शेम्पेन' पिला रहे हैं। आज दिन में छासी गरमा-गरमी और रेल-पेल रही। कैरोलीन रौ रही थी इसीलिए उस नौद की दवा पिला कर जलूप के आगे-आगे चर्चें तक ले जाया गया। सारा रास्ता लाल फूलों और श्वेत 'रिबनो' से सजा दिया गया था। सुना है फूलों पर उठा, आज के दिन का खर्च, लग-भग दम हज़ार पाउंड है। आतिथियों में बेगम आयाखों भी थीं। आज मैंने मित्र के भूतपूर्वक शाह फारुक को देखा। सुना है वह रेनर से मिलने के लिए आए थे, पर मोनाको नरेश की व्यस्तता के कारण भेंट नहीं हो सकी। अगले क्लाक के 'इंग्लिश चर्च' को भी प्रकाशित किया गया है। जल-जल कर मोमबत्तियों बुझ रही हैं। चर्च के पोर्टिको पर बने 'क्रॉस' पर एक हरी बत्ती जल रही है। और दूर तथा निकट के गिरजों की घंटियों की आवाज़ें तक दू परे में टकरा-टकरा कर एक अजीब-सी गूँज पैदा कर रही हैं और स्मृति की स्लेट पर न जाने कौन-सी रेखाएँ ताज़ा होना चाहती हैं और मुझे अपने शेरार में झोंकने पर विवश कर रही हैं... मैं मों के मंदिर में हूँ। जन्माष्टमी है, पर मैं मंदिर में इसलिए नहीं हूँ कि जन्माष्टमी है, या मुझे पूजा देखने या करने का शौक है, या मैं यहीं संमरता हूँ कि पूजा क्या है, किस लिए है और क्यों—मैं तो धिक्क यह दिखाने आया हूँ कि मैं भी रात भर जाग सकता हूँ—हमने भजन गाए, आज उनके शब्द याद नहीं, अर्थ याद नहीं, परन्तु वह सारा वातावरण जैसे

आँखों के सामने जीवित हो उठा है। घंटियों का वह संगीत, वह उदास-उदास से स्वर, अलसाए से, थके से किन्तु शान्त और श्रद्धा और लगन से भगपुर.. वह मजा सजाया, गोटी-किनारे लगा झुलना और उसकी वह सुनहरी डोर। करमीर नरेश के आने ही श्रद्धा भरा वह प्रिय मसाला और गरमीर नरेश-व्यथा से युक्त वह वातावरण... सोचता हूँ आज वह मंदिर शायद वही तरह हो, पर मैं, मों और अन्य उपस्थित स्त्री-पुरुष, बालक-बालिकाएँ और बृद्धः कया हम, और वह सब भी वैसे ही और वही हैं। आज मंदिर की वह घंटियाँ सुनी पड़ गई होंगी। डोरी को हिलाने वाले मेहरी रंगे वह नरम और नाजुक हाथ शायद बरतन गड़-गड़ कर भेदे और खुरदरे हो गए होंगे; मंदिर के आँगन में सुनमान छाया होगी—मैंने भी तब से वह मंदिर कितनी बार देखा है ! उमर, बढ़ी, देखा सुना, समझा जमाना बदल गया है। न वह फुरसत है और न वह करागत। यह नहीं कि तब समस्याएँ नहीं थीं, या जमाना उतार चढ़ाव भूल गया था या मानव-मानव के रक्त का प्यासा नहीं था, परन्तु तब आँखें दुनिया के चिन्नों पर पड़ की ओर से बन्द थीं, दृष्टि परिपक्व नहीं थी और मस्तिष्क प्रौढ़ नहीं था। समझ से यह बात बालातर थी कि करमीर की वह सत्ता बम्बई के रेव-कोर्ष में चुक-दौड़ पर दौंव भी लगा सकती है—फारुक देश से बाहर भी भटक सकता है और एक मामूली रजवाड़ा उससे मिलने से भी इनकार कर सकता है। बचपन की सब से बड़ी खूबी शायद यही है कि हमारी आँखें बन्द होती हैं; तरकालीन उल्लास और सन्तोष का रहस्य भी यही है।

... गिरजे की घंटियाँ अब खामोश हो गई हैं लेकिन एकाएक नीचे 'केसीनो' के बारकेस्टू का प्रत्येक अंग बज उठा है; कुछ ऐसे, जैसे कोई गहरी नींद में से हड़बड़ा कर उठ बैठा है। शेम्पेन बहर रही है और लोग शेम्पेन में बह रहे हैं। आज यहाँ 'महा-भोज' है—होटल दि पारी, मैं भी यह जानने की रात है।

५२ जातियों के २०,००० व्यक्तियों की जन-संख्या

लिए ३७० एकड़ में फैला यह देश अब वह नहीं है, जिस की रंगा-रंगी और विलासिताओं की समूचे जगत में धूम है। फ्रेंच रिवियरा से दस-बारह मील की दूरी पर स्थित इस देश की दुनिया एकदम अजीब किस्म की है—जो काल्पनिक और रहस्यात्मक अधिक है और जिसमें यथार्थता कम है। मोनाको, जिसे सब मोटिकारलो कहते हैं 'ऐस दि चेन' के दामन में एक ऊँची चट्टान पर इस प्रकार अवस्थित है कि यदि दूर से देखा जाए तो 'ओपन एयर सिनेमा' प्रतीत होता है। इसके उत्तर पश्चिम और पूर्व की ओर फ्राँस और दाक्षिण की ओर भूमध्य महासागर का नीलमाला-युक्त पानी और एष्यम का धवल पवैतीय क्रम है। छोटे से इस स्वाधीन राज्य के प्रजापति का नाम है रेनर, जिस की अवस्था ३३ वर्ष के लगभग है। रेनर सन् १९४६ में अपने दादा लूई की मृत्यु के पश्चात् मिहसिन पर बैठा। धनिकों की विलास-लीलाओं की इस केन्द्र-भूमि का इतिहास, वास्तव में बड़ा अद्भुत है। शाहजादा रेनर का परिवार सन् १७३१ में, नेपोलियन के शासन-काल में उभरा था। नन दिनों में फ्राँस के कुछ रईसों के गिने-चुने विलास-भवन यहाँ पर थे और उस। यह अत्यन्त सुरक्षित स्थान था क्योंकि मोनाका के अजेय दुर्ग की दीवारें समुद्र की सतह से दो सौ फीट ऊँची ठठी हुई थीं।

उन्नीसवीं शताब्दी में फ्राँसो या गेरिमास्की नामक एक यहूदी अपनी सेना का पादरियों के मेघ में लाया और दुर्ग का सिंह-द्वार खुलवाने में सफल हो गया—तत्पश्चात् वह दुर्ग का स्वामी हो गया और नवक वंशज अब तक इसके स्वामी हैं—दुर्ग की मजबूत ओर मोटी दीवारें चट्टानों पर अब भी वही प्रकार खड़ी हैं और इन में तोपों के दहानों के छेद अभी तक फौक रहे हैं। ३७० एकड़ भूमि पर बसे इस राज्य के तीन भाग हैं; 'लार्शेकादिमान' में बाजार है और कुछ सरकारी दफ्तर। सब से छोटा भाग मोटिकारलो है। यही रूमाना दुनिया का बहिस्त बसा है। यही संसार की प्रसिद्ध सुन्दरियों अपना दिल बेचने आती हैं। यही विलास-वासना की लहरें झूल खेलती हैं। यही संसार के बड़े-बड़े धनाढ्य जुआ खेलने या जुए का खेल देखने के लिए आते हैं। यहाँ के जुआ घर की आवा से ही यह राज्य चल रहा है। यहाँ न कोई राज्य-कर है न अन्य किसी प्रकार का

टेक्स ही। वर्ष भर में एक दिन यहाँ मोडरों की दौड़ होती है। और जीवित कबूतरों की निशानेबाजी का मुकाबला होता है। तीसरा भाग मोनाको कहलाता है और यही इस राज्य की राजधानी है। यहाँ राज्य-महल हैं—जिम्में ६६ पहरदार हैं और इनका सारा कार्य केवल 'ड्यूटियों' बदलने तक ही सीमित है, जो बिलकुल इंग्लैण्ड के बंकिङ्गम पैलेस के समान होता है।

आज से एक सौ वर्ष पूर्व यूरोप में कुछ ही लोग ऐसे थे, जिन्होंने मोनाको के विषय में सुन रखा था—वहाँ तो समुद्र से ऊँची ठठी चट्टानें थीं; दुर्ग था या कुछ रईसों के बंगले। यातायात का एक मात्र साधन स्ट्रीमर था जो फ्राँस के तट से चला करता था। फ्राँसोया-ब्लों ने सन १८३६ में उस निर्जन पहाड़ पर एक 'कसीनो' बनाया, जिसे आज मोटिकारलो कहते हैं। यह व्यक्ति पक्का जुआरी था और हेम्बुर्ग में इस का बहुत बड़ा जुआ-घर था। किन्तु विस्मार्क के शासन काल में एक कानून सारा जर्मनी में जुआ खेलना बंद कर दिया गया था। उसे यह स्थान अपने काम के लिए बड़ा उचित जैसा और ठठी की लगन और पारश्रम से उस का कारोबार बढ़-चढ़ कर चलने लगा। उस ने जुए के एक नये खेल 'रुलेट' का आविष्कार किया और लाखों रुपए पैदा कर लिए। उन दिनों में उस की वार्षिक आय लगभग १३ करोड़ रुपए थी। उस ने इस रकम से वहाँ सबके बनवाई, बड़े-बड़े होटल और क्लब खोले और मोनाको की जनता के लिए सुख-सुविधाओं के तमाम द्वार खोल दिए। उसका पुत्र अपना से भी अधिक कुशल जुआरी था। उस ने 'कसीना' का संसार का अत्यन्तम युत्कीड़ा-केन्द्र बना दिया।

मैंने कसीनो की दो दर्जन मेजों पर वह सब नहीं देखा जिस की कल्पना कर के बढ़ा गया था। कारण शायद यह भी है कि यह 'ट्रिस्ट सीजन' नहीं है। लाखों-करोड़ों की हार जीत इन्हीं मेजों पर होती है, जिन्हें कुछ देर पहले मैं सुनसान पक्की देख आया हूँ।

२ फरवरी

यहाँ का सुनसान अब मुझे अस्तरने लगा है। युत की मेजों तक ही यह सुनसान सीमित नहीं है, बल्कि बड़े-बड़े होटल और रेस्तराँ भी इसी वीरानगी में खोए हुए, खाली का यह पसिदास देखा रहे हैं। कई बड़े-बड़े होटल अनिश्चित-काफ के लिए बन्द कर दिए गए हैं।

और जो हैं, वहाँ भी 'डिनर' के लिए रखी खाली प्लेटें मेजों पर पड़ी रहती हैं और 'बाल-रूम' नृत्यशाला के फर्श पर पड़ा पावरड, सुबह तक पड़ा-पड़ा धूल हो जाता है। आरकेस्ट्रा बीते वैभव की याद में खामोश खड़ा रहता है। जो लोग मिलते हैं उन में से अधिकांश गठिया के इलाज के लिए यहाँ आते हैं और उम्र की उन सीमाओं से बरी हैं जब दुनिया की रंगीनियाँ दिल को लुभाती हैं और आँखों को पकड़ती हैं। कल मैं फिर 'केसीनो' गया था। वहाँ कुछ लोग बैठे हुए थे, मुझे उन की दशा उबार के पश्चात् ललक नावों के समान लगी। 'ब्रिटिश कालोनी' की दशा विशेष रूप से पतली है और नसके अप्रेज निवासियों का अधिकांश वह बूढ़े-बूढ़ियाँ हैं जो इंग्लैण्ड लौटने के योग्य नहीं। कई वर्ष पूर्व वह छोटी-मोटी पेन्शनों के सहारे, लन्दन की खुन्ध और शीत में छुटकाग पाने के लिए, फ्रान्स के दक्षिणी तट पर स्थित इस मनोरम स्थल में आए थे और शायद जीवन के इस भौतिक नाटक की पृष्ठ भूमि में एक सुखद अन्त उनकी कल्पना थी। अब उनकी आय का तीसरा भाग पावरड की devaluation के कारण, बिना विम अपराध के, ब्रिटिश लोक सभा की एक धारा की भेंट हो गया है और जीविका के माधन जुटाने के लिए खर्च दो गुना बढ़ गए हैं। स्वदेश वह शायद इस लिए नहीं लौटते कि जीवन की सौम्ह में, पता नहीं उनके कितने साथी और सम्बन्धी धरती की गोद में सो चुके हैं और कितने इस प्रतीक्षा में हैं। दूसरे इंग्लैण्ड में घरो की समस्या भी तो आसान नहीं। मक्खन के बदले 'मारजरीन' और 'व्हाइट ब्रेड' के बदले औ की रोमी खा कर वह जीवित रहने का प्रयास कर रहे हैं। यद्यपि जब वह शानदार बंगलों के सन्तरो के बागों में पाटियों नहीं देते फिर भी विदेशियों में इन्हीं को सर्वाधिक मान दिया जाता है। सुना है जब से 'रिविया की जेनेरा' का कारोबार चमका है, अमेरिकन यहाँ कम आते हैं, पर इन दो-एक वर्षों में प्रेप-कली के कारण उनकी संख्या फिर कुछ बढ़ गई है।

३ फरवरी

फिर रात की वही घड़ी।

रात का भोजन मैंने अपने मित्र जोसफ के साथ खाया। वह किसी समाने की एक 'हाईनेस' के साथ

ठहरा हुआ था, जिनमें तलाक ले लेने के बाद अब 'पेईंग गेस्ट' रखने आरम्भ कर दिए थे। लेकिन धनी अमेरिकन नयोग-पति अब नहीं आते आ सौ डालर के नोट को एक चवन्नी में अधिक महत्व नहीं देते थे, इसलिए होटलों और पेनसियोनों का कारोबार भी काफी फीका पड़ गया है। जोसफ भी अमेरिका के एक ठेकेदार का बेटा है, वह अपनी तलाकशुदा माँ के साथ आस्ट्रिया में रहता है, जिस ४५००० डालर वार्षिक Alimony के रूप में, जीविका निर्वाह के लिए मिलते हैं। माँ-बेटा दोनों बड़े नेक स्वभाव के हैं और बड़े दरिया-दिल मेजवान। शायद इतनी बड़ी रकम को खर्च करने का कोई और शुभ तरीका भी नहीं है। जोसफ ने मुझे बतलाया कि हर सुबह जो महिला मेरे कमरे के बाहर दही की दो बोतलें छोड़ जाती है, वह अपने अपंग पति के साथ एक ऐसे मकान के Basement में रहती है, जिन की छत, खिचकियों, दरवाजे और मंजिलें—मब—सन् १९४५ की बम-मारी के दौरान, भक से उड़ गई थीं। नम का पति ईरान के भूतपूर्व शाह का दूत था, परन्तु एक राजनैतिक भूकम्प आया जिसने उसका मित्र और पद; दोनों छीन लिए। लेकिन मोटिकारलो का यह विशाल-भवन शाह ने उसे भेंट-स्वरूप दे दिया। उसके किराए से सन् १९४५ तक वह गुजारा करते रहे। अब! जब कि वह साधन भी नहीं रहा, उसकी पत्नी दही बनाती है और अपने आटेनी केस में बोतलें भर कर घर-घर घूमती है। परन्तु उसकी चाल-दाल, बोल-चाल, आचार्य और सौम्य वही है, अब कभी जलाल के दिनों में रहा होगा। न जाने क्यों यूरोप की खुशहाली और रंगीनी में जब कभी ऐसी कोई दास्ताँ सुनता हूँ तो मुझे अजम्बू, लखनऊ और हैदराबाद क्यों याद आ जाते हैं, जहाँ पंजीतीयाँ, चौक और कृष्ण परस्त्री में ऐसी हजारों दास्तानें दफन हैं। शायद बाहुल्य और खुशहाली देख कर मैं ही कुछ बदल गया हूँ, अब ऐसी हर घटना दिल पर गहरा अमर छोबती है यद्यपि नहीं जानता अपनी औलातियों का अंजाम क्या होगा? भविष्य के दिन-रात कैसे कटेंगे?

५ फरवरी

जोसफ ने कल समरसट मॉम के सचिव को फोन कर के मेरे लिए अगले सुबहार का समय ले लिया है। वह केप-फेराट में अपने विशाल और भव्य भवन में

ठहरे हुए हैं। सोचता हूँ वह कैसा दिन होगा जब मैं मॉम को अपने सामने पाऊँगा !

६ फरवरी

सूर्यास्त के समय मैं भूमध्य सागर की एक खाड़ी में 'बोटिंग' कर रहा था। इंग्लैण्ड, स्वीडन, नॉर्वे और जर्मनी की हड्डियों तक मैं रच गई सरदी के बाद सूर्य की किरणें कितनी प्यारी लगती हैं। कार्ल ब्रॉडम की चार्ल्स शीर्षक रचना पढ़-रहा हूँ पर सूर्यास्त का वह दृश्य जैसे मेरे मस्तिष्क के साथ चिपक कर रह गया है।

७ फरवरी

आज 'बूझिवार्ड दि बोलों' पर घूमना हुआ। मैं ने देखा जोशक के अतिरिक्त सभी अन्य लोग, उमर की अंतिम मंजिल को प्राप्त होने वाले थे। वह हर फ़रलांग की 'पोस्ट' पर बैठ कर जोर-जोर से सॉफ़ लेते और कमर सीधी करते।

कैसीनो के अग्निमुख बना उपवन निःसन्देह अन्वयमान है। यह दमिरक और विद्याना की फूलों की दुकानों के समान रंगा-रंग है। शायद ही कोई फूल होगा, जो मे ने उपवन में नहीं देखा। यों लगा मोसम का इन पर कोई असर नहीं। इम महीने में गुलाब को देख कर चकित हो जाना पड़ा।

मेरा परिचय यहीं मोनगारक से हुआ। वह जर्मन है। पर उसकी काली आँखें देख कर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने बतलाया कि वह राजनैतिक कार्यों में डूबी तरह उलझा हुआ है वरना मेरी कुछ न-कुछ खातिरदारी जरूर करता।

"राजनैतिक कार्य ?" मैंने आश्चर्य से पूछा।

"जी हाँ" उसने कहा, 'मे भ्रममसी चुनावों में साम्यवादियों के विरुद्ध काम कर रहा हूँ। और इम काम में बड़ी सावधानी की आवश्यकता है मौसियो" उसने विदा ली।

८ फरवरी

रोम से अशफ़ाक का पत्र आया है। ३ फरवरी का पत्र आज मिला। यूरोप में भी ऐसा होता है। मैंने जोशक से शिकायत की, तो उसने बतलाया कि इतालियन में मोनाको और म्यूनिख के डिप्टे एक से हैं। इस लिए पत्र पहले म्यूनिख (जर्मनी का एक मुख्य नगर) गया होगा। जब तक मोडिकाश्लो साथ न

खिंचा हो, डाकखाने वाले पलटती कर सकते हैं।

इस नगर (या देश भी कह सकता हूँ) का नाम एथन्स के ग्रीक मंदिर 'हरक्यूलिस मोनकोव' से लिया गया है। टेवो क कथनानुसार इस देश की बुनियाद २५ वर्ष ईसा पूर्व क्रोनोरियाँ ने रखी थी।

मैं अशफ़ाक के प्रसिद्ध लेखक सेसिल रार्थ्स से मिलने के लिए उनके होटल में गया। वह बीमार पड़े थे मैं वहाँ ही बैठा था कि उन का डाक्टर आ पहुँचा। उनमें हुआ बातलाप कुछ इस प्रकार था :

डा० : आज आप का क्लब-पेशर कुछ कम हैं ?

से० : मेरा विचार इसके बिस्कुल विपरीत था।

डा० : क्यों ?

से० : मुझे आज मेरे बैंक का पत्र आया है कि इनकम-टेक्स की अदायगी में लग-भग मेरी दो-तिहाई आय समाप्त हो गई है।

डा० : तब तो आप काफ़ी अमीर हैं।

से० : यही तो रोना है। इंग्लैंड में आज-काले अमीर नहीं रह सकता। यह इनकम-टेक्स मेरी उस पुस्तक पर लिया गया है जिस लिखने में मुझे तीन वर्ष लगे—परन्तु टेक्स मुझे प्रकाशन के वर्ष पर लगा है। यदि मैं अपनी रायलटी को तीन वर्षों में बाँट दूँ तो मेरी मासिक आय एक पुलिस इनस्पेक्टर स भी कम बनती है—परन्तु सरकार उस पेनशन देती है और मुझे कुछ नहीं। गत वर्ष हमारे देश के महान् इतिहासकार टायल-बी को अपनी पुस्तक पर १२०० पाउंड कर देना पड़ा। यह पुस्तक उन्होंने पन्द्रह वर्षों में लिखी थी। टेक्स चुका देने के पश्चात् उन्होंने सरकार से कहा, शेष-परकम भी वही रख सकती है।

डा० : फ्राँस में इम लेखकों से टेक्स नहीं लेते।

से० : फ्रेंच एक इग्नेलेक्चुअल जाति हैं। एक लेखक फ्रान्स में maitre है, इटली में maestro स्पेन में masterazo और इंग्लैण्ड में—freak !

४ फरवरी

सेसिल के साथ मैं केप-मार्टिन देखने गया। खाड़ी के आड़े तिच्छे रेतीले तट पर इम काफ़ी दूर तक गए। बस में एक अंग्रेज दम्पति और उनके बच्चे थे। उन से परिचय हुआ। सेसिल न जाने क्यों इंग्लैण्ड के भविष्य के प्रति इतने उदासीन हैं। बालक अत्यन्त सुन्दर था भूरे-भूरे बाल, गुलाब के फूल की-सी रंगत

और शान्त महाभाग की गहराइयों से भी अधिक गहरी नीली आँखें और पत्नी के गायन का सा स्वर—मेसिल ने कहा, “ए वरह्म फुल ट्रायो !”

मैं ने कहा “An unopulent and unimproved, alass, assured but not arrogant.”

“The ‘Sammum bonum’ of the human race !” वह बड़े भावुक हो उठे, A race, which is being eliminated in England by vindictive taxation !”

एक बड़े लेकिन खाली होटल में बैठ कर हमने भोजन किया। मेनेजर ने बतलाया कि उस होटल में पाँच सौ व्यक्तियों को एक साथ खिलाने की व्यवस्था हुआ करती थी—लेकिन अब वह दिन कहीं।

भोजन के पश्चात् हम ‘मैटोन’ देखने गए। राह में ‘देखा’, नाज़ियों और फ़ासिस्टों के युग की विज्ञप्तियों दीवारों पर उसी प्रकार लगी थी “We shall triumph”। सेसिल ने मेरे लिए अनुवाद किया।

सेसिल भी मॉम के यहाँ जा रहे हैं।

शाम को हम ‘केथीनो’ की बालकनी में बैठे रहे। ‘टेरेस’ के अन्त में पाम के वृक्षों की विशालकाय फ्रेम में, फ़िदाच्छादित इटालियन पर्वत गहरे नीले आकाश के नीचे जग-मग, जग-मग कर रहे थे। काश्मीर में दर्या-वल्ली इससे भव्य भले ही हो पर यह आकर्षण वहाँ नहीं। वहाँ तो प्रकृति पर छाई वीरानी को देख कर डर लगता है—परन्तु मुझे तो वही वीरानगी से प्यार है। किसी ने मच कहा है :

“Breathes there a man with soul so dead
Who never to himself has said
One’s home is where one is born in bed”

मुझे चटनी और चावल पसन्द हैं। हेम्बुर्गर और पाश्चिम में ‘प्रोटीन’ और ‘विटामिन’ भले ही अधिक हों—पर चटनी-चटनी है और कश्मीर-कश्मीर !

१० फ़रवरी

कई लोग कह रहे हैं कि प्रॉप सरकार, मोनाको के अस्तित्व को कबाब में हड्डी के समान समझती है।

मोनगार्क ने बतलाया कि कुछ भी हो, फ़्रान्स मोनाको पर आक्रमण नहीं कर सकता, “कभी नहीं। हमारे सह-अस्तित्व की बात संसार एक हजार वर्ष से जानता है। फ़्रान्स अपने माथे पर कलंक नहीं लगा

सकता—दिग्दोल वर्ल्ड लुड क्राई शेम—नो मोसियो, शी डेयर नॉट रिस्क डेट।”

१२ फ़रवरी

सेसिल से मॉम का पुराना परिचय था। जोसफ़ की माहिल्य में इतनी शक्ति नहीं। जब सेसिल मेरे साथ हैं तो उसे बहुरा दिया जाय। पॉट सेंट जीन नामक स्थान पर हम आटोबस से उतरे। मॉम की कार वहाँ हमारी पतीला कर रही थी। विश्व-प्रसिद्ध मिबल-कोरनिच मार्ग पर हमारी गाड़ी भागी जा रही थी। सुनहरी धूप में हिम-शृंग जगमग-जगमग कर रहे थे। तट में वेणुमार खाड़ियाँ थीं—और उन खाड़ियों के बीच, बचे कटे-फटे तट पर बचे-बचे आसीरों के विलास-भवन थे। छोटे-छोटे पर्वतों को छाती पर उठाए, लीब के जंगलों में सोया हुआ सा वह प्रदेश मुझे बरबस यूगोस्लाविया के तर्बियाटक सागर को दूर तक काटती हुई खाड़ियों की याद दिला रहा था।

लंच से थोड़ी देर पहले हम विला मोरेस्क में पहुँचे। मॉम हमें लेने के लिए पोर्टिको तक आए हुए थे, जो पोर्टिको कम था और फ़्रान्स के रईसों का baron-nian hall अधिक। अस्सी वर्ष की अवस्था में भी वह बड़े चुस्त और स्वस्थ दिखलाई दे रहे थे। छः-सात वर्ष पूर्व उन्होंने यह घोषणा की थी कि अब वह कोई नया माहिल्यिक सज्जनतात्मक कार्य नहीं करेंगे, परन्तु अब उनको अवकाश पहले से भी बहुत कम मिलता है। कहानी संकलनों के संशोधित संस्करणों और नई भूमिकाओं ने उन्हें और भी बोध किया है। और फिर उन्होंने एक नया काम शुरू कर दिया है; मॉम के पास एक बड़ा प्रभावशाली स्वर है। उनकी कहानियों की फ़िल्में बनाई जा रही हैं और वह स्वयं उन फ़िल्मों में सूत्रधार का काम भी करते हैं और प्रस्तावना देते हैं। विली (उन्हें उनके आत्मीय इसी नाम से पुकारते हैं) इस आयु में पहले से कहीं अधिक व्यस्त रहते हैं और कहीं अधिक कार्य करते हैं।

सेसिल ने मुझे बतलाया था कि छः वर्ष पूर्व जब वह उन से मिले थे तो लंच पर रोख ही पचास-साठ व्यक्ति बैठते थे और उन के भव्य-भवन के विशाल उपवन में बने अत्यन्त रमणीय ‘स्विमिङ्ग-पूल’ पर इस से भी अधिक मित्र उपस्थित रहते। परन्तु अब वह एकान्त पसन्द करने लगे हैं। लंच पर हमारे समेत कुछ आठ

व्यक्ति थे। 'विस्मि फ्रान्से' की खाड़ी के अभिमुख स्थित यह एक अत्यन्त रमणीय स्थान है, जो मॉम ने अपने लिए चुना है। भोजन पर वह एकाध घण्टे के लिए अतिथियों के साथ बैठते और फिर सायंक हो जाते हैं और यदि अतिथि समझदार हों तो वह भी उनका अनुकरण करते हैं। अपना सौभाग्य कह लें तो अनुचित नहीं, सेसिल क साथ होने के कारण मुझे मॉम के साथ कुछ घंटे रहने का अवसर मिला।

'आगस्टस हेयर' की बात चल रही थी। सेसिल और मॉम दोनों ही ने उसके विषय में लिखा था। पर दोनों के विचार बिल्कुल अलग थे। मैंने उनकी केवल एक ही कृति *Walls in Rome* शीर्षक पढ़ी थी। वार्तालाप से मुझ पर स्पष्ट हो गया कि उन्होंने स्पेन, इटली, सिसली फ्रान्स और स्कैंडिनेविया पर भी लिखा है। ऐसे घुमक्कड़ ने जब छः शहरों में अपनी औबनी प्रकाशित की तो नभ में पादरियों और तत्कालीन शामकों के विवरणों के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं था। सेसिल को मॉम के विचारों से मत भेद था। मुरकुरा कर मॉम ने कहा वह इस विषय पर सेसिल के लेखों की प्रतीक्षा करेंगे।

मैंने मॉम का डेस्क देखा। पश्चिमी खिड़कियों पर भारी रेशम के गहरे लाल पर्दे पड़े थे, ताकि दृश्य का सौन्दर्य उनका ध्यान न बँटा सके। उत्तर की ओर केवल एक खिड़की थी, जिसमें 'कट ग्लास' में जड़ित ईव की प्रतिमा अङ्कित थी, जिसके एक हाथ में सेव था।

वहाँ से विशाल उद्यान, स्विमिंग पूल, और टेनिस लान स्पष्ट दृष्टि-गोचर हो रहे थे। मॉम टेनिस के बड़े शौकीन हैं।

वह हमें 'स्विमिंग पूल' तक छोड़ने आए। चलते-चलते सेसिल के किसी प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा "... कोई अनदेखा हाथ वाली घुमा देता है तो हम आकाश में कलाबाधियों खाने लगते हैं और वासी के खतम होते ही पुनः धरती पर लोटने लगते हैं, तब हमें लगता है हर तरफ अवरोध है, कहीं गति नहीं—और यह अवरोध चिरस्थायी है, पर जागरूक मस्तिष्क को यह अवरोध का ललाटा अधिक काल तक नहीं प्रसक्त।। कुछ ही समय के पश्चात् वह पुनः गतिशील होकर अवरोध का अन्त करने के लिए निकल पड़ता है। कलाकार के लिए वही सत्य है जिसे उसकी कल्पना और उसकी दृष्टि स्वीकार करे।"

साहित्य की नई पीढ़ी के विषय में उन्होंने कहा :—
"आज का लेखक उस वातावरण की अभिव्यक्ति करते हुए भी द्विचिन्ता नहीं, जिम से वह पूर्णतया अपरिचित होता है। ऐसे लेखक वास्तविकता से बहुत दूर चले जाते हैं। इस युग में ऐसा करना अपनी कला के साथ अन्याय करना ही है।

"अपने अतीत से जब मैं आज की तुलना करता हूँ तो सोचता हूँ आज का युवक लेखक कितना भाग्यशाली है, क्योंकि हमारे लिए जो अप्राप्य था, उन्हें वह जीवन के प्रथम चरण में मिल सकता है। हमें जो ज्ञान वर्षों की मराजत-पच्ची के बाद मिला, उन्हें वह अनायास ही उपलब्ध है।"

मैंने कहा नया लेखक भी तो भौतिकवादी संसार के तेजी से बदलते हुए स्तर में बेवश-मा हो कर रह गया है।

"यह भली है, मॉम ने कहा, अब तो पूर्वी भी अर्थ-विचार प्रधान विद्वद का कायाल होता जा रहा है। श्रमजीवी वर्ग में जागृति की लहरें उठ रही हैं। इस समय भी यदि हमारे सत्ताधीश न समझे तो हिसाएँ और अराजकताएँ फैलेंगी। मैं नहीं चाहता कि मेरे जीवन काल में वह समय आए।"

फिर भारत के विषय में बातें होने लगीं। उन्होंने कहा, "भारतीय लेखक अपने देश के सम्बन्ध में क्यों नहीं लिखते। हम जो कुछ भी नुनके विषय में जान पाते हैं सो विदेशी लेखकों की कलम से निकले शब्दों से ही।"

अब वह बड़े स्वाभाविक ढंग से बातें कर रहे थे। उन्होंने मेरी मध्य-पूर्व-यात्रा से सम्बन्धित कई प्रश्न पूछे। मॉम जब स्वाभाविक ढंग से भी बात करते हैं तो भी उनके चेहरे का भाव Grim सा रहता है। लगता है वह बात यहाँ कर रहे हैं, देख कहीं और रहें हैं और सोच कुछ और ही रहे हैं।

उन्होंने हाथ मिलाते हुए मुझ से कहा, "स्पेन और भारत की आत्मा एक ही है और स्पेन देखे बिना आपकी यह यात्रा अधूरी ही रहेगी।"

सूर्यास्त के समय हम मोटिकारो पहुँचे। दायेल की खाड़ी का मोड़ मुझते ही मोनाको की वह तिरकी कटी हुई चट्टान, दूबते सूर्य की गुलाबी किरणों में नहाई हुई-सी लगी। यो लगा समुद्र से तौबे का एक पहाड़-सा ऊपर उठ आया है।

कुछ ही क्षणों में सन्ध्या की नीलिमा में सब

कुछ खो गया।

१२ फरवरी

हम 'लाटर्बी' देखने गए। आकाश की सुरमई पृष्ठ भूमि में खड़े 'आगस्टम' के बुर्जों के अवशेष बड़े भव्य लग रहे थे। यह शायद ईसा पूर्व पहली शताब्दी के स्मारक है। इन्हें सम्राट आगस्टस की 'गाल' कबीलों पर विजयांपुलक 'रोमन मिनेट' ने बनाया था। इन स्मारकों पर लगभग चालीस वर्ष तक कार्य चलता रहा। मैंने उन दिनों का विषय में सोचा, जब रोमन सैनिक और गैलियन-गथ की हम मॉन्सल पर पहुँच कर अपने को घन्य समझने थे। यहाँ से रोम को जाने वाली आठ सौ मील लम्बी सड़क उस युग की सब से लम्बी शाहराद थी। यह स्थान, उसी सड़क का सर्वोच्च कोण है। मैंने आठ सौ वर्ष पूर्व के उस रोमन सैनिक की मानसिक स्थिति का अनुमान लगाने का प्रयत्न भी किया; वह था—हारा, इस स्थल पर पहुँच कर नीचे घाटी में फैले 'लाटर्बी' के छोटे स शहर को किस प्रकार त्रास भरी दृष्टि से देखता होगा। लाटर्बी का यह छोटा-सा शहर रोमनों, गालों, फ्रांसीसियों और स्पेनिश सेनाओं की राह का प्रमुख पड़ाव था।

१४ फरवरी

आज एक दुःखद घटना को सुन कर उद्भिन्न-सा हो गया मेरा भावुक मन। हम केंसीनो में बैठे थे। वहीं सुना मन् १६२१ की बहारा के दिन थे कि चार नवा-गन्तुक 'केंसीनो' की मेजों पर जुआ खेलने लिए बैठे, यह जुए के ओज और केंसीनो की जवानी क दिन थे। यह चारों आस्ट्रिया के भूतपूर्व सम्राट चार्ल्स क मुसाहिब थे, जो उस समय स्विट्जरलैण्ड में जलावनती के दिन काट रहे थे। उनके मुसाहिबों की योजना यह थी कि सशस्त्र-पड्यन्त्र करके छोड़ें हुई सत्ता पुन प्राप्त कर ली जाए। परन्तु उनके लिए बहुत पैसों की जरूरत थी, और पैसा बनाने के लिए किसी मनचले ने उन्हें केंसीनो के जुए की मेजों की राह सुझाई। इसी राह में वह अन्तिम कौड़ी तक हार गए। अक्टूबर १६२१ में इन जुआरियों ने अन्तिम बार भाग्य आजमाया और केवल अपना ही नहीं बल्कि अपने बादशाह का सर्वस्व भी लुटा बैठे। उसके पश्चात् दरिद्र राजा और सड़के अमीरा कदल, श्रीनगर (काश्मीर)

यह चहेते दरबारी स्विट्जरलैण्ड से भी निकाल दिए गए क्योंकि उन पर 'ब्रेड' और 'बियर' बेचने वालों का कर्जा था। देशान्तरवाद के पाँचवें महीने में स्पेन के मेहोरिया नामक स्थान पर उस आस्ट्रियन शासक की सूर्य हुई, उसे कफन तक मयस्सर नहीं था। मॉटिकारलो 'केंसीनो' की हज़ारों दास्तानें हैं लेकिन इससे दर्दनाक कोई नहीं; सुनाने वाले एक फ्रेंच सज्जन थे। जोसफ मेरे लिए कठिन वाक्यों का अनुवाद कर रहा था। कथा समाप्त करके उन्होंने कहा "जी उस टेलमेंट सिम्पथीक मोसियो।"

केंसीनो में आज तक जितने भी लोग मृत के लिए आए, उनमें से कुछ ही भाग्यशाली थे। इनमें एक अंग्रेज अभिनेता चार्ल्स वेल भी था। उसने तीन दिन में एक ही मेज पर बैठे हुए चालीस हज़ार पाउण्ड जीते। अनुभव है कि केंसीनो में तीन लाख पाउण्ड नक़द हर समय रहते हैं।

एक और अंग्रेज जोसफ जेम्स ने एक चक्कर की साधारण-सी रुकावट का लाभ उठा कर साठ हज़ार पाउंड जीते थे।

जुआ घर को नाटकीय रूप देने वालों की संख्या बहुत बड़ी है। हत्याओं, आत्मघातों और भयानक हार की दास्तानों ने मॉटिकारलो को आरव्योपन्यास का एक पन्ना बना दिया है परन्तु संगार के अन्य जुआघरों की तुलना में यहाँ बड़ा अमन है। फिर भी केंसीनो में संकट बना ही रहता है—क्योंकि अरबों फ्रेंक मेजों पर खन-खनाते हैं—रात-रात भर दौलत लुटती है, गरीब अमीर बनते हैं और अमीर गरीब।

जुआघर में चौबीस मेज हैं। हर एक मेज पर शून्य से लेकर छत्तीस तक की संख्याओं के खाने बने हुए होते हैं। जुआरी अपनी बाजी की रकम को किसी भी खाने में रख सकता है। मेज के मध्य घूमती हुई एक प्लेट पर पक्षी गेंद जिस खाने में जा पड़ती है, वही जीत जाता है। बाजी लगाने वाले को उसकी दाँव से ३५ गुना अधिक मिलता है। इसके अतिरिक्त इस बात पर भी दाँव लगता है कि गेंद कम संख्या वाले खाने में गिरेगी या विषम संख्या वाले खाने में। जुआरियों में अधिक संख्या त्रिवर्गों की होती है।

—घनश्याम सेठी

भारत का प्राचीन विश्वविद्यालय : तक्षशिला

प्राचीन भारतवर्ष में सार्वजनिक शिक्षा की परम्परा अथवा भारत के प्राचीन विश्वविद्यालयों की जड़ भी चर्चा की जाती है तक्षशिला का नाम वहाँ अवश्य लिया जाता है। यह नगर बड़ा ही प्राचीन था और अब तो केवल इसके ध्वंसावशेषों में इसकी महान् गाथा विलुप्त हो गई है। पहले यह नगर कितना बड़ा था, ठीक ठीक कहाँ था और कैसा था, यह सब निश्चित रूप से तो नहीं कहा जा सकता परन्तु आजकल लाहौर से पेशावर जाते समय रावलपिन्डी से कोई २२ मील की दूरी पर तक्षशिला नामक रेलवे स्टेशन के पास इसके खण्डहर फैले दिखाई देते हैं। स्टेशन से करीब आधा मील उत्तर-पूर्व की ओर पुराने तक्षशिला के अवशेष बड़ी दूर तक फैले हैं।

दुर्भाग्य से यह प्रदेश ही अब भारत विभाजन के कारण पाकिस्तान में पड़ गया है। हिन्दू राज्‍य गया, वैदिक मन्त्र के गान गए, भनातन व्यवस्था गई और अन्त में उस गौरवपूर्ण अतीत का वह मनोरम चिह्न भी भाग्न से पृथक् हो इतनी दूर चला गया जहाँ अब हम इच्छा करके भी सामान्यतः जा नहीं सकते और उस पवित्र भूमि के दर्शन नहीं कर सकते।

रेलवे स्टेशन से उतरते ही दूर से ऊँचे-ऊँचे टीले यहाँ घाने वाले यात्रियों को स्वतः आकृष्ट करने लगते हैं। ये खण्डहर तथा टीले 'कई मील के घेरे में फैले हैं। वास्तव में यहाँ कई वंशों के राजाओं ने हजारों वर्ष की अवधि में राज्य किया था जो अपनी अपनी सुविधा के अनुसार नगर का स्थान बदलते रहे। इस कारण यहाँ खण्डहर तीन भागों में केन्द्रित हैं। पहला केन्द्र भीड़ टीला है जो "स्टेशन" से चलते समय सबसे पहले पड़ता है। पृथ्वी की सतह से यह टीला लगभग ६०-७० फुट ऊँचा है। इसकी लम्बाई लगभग १२०० गज तथा चौड़ाई ७५० गज होगी। खण्डहरों का दूसरा केन्द्र कुछ आगे जाने पर मिलता है। इस भाग के चारों ओर एक दीवार मिलती है जो पहले तक्षशिला नगर को बाहरी शत्रुओं से बचाने वाली प्राचीर रही होगी। इस दीवार की लम्बाई लगभग ६००० गज और चौड़ाई

१५ फुट तक है। खण्डहरों का तीसरा केन्द्र सबसे अन्त में मिलता है। इस भाग का कुल घेरा लगभग ३ मील के क्षेत्र में है। नगर की बाहरी दीवार के अवशेष स्थान-स्थान पर मिलते हैं। इस दीवार की मोटाई १२ फुट से १८ फुट तक है। इन तीनों स्थानों में पुरातत्व विभाग की ओर से काफ़ी खुदाई भी हो चुकी है। जिनसे अनेक बहुमूल्य सामग्री प्राप्त हुई है जो यहाँ के विगत इतिहास पर प्रकाश डालती है।

प्राचीन ग्रन्थों में तक्षशिला का उल्लेख गांधार अथवा केकय प्रदेश के विवरणों में पाया जाता है। जैसा कि "पाणिनि कालीन भारतवर्ष" के रचयिता डा० वासुदेव शर्मा अग्रवाल ने भी लिखा है पुराने जनपदों का नाम जोड़ों में होता था जैसे काशी—कोशल इसी भाँति गांधार का नाम मद्र-गांधार, गांधार-केकय, केकय-मद्र के साथ आया है। अब यह स्पष्ट नहीं कहा जा सकता कि तक्षशिला केकय की राजधानी थी अथवा गांधार की।

इस नगर का सर्व प्रथम उल्लेख 'महाभारत' में आता है। 'महाभारत' (आदि पर्व, अध्याय २ श्लोक २०) के अनुसार राजा जनमेजय ने इस नगरी को अपने पराक्रम से जीता था।

"म तं पुरोहितभुवादयों...

आतृनुवाच मयायं

वृत वपाध्यायो यदयं त्रयास्ततः,

कार्यमविचार... भवद्भिरिति

तेनैवमुक्ता भ्रातरस्तस्य तथा चक्रुः,

म तथा आतृन् सन्दिश्य

तक्षशिलां प्रत्यामप्रतस्थे,

तश्च देशं वशे स्थापयामास"

इसके अतिरिक्त स्वर्गरोहण पर्व (अध्याय ५ श्लोक ३४) से विदित होता है कि अपना संसार विख्यात नाग-यज्ञ भारत सम्राट् जनमेजय ने इसी नगरी में किया था क्योंकि सर्व-यज्ञ समाप्त कर उनके लोटने के प्रसंग में स्पष्टतः तक्षशिला का नाम दिया गया है।

“विसर्जयित्वा विप्रास्तान् राजापि जनमेजयः

ततस्तत्त्वशिलायाः स पुनरायात.....”

उन ब्राह्मणों को विदा करके राजा जनमेजय भी तत्त्वशिला से फिर हस्तिनापुर को चले गए।

‘महाभारत’ के पूर्व तत्त्वशिला नगर का नाम किसी ग्रन्थ में मुझे नहीं मिला। वाल्मीकि रामायण में केकय राज्य का उल्लेख है। अयोध्या के राजा दुश्मन्थ की सब से छोटी रानी कैकेयी इसी प्रदेश की थीं। जिम समय श्री रामचन्द्र बन गए और उनके शोक में राजा दुश्मन्थ ने अपना प्राण त्याग दिया था, भरत अपने ननिहाल केकय में ही थे। राजगुरु वशिष्ठ जी के आदेशानुसार दत्त उन्हें बुलाने केकय गए थे। ‘रामायण’ से हमें उस समय के मार्ग का ज्ञान होता है। अयोध्या से जो रास्ता केकय को जाता था, तत्त्वशिला नगी पर था। महर्षि वाल्मीकि ने अपनी ‘रामायण’ के अयोध्याकाण्ड (अध्याय ६८ श्लोक ११-२१) में इस यात्रा का बड़ा ही हृदयप्राही चित्रण किया है। “अयोध्या से चल कर दत्त अपरताल और प्रलंब नामक पहाड़ों के बीच बहने वाली माहिनी नदी के किनारे-किनारे पश्चिम की ओर चले गए। इस राह में वे हस्तिनापुर तक गए और गंगा नदी को पार किया। इसके बाद फिर वे पश्चिम दिशा में चलते गए और वर्तमान पंजाब तथा कुरुक्षेत्र प्रदेश में पहुँचे। रास्ते में अनेक स्वच्छ जलवाली नदियाँ मिलीं; वहाँ से आगे चलकर वे शरदराडा (आधुनिक मरहिन्द) नदी के तट पर पहुँचे; कुलिग (अथवा भूलिंग) नामक नगरी में आए; इससे भी आगे पश्चिमोत्तर बढ़ने पर अभिकाल नामक ग्राम मिला। फिर उन्होंने बोधि भवन पर्वत से निकली इजुमती नामक नदी को पार किए जिनके तट पर कभी महाराज दुश्मन्थ के पूर्वजों ने राज्य किया था। यहाँ वेदपाठी ब्राह्मणों का निवास था। घर-घर वेद पाठ होता था। वहाँ से अयोध्या के दूत अब वाल्मीकि देश में पहुँचे जहाँ के घोड़े बड़े प्रसिद्ध थे। वहाँ सुदामा नामक पर्वत था जिस पर विष्णु भगवान् के पदस्थित थे। जिनका दर्शन कर वे आगे बढ़े। मार्ग में विपाशा, शास्मली आदि अनेक नदियाँ तथा हिंस पशुओं वाले सघन वन मिले जिन्हें पार कर वे गिरिव्रज नामक केकय राज की श्रेष्ठ राजधानी में जा पहुँचे।” इस यात्रा विवरण से केकय की तत्कालीन राजधानी का

नाम तत्त्वशिला नाम न होकर गिरिव्रज मिलता है।

तत्त्वशिला नाम सर्वे प्रथम ‘महाभारत’ में ही मिलता है। इससे ज्ञात होता है कि इस नगर की स्थापना महाभारत काल के पूर्व और रामायण काल के बाद हुई थी। इसकी स्थापना के सम्बन्ध में दो किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। प्रथम तो यह कि नागराज तत्त्व द्वारा बसाया गया, जिसके कारण इसका नाम तत्त्वशिला पड़ा। तत्त्व ने राजा परीक्षित को डमा था जिनके तैर स्वरूप उनके पुत्र राजा जनमेजय ने नागों को विनष्ट करने के उद्देश्य से तत्त्वशिला पर आक्रमण किया और अपना नाग-यज्ञ किया, इससे इस कथा में कुछ बल प्रतीत होता है।

दूसरी कथा भी कम बलवती नहीं। इसके अनुसार राजा भरत के दो पुत्र थे, तत्त्व और पुष्कर। इनमें पुष्कर ने पुष्करावती अथवा पुष्कल नामक नगर बसाया और तत्त्व ने तत्त्वशिला। यदि इस कथा में तत्त्वशिला नगर की स्थापना काल पर ध्यान दें तब भी हमारा अनुमान पुष्ट होता है क्योंकि भरत-पुत्र तत्त्व का समय जनमेजय के पूर्व और रामायण के बाद है।

परन्तु जब हम कल्हण की ‘राजतरंगिणी’ में वर्णित नागवंश तथा तत्त्वशिला विश्वविद्यालय में नाग विषय की विद्या का प्रधान केन्द्र और तत्त्व का नाम आने वाली बातों पर विचार करते हैं तो सहसा हमारा ध्यान पुष्कर की अन्य बात पर दौड़ जाता है। वह यह कि तत्त्वशिला अवश्य नागों की ही राजधानी थी। इसके अतिरिक्त नाग-पाप नागचक्रियों का निवास था। नाग कन्याएँ अपने आद्वितीय सौन्दर्य के कारण सर्वत्र स्पृहणीय और वरेण्य मानी जाती थीं। यद्यपि इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि दोनों प्रख्यात राजकन्याएँ कैकेयी और गांधारी नाग कन्याएँ थीं फिर भी उनके अप्रतिम सुन्दर होने के सम्बन्ध में तो कोई अपवाद अथवा सन्देह है ही नहीं।

तत्त्वशिला के जीवन में सबसे महत्वपूर्ण वह समय है, जो ‘महाभारत’ के बाद आरम्भ होता है। इसे हम तत्त्वशिला का स्वर्णयुग कह सकते हैं। महाभारत के ठीक बाद से बुद्ध भगवान् के बीच का इतिहास पूर्ण अन्धकारमय है और किसी भी वंश, जाति, नगर अथवा विद्या का कोई पता नहीं चलता। बुद्ध के बाद तत्त्वशिला के सम्बन्ध में फिर वर्णन मिलने लगते हैं। उनसे ज्ञात होता है कि यहाँ तब तक एक अत्यन्त प्रसिद्ध और विशाल विश्व-

विद्यालय स्थापित हो चुका था। यह विश्वविद्यालय आज के किसी भी विश्वविद्यालय से कम नहीं था बल्कि ख्याति और विद्या के क्षेत्र में तो तत्कालीन जैसा एक भी विश्वविद्यालय नहीं, इसे मान लेने में हमें अपने अतीत के प्रति गौरव होने के साथ वर्तमान प्रगति पर लज्जा भी होने लगती है।

उस समय देश में कुल १२ विश्वविद्यालय थे (इस समय संभवतः २८ हैं)। इनमें नालन्दा और तत्कालीन सबसे बड़े और ख्याति लब्ध थे। दुर्भाग्यवश काल के दुर्दान्त हाथों से अब सब धराशायी हो गए हैं। नालन्दा विश्वविद्यालय के तो खण्डहरों में भी उसका रूप बिलकुल स्पष्ट है किन्तु तत्कालीन के खण्डहरों को देखकर तत्कालीन तत्कालीन शिला का कोई स्पष्ट चित्र नहीं उभरता। नालन्दा विश्वविद्यालय के विशाल फाटक के श्वंसावशेष से अब भी होदा कसे दो हाथी आसानी से आ और जा सकते हैं। इतना ऊँचा और प्रशस्त द्वार है नालन्दा का। इतना बड़ा द्वार उभर नहीं पाता। हाँ, इसकी शिवालय व्यवस्था और पाठ्यक्रम आदि के सम्बन्ध में हमें काफ़ी जानकारी प्राप्त हो जाती है। इस ज्ञान की अधिकांश मामूरी मुख्यतः जातक कथाओं और अन्य बौद्ध ग्रंथों से प्राप्त होती है।

द्वैतयोग तथा फ्राहियान ने सहस्रों संयोगों का वर्णन किया है जिनमें शिवा दी जाती थी। पाटलीपुत्र को वह विद्या का कतु मानते हैं। फ्राहियान लिखता है कि सब में सात आठ महस्र भिन्न रहते हैं। आचार विचार पठन पाठन की विधि दर्शनीय है। चारों ओर से महात्मा श्रमण विद्यार्थी मत्स्य और हेतु के जिज्ञासु इन स्थानों का आश्रय लेते हैं।

१२ विश्वविद्यालयों में बनारस संगीत विश्वविद्यालय उसी श्रेणी का था जिन प्रकार अब दक्ष की ओर खैरगढ़ विश्वविद्यालय है।

किसी समय महर्षि अत्रेय यहाँ वैद्यक शास्त्र के अध्यापक थे। मगध नरेश शिबुमार के राजवैद्य जीवक ने तत्कालीन विश्वविद्यालय से इसी चिकित्सा शास्त्र की शिक्षा प्राप्त की थी।

‘बौद्धकालीन भारत’ नामक पुस्तक से ज्ञात होता है कि एक बार चीन के एक राजकुमार को भयानक

नेत्र पीड़ा हुई थी। जब उनको अपने यहाँ के चिकित्सकों की चिकित्सा से लाभ न हुआ तो वह चिकित्सा कराने के लिए तत्कालीन में आया।

काशी के राजा ब्रह्मदत्त ने अपने सोलह वर्षीय पुत्र को बुलाकर एक जोड़ी खड़ाऊँ, पत्तों का बनाया हुआ एक छाता और एक महस्र मुद्राएँ देकर कहा पुत्र अब तुम तत्कालीन जाओ और वहीं शिक्षा ग्रहण करो। राजकुमार अपनी पिता की आज्ञानुसार उसी समय चल पड़ा और यथा समय तत्कालीन पहुँचा। उस समय विद्यार्थियों को पढ़ा कर अध्यापक अपने द्वार पर टहल रहे थे। उन्हें देखते ही राजकुमार ने अपनी खड़ाऊँ उतार दी और छाता रख कर हाथ जोड़ कर चुपचाप उनके सामने खड़ा हो गया। अध्यापक ने बड़े प्रेम से अपने नए विद्यार्थी का स्वागत किया तथा उसे थका जानकर उसे विश्राम करने की आज्ञा दी और बाद में अध्यापक ने उस भोजन कराया, भोजन के पश्चात् कुछ देर विश्राम कर लेने के बाद गुरु के पास आया और हाथ जोड़ खड़ा हो गया।

गुरु ने पूछा—तुम कहाँ से आ रहे हो।

मैं काशी नरेश का पुत्र हूँ।

तुम यहाँ किम लिए आए हो?

विद्याध्ययन करने के लिए।

क्या तुम गुरु दाक्षिणा लेकर आए हो अथवा गुरु की सेवा शुश्रूषा कर अध्ययन करना चाहते हो?

दाक्षिणा लेकर आया हूँ। इतना कह कर उसने गुरु के चरणों में वे महस्र मुद्राएँ रख दीं जो उसके पिता ने चलते समय दी थीं। इस प्रकार तत्कालीन विश्वविद्यालय में राजा और प्रजा के साथ समान व्यवहार किया जाता था। आचार्य योग्य पात्रानुसार उसे तदनुकूल शिक्षा देता था।

जातक कथा सं० १५२ में अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के विश्वविद्यालय तत्कालीन अपने यहाँ अनुमती तथा निष्ठात आचार्यों के कारण समस्त देश के ज्ञान का केन्द्र विन्दु था। यहाँ बनारस, राजगृह, मिथिला, उज्जैनी, कोशल, मध्यदेश, शिब, कुरु बंगाल तथा काम रूप से कई सहस्र विद्यार्थी अध्ययन के लिए आते थे।

तत्कालीन की दूसरी ख्याति प्राप्त शाखा कैकटी कानून की थी इसमें देश देश के विद्यार्थी थे। तीसरी

प्रसिद्ध फैकल्टी सैन्य प्रशिक्षा की थी। इस शास्त्रा में भारत के १०५ विभिन्न राजाओं के पुत्र शिक्षा प्राप्त करते थे। इस फैकल्टी के स्नातकों की सेनाओं में ऊँचे पद में नियुक्ति तत्काल ही हो जाती थी। हवेनसॉग के अनुसार इस विश्वविद्यालय में १५०० शिक्षक थे और छात्र भी इतनी ही संख्या में थे। इस यात्री ने नालन्दा में मंगोलिया अफगानिस्तान, तोखारा, कोरिया, तिब्बत तथा बर्मा के छात्र देखे। परलव राजाओं के प्राप्त पौत्र तान्त्र पत्रों से प्रतीत होता है कि दक्षिणापथ में एक महा-विद्यालय परलव राज्य में भी था जिसमें १४ विषय पढ़ाए जाते थे। इसका अधिक विवरण नहीं दिया गया।

१०४८ ई० का एक लेख दक्षिणापथ के एक संस्कृत महाविद्यालय का पारचय देता है जिसमें १६० छात्र और १६ शिक्षक थे। इसमें रामायण, वेद और ६ शास्त्र पढ़ाए जाते थे।

जातक कथा से प्रतीत होता है कि बनारस में संगीत विश्वविद्यालय था। यह संस्था अपने आप में पूर्ण थी। स्नातकों को आचार्य ही उपाधि वितरण करते थे। यह संस्था अपने ढंग की अनोखी थी।

विश्वविद्यालय के अभाव में वे सब विश्वविद्यालय तत्त्वशिक्षा में सम्मिलित थे। कुवल बनारस संगीत विश्वविद्यालय का किसी फैकल्टी से कोई सम्बन्ध नहीं था। इसमें ५०० छात्र संगीत सीखते थे।

तत्त्वशिक्षा अति प्राचीन काल से प्रधान शिक्षा-केन्द्र रहा है। इस केन्द्र का उल्लेख विशेष रूप से पालि ग्रन्थों में ही प्राप्त है। अन्यत्र इसका विवरण नगण्य है। यह एक ऐसा केन्द्र था जहाँ लोग उच्च शिक्षा के निमित्त जाते थे। काशी, राजशुह, मिथिला, उज्जैन आदि स्थानों से विद्यार्थी सैकड़ों कोस की यात्रा कर वहाँ विशेष योग्यता प्राप्त करने के लिए जाते थे। कोशल का सुप्रसिद्ध सम्राट् पसेनाजित् तत्त्वशिक्षा का ही स्नातक था। ऐसे धुरन्धर विद्वानों का जमघट लगा रहता जिनकी प्रसिद्धि देश के कोने-कोने में थी। ऐसे ही “द्विजा पाभोक्व” विश्रुत विद्वान् कुल शिष्यों के साथ निःस्पृह हो पृथक् पृथक् विद्वानों में शिक्षा देते।

जातकों के अनुसार ज्ञात होता है कि तत्त्वशिक्षा में १८ शिष्यो तथा ३ वेदों की पढ़ाई होती थी। ये अष्ट-ठारह शिष्य कथा ये, इसका ठीक ठीक निरूपण नहीं हो

पाया है परन्तु इनमें से कुछ शिष्य ये थे। हस्ति विद्या, ज्योतिष, सर्प विद्या, भेषज्य, वायुविद्या, शक्यशास्त्र, गणक विद्या, वाणिज्य आदि तीन वेदों का ही उल्लेख है चौथे अथर्ववेद का वर्णन नहीं है। वेदों के अतिरिक्त अन्य धर्मशास्त्रों की भी शिक्षा दी जाती थी। बौद्ध धर्म एवं दर्शन का अध्ययन तो होता ही था। हमें “विनय घर और सूत्रघार” का उल्लेख भी मिलता है। अतः स्पष्ट है विनय पिटक तथा सूत्र पिटक के भी पारंगत विद्वान् वहाँ थे।

तत्त्वशिक्षा की प्रसिद्धि कुछ विशेष शिष्यों के अध्यापन में थी। वायु विद्या, वैद्यक एवं शक्य शास्त्र, सर्प विद्या तथा न्याय शास्त्र के अध्ययन के लिए तत्त्वशिक्षा बहुत प्रसिद्ध था। वायु विद्या में पारंगत होने के लिए काशी, मिथिला, कौशल आदि नगरों के छात्र वहाँ जाते थे। सर्प विद्या के अध्ययन की प्रशंसा यूनानी इतिहासकारों ने की है। वैद्यक एवं शक्य शास्त्र के लिए सम्भवतः यह सब से अच्छा केन्द्र था। वही का स्नातक मगध नरेश विम्बसार को राजवेद्य जीवक कुमार मृत्यु मरितक, अत तथा हृदय के कठिन शल्यो में पारंगत था। तत्त्वशिक्षा में जब उसने शिक्षा समाप्त कर ली और घर आना चाहा तब अपने गुरु के पास जाकर कहा “आचार्य मैं बहुत पढ़ता हूँ, कृपया अब यह बताए कि इस शिष्य का अन्त कब जान पड़ेगा आचार्य ने कहा, अच्छा जो इस खनती (खनित्र) को और तत्त्वशिक्षा के दो योजन चारों ओर घूम कर अभ्येष्ट्य (दवा के अयोग्य) जो कुछ देखो उसे ले आओ। जीवक ने तत्त्वशिक्षा के चारों ओर योजन भर घूम कर देखा और अन्त में निराश हो आचार्य से आकर बोला : “आचार्य ! तत्त्वशिक्षा के चारों ओर योजन भर मैं घूम आया किन्तु मैंने अभ्येष्ट्य कुछ भी नहीं देखा।” आचार्य ने प्रसन्न होकर कहा “साधु जीवक ! तुम अब सीख लो के तुम्हारी जीविका के लिए इतना पर्याप्त है। जीवक ने वहाँ से प्रस्थान किया। वहाँ अध्ययन के लिए जीवक को सात वर्ष रुकना पड़ा था। उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि तत्त्वशिक्षा का अध्ययन कितना गम्भीर होता था।

इसी भाँति यदि महाभारत में वर्णित परीक्षित को उसके निमित्त घर से निकले तत्त्व और धन्वन्तरि की कथा पर विचार करते हैं तो यह सहज ही विश्वास हो जाता है कि धन्वन्तरि चाहे देवता रहे हो अथवा

साधारण ब्राह्मण परन्तु भयानक से भयानक सौंप के विष का प्रभाव दूर कर नवजीवन दान करने में तो वह सिद्धहस्त ही थे, मेरी समझ से यह घटना तत्कालिका के ही आप पास कहीं हुई होगी।

मौर्य काल के बाद तत्कालिका के विषय में हमें बहुत अधिक ज्ञात नहीं है। पाँचवी सदी में चीनी यात्री फाहियान ने जब इस स्थान का दर्शन किया तब यह स्थान शिक्षा की दृष्टि से कोई महत्व नहीं रखता था। सानवी मदी में ह्वेनसांग ने भारत भ्रमण किया। अपने यात्रा विवरण में वह लिखता है कि “तत्कालिका का अब कोई महत्व नहीं रहा। प्रसिद्ध सौतामनिक विद्वान् भिल्लु कुमार लब्ध का महाविहार अब ईंट पथरो का ढेर है तथा अन्य बौद्ध विहारों की दशा शोचनीय है।” तत्कालिका का तबस नहस हूणों के आक्रमण से हो गया था। ऐसा जान पड़ता है कि हूणों के आक्रमण के पश्चात् तत्कालिका का उत्थान हुआ ही नहीं। प्रसिद्ध विद्या कन्द्र सदा के लिए लुप्त हो गया।

अन्य विद्याओं के अतिरिक्त कूटनीतिक विद्या में भी उस समय भारत वर्ष का मानी कोई देश नहीं था और उस समय हजारों छात्र विदेशों से विद्या सीखने के लिए भारत आते थे। इस विद्यालय में जहाँ अन्य विषयों की शिक्षा दी जाती वहाँ उनमें कूटनीति का भी विषय शामिल था।

यूनानी इतिहासकार स्ट्रेबो, एटियन, प्लिनी, आदि के अनुसार इस विद्यालय की कीर्ति और इस प्राचीन नगर की समृद्धि के बारे में लिखा है कि इसका विभव सिकन्दर महान् के जन्म से पहले से बड़ा चढ़ा था। इन इतिहासकारों का मत है कि जब आर्यों ने अपने नपनिवेश बसाए थे। यह तभी का बसाया हुआ है और राजा जनमेजय ने अपना विशाल सर्प यज्ञ यहीं किया था। महान् कूटनीतिक कौटिल्य चाणक्य भी विश्वविद्यालय का छात्र था और अष्टाध्यायी, व्याकरण सूत्र ग्रन्थ की रचना करने वाले महापंडित पाणिनि भी जो गंधार देश के शालातुर ग्राम के निवासी थे यहीं अध्यापक थे। चीन में प्रचार करने जाने वाले बौद्ध धर्म के आचार्य मातेंग और गोपर्न इसी विद्यालय के विद्यार्थी थे। यहाँ पर गुप्तकाल में विभिन्न वर्षों में हजारों चीनी छात्र शिक्षा के लिए आए।

जहाँ एक ओर यूनानी इतिहासकार प्लिनी और

स्ट्रेबो आदि इसकी प्राचीनता स्वीकार करते हैं वहाँ अम्ब्रेक्ष इतिहासकार वुलर और रिबडेक्स भी यह मानते हैं कि विश्वामनीय बौद्ध धर्म ग्रन्थी—वर्ण तिलमुष्टि, पंचायुध और आसामन्त्र आदि पर विश्राम करके यह कहा जाता है कि ईसा पूर्व छठवीं और सातवीं शताब्दी में भी तत्कालिका और उसका विश्वविद्यालय पूरे वैभव पर था। ईसा पूर्व चौथी शताब्दी में ‘महाबल’ संकलित के समय तथा ईसा पूर्व पहली शताब्दी में जब यह सीदियन राजाओं की राजधानी थी, उन्नत दशा में विद्यमान था। बौद्ध ग्रंथों में इसका नाम तक्कसिर लिखा है क्योंकि उनके विश्राम के अनुमार यहाँ बुद्ध भगवान् ने अपने एक जन्म में अपना सिर दान किया था। यहाँ बौद्ध मठों में भी अपनी यात्रा में इसका वर्णन किया है और “ए गाड टु टेक्साइल” नामक अपनी पुस्तक में मार्शल ने भी यही लिखा है कि वहाँ जो खुदाई से वस्तुएँ प्राप्त होती हैं, उनमें ऐसा लगता है कि वे अभी हाल ही की बनी हों। इसलिए यह मानना पड़ेगा कि तत्कालिका शिल्प ऐश्वर्य, शिक्षा आदि में संसार का सिरमौर था। एक चीनी राजकुमार भी यहाँ शिक्षा के लिए चीन देश से आया था।

तत्कालिका के इन विवरणों के अतिरिक्त कुछ सामग्री हमें डाक्टर मोतीचन्द लिखित “सार्थवाद” नामक शोध ग्रन्थ से मिलती है। प्राचीन भारत में सड़कों तथा यातायात के साधनों का वर्णन करते समय उन्होंने तत्कालिका की स्थिति पर अच्छा प्रकाश डाला है। उनके विवरण से ज्ञात होता है कि प्राचीन युग में वलख से होकर महाजन पथ पूर्व की ओर चलते हुए, बदक़्शा, बारवा तथा पामीर की घाटियाँ पार करते हुए काश्गर पहुँचता था और वहाँ उत्तरी अथवा दक्खिनी रास्तों से होकर चीन पहुँच जाता था। उत्तर से चलता हुआ रास्ता वेल्तु नदी पर पहुँचता था जहाँ नदी पार करके यह मार्ग सुग्ध और शकरीप होकर पूरी गंशयाई रास्तों से जा मिलता था। किलख के दक्षिणी दरवाजे से महापथ भारत को आता था। हिन्दुकुशल और सिन्धु को पार करके यह रास्ता तत्कालिका पहुँचता था और वहाँ से पाटलीपुत्र वाले महाजन पथ से जा मिलता था। इस विवरण से स्पष्ट है कि आज का ग्रेण्ड ट्रंक रोड न तो अम्ब्रेक्षों की देन है न शेराशह की और न अशोक की बल्कि पाटलीपुत्र कुसुमपुर से तत्कालिका तक

चलने वाला यह मार्ग अत्यन्त प्राचीन है। कहा जा होकर पूर्णतः विनष्ट एवं हमसे छिन गया है, परन्तु सक्त है कि अशोक तथा शेरशाह ने इस राजपाट की तब भी उसके अतीत और गौरव की कहानी कही महानता समझ कर इसका सुधार कर दिया। जाएगी, वहाँ हिन्दुओं के सौभाग्यपूर्ण दिनों की सरस स्मृति अवश्य मूर्तिमान् हो उठेगी।

तत्त्वशिक्षा अपने भौतिक रूप में कालकवक्षित स्मृति अवश्य मूर्तिमान् हो उठेगी।

अभिमन्यु पुस्तकालय,
दशरथमेध रोड—१
वाराणसी (उ० प्र०)

—बनारसी काक आर्य

दखनी बोल

१. एक बात है फ़ाम,
अव्वल खुशी बाद अज हर एक काम
२. जनम यूँ च किया बरबाद
न दिल की ख़री, न खुदा की याद
३. ख़लक से खुदा,
नहीं है जुदा
४. अपना जीव ख़रा, तो ज़मीन, आममान ख़रा,
अपना जीव ख़रा, तो मारा ज़हान ख़रा
५. जौ गुमान,
बहाँ कहाँ ईमान
६. अपना घर'
ख़ुशी भाये सो कर
७. सुना कस देखे बग़ैर मालूम नई होता
आदमी बम देखे बग़ैर मालूम नई होता
८. तालिब का मतलब
९. हत्ती कूँ कलचुड़ी ज़मान
१०. अव्वल अपने लोकों च ते बरना,
पीछे दुरमन की फ़िक्र करना

—‘सबरस’ से

हैदराबाद

सं० ०—लखिमा देवी

जिनका नाम ही है : “शान्तिप्रिय लोग”

नारायण अष्टपाद

संयुक्त राज्य अमेरिका के उत्तरी अरिजोना राज्य में वहाँ के मूल निवासी, रेड-इण्डियनों, की एक शाखा बसमी है। इस जाति के लोग होपी इण्डियन या ‘होपीटाइ’ कहलाते हैं। ‘होपीटाइ’ के अर्थ हैं— ‘शान्तिप्रिय लोग’।

‘शान्तिप्रिय लोग’ सचमुच ही विलकुल शान्तिप्रिय हैं, ऐसा मानने की भूल मत कर बैठिए। पिछले आठ सौ वर्षों में इस जाति ने अपने प्रदेश में घुसने का प्रयास करने वाले विदेशियों का डट कर सफलतापूर्वक मुकाबला किया है। और आज भी उनके प्रदेश में किसी भिन्न जाति का व्याप्त या कोई-कोई समूह उनकी इच्छा के विरुद्ध घुस सके, ऐसी शान्तिप्रियता होपी इण्डियनों ने अभी अख्तियार नहीं की है। यह एक बहादुर जाति है। पर जब तक इन्हें विवश न किया जाए ये स्वेच्छा से किसी से भगड़ा मोल नहीं लेते। पर भगड़ा करने पर कोई दूसरा आमादा हो तो उसे इनसे अधिक दृढ़ और भयंकर शत्रु भी नहीं मिलेगा।

‘शान्तिप्रिय’ लोगों की जीवन का सिद्धान्त है, सह-अस्तित्व, यानी ‘रहो और रहने दो’। यदि उन्हें अपना जीवन शान्त के साथ बिताने दिया जाए और उनके मामलों में टाँग न अड़ाई जाए तो उनसे अच्छा मित्र मिलना भी कठिन है।

होपी-प्रदेश बड़ा ही वीगन और उजाड़ भू-खण्ड है जो प्रकृत की क्रपा से वंचित जान पड़ता है। आकाश में पूरी प्रखरता से चमकने वाला सूरज प्रति-दिन पूर्व की पहाड़ियों के पीछे सन्निकलता है और दिन भर होपी-प्रदेश की यों ही सूखी भूमि को अपने ताप से और झुलसा कर पश्चिम की पहाड़ियों के पीछे खो जाता है। सारी भूमि, टीलों और कड़ी चट्टानों से भरी पड़ी है। इन्हीं चट्टानों और टीलों से भर धरती पर होपी लोगो ने अपने गाँव बसाए हैं।

प्रत्येक होपी-गाँव पूर्णतया आत्म-निर्भर है। एक गाँव का दूसरे गाँव से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है। प्रत्येक गाँव अपने में स्वतन्त्र है। कोई ऐसा एक नेता

या सरदार नहीं है जो सब होपी-गाँवों पर शासन करता हो। प्रत्येक गाँव एक स्वतन्त्र लोकतन्त्र के रूप में संगठित है और प्रत्येक गाँव की एक परिषद होती है जिसमें उस गाँव के प्रमुख सरदार सदस्य होते हैं। यह परिषद ही गाँव की सर्वोच्च सत्ता है।

प्रत्येक गाँव की परिषद में चार सदस्य होते हैं। १. गृह-सरदार; २. किवा (एक प्रकार का मन्दिर) का सरदार; ३. युद्ध का सरदार; उद्घोषक सरदार। इन चार सरदारों में अन्तिम, यानी ‘उद्घोषक सरदार’ बड़ा ही महत्वपूर्ण व्यक्ति होता है। परिषद और गाँव की जनता के बीच यही सरदार सम्पर्क बनाए रखने वाली कड़ी है। वह गाँव का प्रमुख सरदार, नेता, चलता-फिरता समाचारपत्र और खबरें और विज्ञप्तियों प्रसारित करने वाला कर्मचारी, सभी कुछ है। जब कोई घोषणा करनी होती है तो इसकी जिम्मेदारी ‘उद्घोषक सरदार’ के ऊपर पड़ती है। ‘उद्घोषक सरदार’ की घोषणाएँ गाँव वालों के लिए वही महत्व रखती हैं जो हमारे लिए रेडियो या लाउड स्पीकरों द्वारा की जाने वाली समाचार विज्ञप्तियों और घोषणाओं का है। माध्याह्नतया ‘उद्घोषक सरदार’ विज्ञप्तियों सुनाने और महत्वपूर्ण घोषणाएँ करने के लिए शाम का समय चुनता है। वह किसी मकान की छत पर चढ़ जाएगा जहाँ से उसकी ऊँची और गहरी आवाज नमाज की अज्ञान की तरह सारे गाँव में फैलने लगेगी। ऐसे मौके पर गाँव का सारा काम ठप हो जाता है और सब लोग ध्यान से उसकी बात सुनने लगते हैं। लगातार निकलने वाली धाराप्रवाह वाणी में ‘उद्घोषक सरदार’ बोलता जाता है और सब दत्तचित होकर सुनते रहते हैं। चट्टानों और पहाड़ियों पर होती हुई दूर-दूर तक बराबर गूँजने वाली यह आवाज सुन कर सन्देह होने लगता है कि वह कभी खत्म भी होगी या नहीं।

इस प्रकार घोषणाएँ सदैव बड़े महत्व की होती हैं, ऐसा नहीं है। हो सकता है कि गाँव वालों के लिए

खबर बड़े महत्व की हो। पर उतना ही सम्भव है कि खबर बिचकुल ही साधारण हो, जैसे एक लम्बी वक्तृता में 'उद्घोषक सरदार' गाँव की जनता को यही सूचना दे रहा हो कि परिषद ने दूसरे दिन 'खरगोशों के शिकार' के लिए तैयारी करने का निश्चय किया है। हमारे लिए यह खबर मामूली है, पर होपी लोगों के लिए तो ये सब चीजें उनके जीवन का एक महत्वपूर्ण और अनिवार्य अंग हैं।

मातृ-प्रधान परिवार : प्रत्येक होपी गाँव के निवासी विभिन्न समुदायों में बँटे होते हैं, उसी प्रकार जैसे हमारे यहाँ परिवार होते हैं। प्रत्येक समुदाय का नाम किसी पशु के ऊपर रखा जाता है—जैम नागों का समुदाय, हरिणों का समुदाय, भालुओं का समुदाय, मकड़ी-समुदाय, आदि-आदि। भारत के अधिकांश भागों में पुरुष ही परिवार का प्रमुख होता है। वही सम्पत्ति का स्वामी होता है, उसी का नाम पर वंश चलता है, और जब कोई नवयुवक विवाह करता है तो उसकी पत्नी अपने श्वशुर, यानी अपने पति के पिता के परिवार का एक सदस्य बन जाती है।

किन्तु होपी प्रदेश में इसके विपरीत किसी समुदाय के बच्चे अपनी माँ के समुदाय के सदस्य होते हैं; जब कोई लड़की विवाह करती है तो उसका पति अपने माता-पिता का घर छोड़ कर अपनी मास के घर का सदस्य बन जाता है। होपी प्रदेश में सम्पत्ति की स्वामिनी माँ होती है, वंश उसके नाम पर चलता है।

विवाह की विचित्र रीति : होपी लोगों के यहाँ विवाह संस्कार की पद्धति बहुत ही सरल है। लड़की और लड़का स्वेच्छा से अपना भावी सहचर या सहचरी चुनता है। जब कोई लड़की अपनी मन पसन्द का वर खोज लेती है तब वह अपनी माँ को (पिता को नहीं) अपने निर्णय की सूचना देती है। लड़की की माँ अपनी लड़की की पसन्द के लड़के की माँ के पास एक थाली में कुछ अनाज के दाने रख कर जाती है जहाँ उसका बच्चा भव्य स्वागत किया जाता है। लड़के की माँ अपनी समाधन की बड़ी खातिर करती है। पहले दिन इतना ही होता है।

इस रस्म के बाद अगले तीन दिन तक भावी वधू को अपने विवाहित जीवन में प्रवेश करने की तैयारी करनी पड़ती है। इन तीन दिनों में उसे अनाज कुटने,

दलने और पीसने के काम में लगाए रखा जाता है। तीन दिन की इस कड़ी मेहनत के बाद लड़की को विवाह के योग्य होने का प्रमाण-पत्र मिला जाता है, यानी, चौथे दिन वर और वधू, दोनों के परिवार के लोग विवाह संस्कार के लिए एकत्र होते हैं। इस समय तक काफ़ी रात हो चुकती है।

सर की धुलाई : विवाह समारोह का सार्वजनिक पहलू है—सर की धुलाई। चौथे दिन की सुबह ही से वर और वधू, दोनों की माताएँ एक वृक्ष विशेष की सूखी अड़ों को ओखली और मूसल लिए कुदने में जुटी रहती हैं। सामुन या रीठे की जगह इसी जड़ का चूर्ण काम में लाते हैं ये लोग। विवाह समारोह में भाग लेने के लिए आने वाला प्रत्येक मेहमान अपने साथ एक बर्तन में थोड़ा-थोड़ा पानी लाता है। यह पानी वे उस ओखली में डालते जाते हैं जिसमें कूटा हुआ चूर्ण तैयार है। जब सारे मेहमान आ चुकने हैं तब सर धुलाई की क्रिया आरम्भ होती है। वर अपनी भावी सास की ओखली के सामने और वधू अपनी सास की ओखली के सामने सर झुका कर बैठती है। दोनों माताएँ अपने जमाता और अपनी बहू के सर की जम कर धुलाई करने में जुट जाती हैं। सर धुलाई की रस्म पूरी हो जाने के बाद मेहमान अपने-अपने घरों को चले जाते हैं।

मेहमानों के चले जाने के बाद वर और वधू विवाह की बाकी रस्में पूरी करते हैं। दोनों अपने घर में चल कर गाँव के बाहर, पूरब की तरफ की एक ऊँची चट्टान पर चढ़ते हैं। अभी गत बाकी होनी है और दोनों उस चट्टान पर तब तक खड़े रहते हैं जब तक सूरज की पहली किरण उन्हें स्पर्श न कर ले। सूर्योदय होता देख कर वर-वधू, दोनों प्रकाश के देवता से एक दूसरे के लिए और अपना वैवाहिक जीवन सुखमय बनाने का लिए प्रार्थना करते हैं। दोनों प्रार्थना करते जाते हैं और सूर्यदेव को सुट्टी भर-भर कर पवित्र अन्न के दाने अर्घ्य की भाँति अर्पित करते जाते हैं। बस, विवाह की अन्तिम रस्म भी पूरी हो गई। अब दोनों पात-पत्नी हो गए। इसके कुछ समय बाद तक लड़की अपनी सास के परिवार में रहती है। एक अवधि के बाद अपने पति सहित लड़की अपनी माँ, के घर बड़े समारोह के साथ लौट आती है। पति महोदय छह अवसर पर अपनी माँ का घर अन्तिम बार छोड़ते हैं।

क्योंकि अब उन्हें आजीवन अपनी पत्नी के घर रहना होगा... घर जमाई बन कर ।

जिन्होंने ही घर बनाती हैं : विवाह के बाद नव वधू की असली जिन्दगी शुरू होती है । होपी प्रदेश में औरतें ही मकान बनाती हैं । गाँव की दूसरी ज़िन्दगी की सहायता से नव वधू एक नए मकान का निर्माण कार्य आरम्भ करती है । इसी मकान में वह अपने पति के साथ जीवन व्यतीत करेगी । ऐसा नहीं कि पुरुष कुछ भी हाथ नहीं बँटाते । जहाँ अधिक कठोर श्रम और शारीरिक शक्ति की अपेक्षा हो, वहाँ पुरुष भी सहायता करते हैं, किन्तु वास्तविक शिर्षी और निर्माता ज़िन्दगी ही होती है । मकान सीधी और सादी डिजाइन के ही होते हैं, फिर भी उनका स्वरूप वे ही निर्धारित करती हैं । अतः यदि होपी प्रदेश की औरतें इन घरों की स्वामिनी भी होती हैं तो यह न्यायसंगत भी लगता है ।

ईगल के चार पर : नव विवाहिता का मकान ईगल के चार परों पर आधारित होता है । सो कैसे ? सुनिए । मकान निर्माण की क्रिया में एक प्रचलित विरवाच के अनुसार यह आवश्यक माना जाता है कि ईगल के चार पर मकान की नींव के चारों कोनों में नींव के चार परखरों के नीचे दबा दिए जाएँ ।

ये पर साधारण पर नहीं होते । वधू इन्हें प्राप्त करने के लिए गाँव के प्रमुख सरदार के पास जाती है । इन परों का एक नाम होता है जिसका हिन्दी में भद्रा अनुवाद शायद 'स्वाध मन्त्र' होगा । सरदार इन परों पर पवित्र अन्न और जल छिड़क कर उनमें मन्त्र-शक्ति भर देता है । फिर एक-एक पर को नींव के चारों कोनों में रख कर उन पर पत्थर जमा दिए जाते हैं । इसी समय यह भी निश्चित किया जाता है कि मकान का प्रवेश-द्वार किधर रखा जाए । जहाँ द्वार बनाना होता है वहाँ पर दो कठोरों में खाद्य-सामग्री भर कर रख दी जाती है । अब मकान की चारों दीवारें जहाँ उठेंगी उस जगह नमकीन खाद्य-पदार्थ छिड़क कर एक चौकोर खाका-सा खींच दिया जाता है । अब मकान का निर्माण कार्य आरम्भ होता है ।

मकान की रूपरेखा तैयार करने का यह तरीका

पकिस्तान के शिवाजीन,
ओरेंज सेक्रेटरीट,
दिल्ली -- ८

विभिन्न सत्कर है, पर होपी लोगों के लिए इस पूरी रस्म का महत्व है । उनका विश्वास है कि इस प्रकार बनाए गए मकान की चारों दीवारों के भीतर कभी दुःख, असन्तोष, अभाव और रोग का प्रवेश नहीं होता और मकान में रहने वाले आजीवन सुख और शान्ति का जीवन व्यतीत करते हैं ।

रथ के दो पहिए—स्त्री और पुरुष : किन्तु जहाँ होपी स्त्री मकान बनाती है, अनाज कूटती-पीसती है, चून्हा-चोका करती है, नीचे घाटी में बहने वाली सरिता से पानी भर कर लाती है, गृहस्वामिनी के अन्य दमरे कर्तव्यों को पूरा करने के साथ-साथ मातृत्व का दायित्व भी पूरी लगन से निभाते हुए बच्चों का लालन-पालन करती है, वहाँ यह मान लेने का कोई कारण नहीं है कि होपी पुरुष बिलकुल निकम्मा होता है और हाथ पर हाथ रख कर बैठे हुए अपना जीवन बिताता है । पुरुष खेत जोतता है, मवेशी चराता है, उनकी देखभाल करता है, वस्त्र बुनता है, और घर में ईंधन की आवश्यकता पूरी करने के लिए तपती धूप में मीलों का चक्कर लगाता हुआ लकड़ी और सूखी झाड़ियाँ तोड़ता और इकट्ठा करता फिरता है ।

किन्तु पुरुष का सब से प्रमुख कार्य है गाँव के सामान प्रबन्ध में हाथ बँटाना, समारोह और त्योहारों की तैयारी करना । वर्ष के बारहों महीने इन त्योहारों से भरे होते हैं । ये समारोह अधिकांश धार्मिक समारोह होते हैं । इनमें नाच-रंग और सहभोजों की धूम होती है ।

ऐसी है आधुनिक सभ्यता और विज्ञान के स्पर्श से अब तक बची हुई यह आदिमवासी जाति जिसे अकृ-पामय प्रकृति से कोई शिक्षायात नहीं है, जो कठोर भूमि को भी अपने कठिन परिश्रम से नरम कर के भोजन प्राप्त करे ही लेती है, जो वातावरण की मनहूसी को भी अपनी स्वभावगत मस्ती तथा हर्ष-उल्लास से भरे नाच-रंग और उत्सवों-समारोह से दूर भगा देती है । ऐसे हैं अरिजोना के ये होपी इण्डियन जिनका सरल सन्तोष-सभ्य संसार के सम्पन्नतम व्यक्ति के मन में भी ईर्ष्या पैदा कर दे तो आश्चर्य नहीं ।

सोवियत संघ का प्रथम सन्त : क्रोपाटकिन

संसार में ऐसे महापुरुषों की कमी कमी नहीं रही जिन्होंने देश और जाति के लिए अपना समस्त जीवन उत्सर्ग किया। ऐतिहासिक चरणों में विश्व का प्रत्येक राष्ट्र, राजतन्त्र की बबरता धर्माचार्यों की कठमुल्लाशाही अथवा विदेशी गुलामी के जुए की नीचे अवश्य रहा है। और यह भी सत्य है कि अपने देश को इन अमानुषिक यातनाओं से छुटकारा दिलाने के लिए ही किसी न किसी महान् आत्मा ने वहाँ जन्म भी अवश्य लिया है। ऐसी ही महान् आत्माओं में रूस के महान् सन्त प्रिम क्रोपाटकिन का नाम लिया जा सकता है। रूस के इस महान् सन्त ने अपना समस्त जीवन राजतन्त्र के अत्याचारों और जनमाथागण को आर्थिक गुलामी से छुटकारा दिलाने में लगाया। यह घटना सोवियत लाल क्रांति से पहले की है, जबकि जार निकोलस का भयंकर पंजा रूसी जनता के सर पर था। देश में गुलामी की प्रथा का दौर दौरा था और रूसी जनता गुलामी और आर्थिक पीड़ा से कराह रही थी।

क्रोपाटकिन का बाल्यकाल : प्रिम क्रोपाटकिन का जन्म रूस के एक उच्च राजवंश में हुआ। रूस में यह पंचम राजशाही के अत्याचारों का अन्धकारीय युग कहा जाता है। जब क्रोपाटकिन आठ वर्ष के हुए तब वह सम्राट् जार के पार्श्व बालक बना दिए गए। उस समय वह महाशक्तिशाली जार के पीछे-पीछे चलते थे। उस समय अर्थात् अपने बाल्यकाल में ही क्रोपाटकिन को देश की वास्तविक दशा के अनुभव होने आरम्भ हुए।

एक और जहाँ जार के साथ उन्हें राजशाही के वैभव के दर्शन हुए वहाँ उन्हें अमानुषिकता भी देखने को मिली।

अपने इसी पार्श्व काल में एक अवसर ऐसा भी आया कि वह रूस की सारी सम्राज्ञी की गोद में जा कर सो गए। दूसरे दिन जब लौटकर घर आए तो उनके सामने एक भयानक दृश्य आया। उनके पिता पुलिस को एक आज्ञा-पत्र सौंप रहे थे। पिता ने पुलिस को दिखाया—“इसे थाने ले जाया जाय और एक सौ कोड़े लगाए जाएँ।

उस दिन पिता घर के गुलामों पर किसी कारण से बिगड़ उठे थे और यह आज्ञा उन्होंने रसोईघर में काम करने वाले एक व्यक्ति के विरुद्ध लखी थी।

क्रोपाटकिन इस आज्ञा पत्र को पढ़ कर महम गए। दिन भर वह उस व्यक्ति के थाने से लौटने की प्रतीक्षा करते रहे। काफ़ी दिन ढलने पर ‘मकार’ नाम का व्यक्ति थाने से कोड़े खाकर लौट कर आया। उसका शरीर सूजा हुआ था और चेहरा उतरा हुआ था। घर की एक तंग गली में क्रोपाटकिन ने उसका हाथ पकड़ा।

अपना हाथ छुड़ाकर वह बोला—“रहने दो, रहने दो। बड़े होकर तुम भी तो अपने पिता की तरह ही बनोगे।”

बालक क्रोपाटकिन ने भरे गले से जवाब दिया—“नहीं, हर्गिज नहीं।”

अत्याचार का दूसरा दौर : कुछ दिन बाद जार निकोलस के शासन की अन्धेरी रात दूर हुई और गुलामी प्रथा का अन्त हुआ लेकिन इसके साथ ही आया रूसी जार एलेक्जेंडर द्वितीय का भयंकर शासन।

एलेक्जेंडर का शासन वास्तव में पुलिस शासन था। इस जार ने अपना समस्त शासनसूत्र पुलिस के दो अत्याचारी अधिकारियों ट्रेपीफ और शुबालोफ़ को सौंप दिया था। यह लोग चाहे जिसे फाँसी पर लटका देते, चाहे जिसे निर्वासित कर देते थे। हज़ारों निरपराध आदमियों को इन्होंने फाँसी पर लटका दिया। हज़ारों को जीवित ही अपनी क़त्त साइबेरिया में बनाने के लिए निर्वासित कर दिया। हज़ारों गरीब जेलों में ठूँस दिए गए। लेकिन रूस के इस आतंकपूर्ण राज्य में जाशुति का सूत्रपात हो चुका था। कान्तिकारी गुप्त समितियाँ बन चुकी थीं, उनकी कार्यवाहियाँ इतने दमन के बावजूद भी नहीं रुकीं। पुलिस शासन इस मामले में विफल ही रहा। कान्तिकारी समितियों के पोस्टरों और साहित्य का वितरण अवाध रूप से जारी रहा।

उस समय इन कान्तिकारी दलों का प्रधान बोरोडिन नाम का व्यक्ति था। यह महाशय मेच की

खाल छोड़े कसी किसान के वेश में यत्र तत्र घूमते रहते थे। लेकिन पुलिस इन्हें नहीं पकड़ पाती थी। इसका भी एक कारण था। वह कारण यह था कि बोरोडिन मजदूरों और जुलाहों के संगठन में लगा हुआ था और उन्हीं के साथ रहकर काम करता था। पुलिस इस बात को जानती थी। हजारों जुलाहों और मजदूरों को वह जेल तथा फौसी के तह्शते पर चढ़ा चुकी थी लेकिन उनमें एक भी आदमी ऐसा पुलिस को नहीं मिल पाता था जो बोरोडिन को गिरफ्तार करा सके। बोरोडिन का मेद बताने की अपेक्षा हरेक मजदूर मर जाना अच्छा समझता था। वस्तुतः प्रिन्स क्रोपाटकिन ही बोरोडिन के नाम से छद्म रूप में यह सब कुछ करता था।

क्रोपाटकिन का ख्याति काल : सन् १८७४ ई० का वसन्त, क्रोपाटकिन के समाज सेवा और ख्याति के श्रीगणेश का काल था। प्रिन्स क्रोपाटकिन अब तक एक महान् वैज्ञानिक भी बन चुके थे।

१८७४ के वसन्त में ज्योग्राफिकल सोसाइटी के भवन में प्रिन्स क्रोपाटकिन का भाषण होना था और इस भाषण को सुनने के लिए रूस के सभी वैज्ञानिक और विज्ञान प्रेमी एकत्र हुए थे। इस भाषण का विषय रूस का जल-प्रलय काल था। इस विषय में वैज्ञानिक अभी तक एक मत नहीं हुए थे। एक दूसरे के सिद्धांत खण्डित होते जा रहे थे। क्रोपाटकिन ने अपने तर्कों के आधार पर एक नए अकादमिक सिद्धांत का समन्वय किया। इस भाषण से रूस के वैज्ञानिकों पर क्रोपाटकिन की आक जम गई।

इस समय तक क्रोपाटकिन एक उच्च वैज्ञानिक के अतिरिक्त एक कुशल ज्योतिषी, भूगर्भ विद्या के विशेषज्ञ तथा एक अच्छे संगीतज्ञ और दार्शनिक तो बन ही चुके थे। साथ ही बीच भाषाओं का ज्ञान उन्होंने प्राप्त कर लिया था जिनमें से सात में वह अच्छी तरह बोल, लिख और पढ़ सकते थे। बीस वर्ष की आयु में उन्होंने कई उपन्यास लिखे और तीस वर्ष आयु में उनकी गणना रूस के प्रसिद्ध विद्वानों में होने लगी। फ्रीजी काम वह ५ वर्ष की आयु में ही सीख चुके थे। उनके सामने जब अपने लिए उपयुक्त स्थान के चुनाव का प्रवाल आया, तो उन्होंने उसके लिए सार्डेनिया को चुना था।

वहाँ उन्होंने आभूर की यात्रा करके एशियाई

भूगोल की जिन भद्दी भूलों को प्रदर्शित किया, उससे उनकी कीर्ति एशिया भर में फैल गई और भौगोलिक जगत् ने विजय का सेहरा उनके सर पर बाँध दिया।

गिरफ्तारी : भाषण के बाद जैसे ही वह गाड़ी में बैठ कर बाहर निकले, जैसे ही एक दूसरी गाड़ी उनके पास से गुजरी। एक जुलाहे ने उस गाड़ी से उच्च कर कहा—“मिस्टर बोरोडिन सलाम।”

‘दोनों गाड़ियों रोक दी गई। जुलाहे के पीछे खुफिया पुलिस का एक आदमी गाड़ी में कूद पड़ा। बोला—“मिस्टर बोरोडिन उर्फ प्रिन्स क्रोपाटकिन, मैं तुम्हें गिरफ्तार करता हूँ।”

लामसू के इशारे पर पुलिस के और आदमी भी आ गए। क्रोपाटकिन गिरफ्तार कर लिए गए। विश्वासघातक जुलाहा दूसरी गाड़ी में उनके पीछे-पीछे चला।

जेल में : क्रोपाटकिन को पीटर और पाल के किले की एक कोठरी में बन्द किया गया। अपने काले कारनामों के लिए यह रूस भर में प्रसिद्ध था। जनता इसके नाम मात्र से काँपती थी। रूस के इस नरक में पक कर देश के हजारों कवि, लेखक और देश-भक्त तो अपने प्राण गँवा चुके थे अथवा पागल बनकर बाहर निकले थे। सही सलामत इस किले से कोई कभी नहीं निकला था। किला जीवित आदमी की क़त्ल भी। क्रोपाटकिन को यहाँ आए दो वर्ष हो चुके थे। लेकिन उनका मुकदमा अभी तक शुरू नहीं हुआ था। हर समय मृत्यु जैसा सज़ा उन्नके चारों ओर रहता था। बाहरी दुनिया से उनका सम्बन्ध बिलकुल कट चुका था।

नई सुन्न और पकायन : एकान्तता से तंग आ कर उन्होंने आसपास के कैदियों से बातचीत करने का निश्चय किया। दरवाजे की सिटकनी की आवाज से एक नई वर्णमाला तैयार की और संकेतों द्वारा उनसे बातचीत होने लगी। व्यायाम के लिए उन्होंने अपनी कोठरी के चक्कर लगाने शुरू किए और स्टूल को जमना-रिटक का साधन बनाया। कुछ दिन बाद उनके आई एलेक्जेंडर ने आन्दोलन करके उन्हें लिखने-पढ़ने का सामान दिलवा दिया। इस तरह क्रोपाटकिन वहाँ पागल होने से बचे। लेकिन, इतने पर भी वह अपनी स्वर ध्वनि भूल गए क्योंकि उन्हें जेल में गाने की मनाई थी।

दो वर्षों बाद क्रोपाटकिन बीमार पड़ गए और उन्हें किले से निकाल कर क्रीजी जेल के अस्पताल में भेज दिया गया। यहाँ उन्हें ४ बजे घूमने की आज्ञा मिल गई लेकिन मशख सैनिक उनके साथ रहते थे। यहाँ से वे भाग निकले। उनका यह भागना अत्यन्त आश्चर्यजनक था। ज्यूमा के उपन्यासों को छोड़ कर ऐसा सनमनीलेख किसी शायद ही कहीं पढ़ने को मिले। उनके जीवन-चरित्र का वह अध्ययन, जिसमें इस भागने का वृत्तान्त है, हृदय को स्पर्शित करनेवाली एक खास चीज है।

क्रोपाटकिन ने अपने बाहर के दोस्तों से पत्र-व्यवहार करके भागने की सारी तरकीब निश्चित कर ली थी। जब लकड़ी लानेवालों के लिए फाटक खुला, उस समय क्रोपाटकिन टोप हाथ में लिए टहल रहे थे। कोई अजनबी आदमी फाटक के सिपाही को बातों में उलझाये हुए था। पड़ोस के घर में बेला बज रहा था। भागने की घड़ी उज्यौ-उज्यौ नजदीक आती जाती थी, ल्यों-ल्यों बेला की ध्वनि भी तीव्र होती जा रही थी। क्रोपाटकिन भागे, फाटक पार किया, फट से गाड़ी में सवार हुए, घोड़े सरपट दौड़े, उन्हें सेन्ट-पीटर्सबर्ग के सबसे शानदार होटल में खाना खाया, जब कि पुलिस उस महानगरी के प्रत्येक छुपने के स्थान के कोने-कोने को तलाश कर रही थी, किसी का पासपोर्ट लिया, फिनलेण्ड होकर स्वीडन की यात्रा की और वहाँ से एक ब्रिटिश जहाज पर सवार हो कर इंग्लैण्ड जा पहुँचे। उनके जीवन की यह घटना उपन्यास से भी बढ़कर मनोरंजक है।

इस महापुरुष का जीवन दो प्रबल भावनाओं से प्रभावित रहा है। एक भावना तो है बौद्धिक संसार में विजय प्राप्त करना और दूसरी मानव-समाज की स्वाधीनता के लिए उद्योग। अन्ततोगत्वा इन दोनों भावनाओं का स्रोत एक ही है, यानी मानव-समाज से प्रेम, और इस प्रेम की वजह से ही क्रोपाटकिन के व्यक्तित्व में वैसा ही आकर्षक माधुर्य है, जैसा सदा से ठिठुरनेवाले आदमी के लिए सूर्य की किरणों में।

क्रोपाटकिन के राजनैतिक सिद्धान्तों का स्रोत था इनकी वैज्ञानिक तथा प्रेम पूर्ण विचार-धारा में डार्विन के जीवन-संग्राम सम्बन्धी उस सिद्धान्त का उन्होंने खंडन किया है, जिसमें प्रकृति को खूँखार सिद्ध किया गया है और जिसमें यह बात सिद्ध करने की चेष्टा की गई

है कि प्रत्येक प्रकार का विकास जीवन-संग्राम का परिणाम है; एक-दूसरे से प्रतिद्वन्द्विता करने का नतीजा है और प्रत्येक को संपूर्ण समूह से युद्ध करना अनिवार्य है। इस सिद्धान्त के मुकाबले में क्रोपाटकिन ने अपना यह सिद्धान्त उपस्थित किया है कि विकास पारस्परिक सहायता, सहयोग और सम्मिश्रित सामाजिक उद्योग का परिणाम है। क्रोपाटकिन लिखते हैं—“जीवों में सबसे अधिक समर्थ वही होते हैं, जिनमें सबसे अधिक सहयोग-प्रवृत्ति पाई जाती है और इस प्रकार सहयोग-प्रवृत्ति विकास का मुख्य कारण है, क्योंकि प्रत्येक रूप से वह उस जीव-श्रेणी के हित की साधक है, क्योंकि वह उसकी शक्ति के क्षय को रोकती है और अप्रत्यक्ष रूप से वह उसकी बुद्धिमत्ता की वृद्धि के लिए सुविधा उत्पन्न करती है।”

इस सामाजिक भावना से, जो सब चीजों को विकसित करती है, ग्रिन्स क्रोपाटकिन ने अपने व्यक्तिगत स्वाधीनता का सिद्धान्त निकाला है। उनका कहना है कि व्यक्तिगत स्वाधीनता के अभाव प्रयोग से सम्पूर्ण मानव-समूह की सेवा का भाव उत्पन्न होता है।

अपने दुःख को प्रकट करने के लिए जिसे औसुओं की हमें जरूरत है, उनसे कहीं अधिक हमारे पास हैं, और जितना अधिक आनन्द हम अपने जीवन के कारण मना सकते हैं, उतना ही अधिक आनन्द मनाने की शक्ति हम में निहित है। एकाकी आदमी क्यों दुःखित और अशांत रहता है? उसके दुःख तथा अशांति का कारण यही है कि वह दूसरों को अपने विचारों तथा भावनाओं में शामिल नहीं कर सकता। जब हमें कोई बड़ी भारी खुरी होती है, उस समय हम दूसरों को यह जतला देना चाहते हैं कि हमारा भी अस्तित्व है, हम अनुभव करते हैं, प्रेम करते हैं, जिन्दा रहते हैं, जीवन-संग्राम करते हैं और युद्ध भी करते हैं—उत्तापमय जीवन ही विकास की ओर दौबता है। यदि किसी में कार्य करने की शक्ति है, तो कार्य करना उसका कर्तव्य हो जाता है। नैतिक कर्तव्य या धर्म को यदि उसके समस्त रहस्यवादी फास-फंसाकों से अलग कर दिया जाय, तो वह इस सूत्र में सम्बद्ध हो जाता है।

इस तर्क द्वारा ग्रिन्स क्रोपाटकिन अपने नीतिशास्त्र पर पहुँचते हैं—उस नीतिशास्त्र पर, जो किसी पर

शासन नहीं चलाता, जो व्यक्तियों का निर्माण किसी खास मॉडल पर करने में विश्वास नहीं रखता और जो धर्म, कानून या सरकार के नाम पर व्यक्तियों का अंग-भंग नहीं करना चाहता। प्रिन्स क्रोपाटकिन का नीतिशास्त्र व्यक्ति को पूर्ण स्वाधीनता प्रदान करता है। इसी नैतिकता के आधार पर उन्होंने एक ऐसे समाज की कल्पना की है, जिसमें किसी प्रकार का बाहरी नियन्त्रण न होगा, जिसमें न कुछ पूँजीवाद होगा और न कोई सरकार और जिसमें प्रत्येक मनुष्य को अपनी रुचि का कार्य चुनने और करने का अधिकार होगा। समाज की भिन्न-भिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए स्वाधीन समूह होंगे और इन समूहों के संघ होंगे।

जीवन-संघर्ष में : क्रोपाटकिन ने अपने प्रतिपादित नीति-शास्त्र का अचरशः पालन किया। वे बड़ी सादगी के साथ स्वाधीनतापूर्वक अपना जीवन व्यतीत करते थे। उनके चेहरे पर प्रेमपूर्ण मुसकुराहट सदा खेलती रहती थी। न उन्हें रुपए-पैसे की अभिलाषा थी, न किसी पदप्रतिष्ठा की। उन्होंने हम में अपनी जागीरों को लात मार कर लुक छिप कर इधर-उधर भटकनेवाले क्रान्तिकारी का निर्धनतापूर्ण जीवन स्वीकार किया और अपने वैज्ञानिक लेखों से ओज्विला चलाना उचित समझा। उन्होंने अपने राजकुमार के पद को तिलांजलि देकर घरीब मजदूरों की सेवा का व्रत किया। रुस छोड़ें उन्हें सैलैड वर्ष हो चुके थे, वे वहाँ लौट कर नहीं गए, पर रुस उन्हें नहीं भूला था। रूसी सरकार ने उन्हें जालाकी से पकड़वा मैगाने का घट्टयन्त्र भी किया, पर वह सफल नहीं हुई। सन् १८८७ में जब क्रोपाटकिन ने अपना ग्रन्थ छपाया, तो उस ग्रन्थ की सारी प्रतियाँ उठा दी गईं और प्रकाशक महोदय का कारोबार ही रहस्यपूर्ण ढंग से एक साथ बन्द हो गया।

एक बार रूसी सरकार उनको दण्ड दिलवाने में सफल हुई। सन् १८८२ में लायन्स में जो बलवा हुआ था, उसमें फ्रांसीसी सरकार द्वारा वे पकड़े गए। ऐसा विश्वास किया जाता है कि वे बलवे रूसी सुक्रिया पुच्छसवालों ने कराए थे। क्रोपाटकिन उन दिनों लम्बन में थे। यह बात ध्यान देने योग्य है कि क्रोपाटकिन न तो तब और न पहले कभी हिंसात्मक उपायों का समर्थन किया था, पर उन पर यह झलझाम लगाया गया कि वे बलवे उन्हीं की प्रेरणा से हुए। वे फ्रान्स वापस गए

और उन्हें ५ वर्ष का कारावास, १० वर्ष पुलिस की निगरानी तथा अन्य कई दण्ड दिए गए। रूसी सरकार फूली न समाई और उसने उत्साह में आकर मुकदमा चलानेवालों को पदक दे डाले। उसकी यह भूल विघातक सिद्ध हुई। परिणाम यह हुआ कि संपूर्ण यूरोप में क्रोपाटकिन के छुटकारे के लिए आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। फ्रांसीसी सरकार अपने हठ पर कायम रही, पर उसने क्रोपाटकिन के लिए जेल में एक सहूलियत कर दी, यानी एक खेत उनको अपने कृषि सम्बन्धी प्रयोगों के लिए दे दिया। वहाँ क्रोपाटकिन ने जो प्रयोग किए, उन्होंने कृषि-जगत में एक क्रान्ति लौ उत्पन्न कर दी। उन प्रयोगों के आधार पर ही आगे चलकर उन्होंने एक किताब लिखी थी। क्रोपाटकिन के छुटकारे के लिए आन्दोलन निरन्तर जारी रहा। अन्त को जाकर फ्रेंच सरकार के एक उच्च पदाधिकारी को यह बात खुले आम स्वीकार करनी पड़ी कि क्रोपाटकिन के छुटकारे में कुछ राजनैतिक कारण बाधक हैं। अमली भेद आखिर जाहिर हो गया। प्रत्येक आदमी की जमान पर एक ही बात थी—क्या रूसी सरकार को खुश करने के लिए ही क्रोपाटकिन को जेल में रखा जाएगा ? जब फ्रेंच सरकार को यह चुनौती दी गई, तो उसके पैर उखड़ गए, और तीन वर्ष जेल में रहने के बाद क्रोपाटकिन छोड़ दिए गए।

रूसी सरकार ने इस दुःखदायक समाचार को सुन कर क्या किया, सो भी सुन लीजिए। इस घटना के बाद सेन्ट-पीटर्स-बर्ग स्थित फ्रांसीसी राजदूत के साथ ऐसा दुर्व्यवहार किया गया कि ने इस्तीफा देकर पेरिस लौट आए।

अंतिम दिन : रुस की राज्य क्रान्ति के बाद, ४२ वर्ष तक विदेशों में भटकने के बाद क्रोपाटकिन स्वदेश लौटे और मास्को के निकट अपने गाँव डिमी-ट्रोव में रहने लगे। इस समय उनकी आयु ७५ वर्ष की थी। स्वास्थ्य खराब हो चुका था। एक गाय उन्होंने पाल रखी थी लेकिन उस गाय पर भी लोगों का ऐतराज था, रोज बीसियों चिट्ठियों इस बारे में सोवियत सरकार को लिखी जाती थीं। अन्त में लेनिन ने उन्हें गाय रखने और उनके भोजन की मात्रा बढ़ाने की आज्ञा दे दी। अपने सैद्धांतिक मतभेद दूर करने के लिए लेनिन एक बार उनके गाँव स्वयं ही उनके मिलने गए लेकिन सिद्धान्त

का मतभेद दूर नहीं हुआ।

बाद में उनकी सहायता के अतिपाय से एक लम्बी रकम देकर सरकार ने उनकी पुस्तक फ्रान्स की राज्यक्रान्ति लेनी चाही लेकिन सरकार की ओर से आया प्रस्ताव जान कर वह राजी नहीं हुए। शर्त के साथ कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी की प्रोफेसरी का प्रस्ताव भी उन्होंने ठुकरा दिया। अनेकों धनपतियों और सोषाइटियों तथा फ्रमों ने भी उन्हें सहायता देनी चाही लेकिन वे कभी ऐसी सहायता के लिए तैयार नहीं हुए।

अपने वैभव के क्षणों को लात मार कर रूप का यह अर्द्धमक श्रेष्ठि अपने बुढ़ापे को कलम के सहारे काटता रहा और रूसी मार्क्सवादी नेता आनन्द से देखते रहे। इन प्रायु में उन्हें कभी अच्छा भोजन तक नसीब नहीं हुआ।

१११, डायना गेट,
गाजियाबाद (उ. प्र.)

अन्त में ७८ वर्ष की अवस्था में ८ फरवरी १९२१ को रूस के इस महान सन्त का देहान्त हो गया। देहान्त के बाद उनकी अंत्येष्टि के लिए सोवियत सरकार आगे आई लेकिन उनकी पत्नी ने सरकार के इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया और उनके भक्तों ने स्वयं उनका जुलूम निकला जिनमें कड़कवाती सर्दी में भी हथारों आदमी थे जो बर्फ पर नारे लगाते जा रहे थे।

आज उनका मारको वाला मकान उनके मित्रों ने उनकी पुस्तकों आदि को लेकर संग्रहालय बना दिया है और गांव के मकान में उनका परिवार रहता है। यह था उस सन्त के जीवन का आदि और अन्त जिसके मकान की आधार शिला पर लेनिन ने अपना लाल भवन बनाया था।

—चिरंजीलाक पाराशर

दूसरे महायुद्ध का समय था। श्रियुत विन्स्टन चर्चिल को बार बार हवाई जहाज के द्वारा इंग्लिश चैनल के पार जाना पड़ता था। इंग्लिश चैनल पर बमों की वर्षा होती रहती थी। ब्रिटिश पार्लियामेंट के सदस्यों ने विन्स्टन चर्चिल से अनुरोध-विनय किया कि वे इस प्रकार अपने जीवन को, खतरों में न डालें परन्तु जब उन्होंने उनकी बात को न माना तब वे विन्स्टन चर्चिल की पत्नी के पास गए और उनसे अनुरोध किया कि विन्स्टन चर्चिल को इंग्लिश चैनल पार जाने से रोकिए। उससे उनका जीवन खतरे में पड़ सकता है। विन्स्टन चर्चिल की पत्नी ने उत्तर दिया : “इस समय हथारों नौजवानों ने अपने जीवन को खतरे में डाल दिया है। चाहे कुछ भी हो जाए-विन्स्टन अपने कर्तव्य को पूरा करेगा। मैं उन को किसी प्रकार नहीं रोक सकती।”

आगरा की यात्रा

मुगल साम्राज्य की दीर्घ कालीन छाप आगरा पर है और आगरा में इस समय भी मुस्लिम वैभव और उसकी संस्कृति की विशेषता का परिचय प्राप्त होता है। बाबर के पूर्व भी आगरा मुगल शासकों का आश्रय था। यह भी मलय है कि लोदी के समय में आगरा ने पर्याप्त उन्नति की थी। अब भी आगरा पर मुगल सभ्यता और संस्कृति की गहरी छाप को देखकर आश्चर्य होता है। आगरा में एक और यमुना है जिससे अतीत की इमारतों स्मृतियों का गठती है और दूसरी ओर यहाँ ताजमहल जैसी इमारतें मुगलों के महान् वैभव को प्रदर्शित करती हैं। आगरा में हिन्दू और मुस्लिम संस्कृतियों का संगम हुआ है।

आगरा और यमुना के पास यमुना का विशेष महत्व है वह किसी से अपरिचित नहीं है। यमुना में मैं जिस समय नाव स्रमण कर रहा था—उस समय एक भावुक भक्त कह रहा था—‘अपने कन्हैया के दर्शन यहाँ होते हैं, कदम्ब पर गोपिकाएँ भ्रमण कर रही हैं, कृष्ण यमुना तीर गवय चरा रहे हैं। यमुना का महत्व बहुत ही प्राचीन है और आगरा यमुना के तट पर बसा है। जनश्रुति के अनुसार आगरा कंव के पिता उग्रसेन के समय से ही यमुना के तट पर अवस्थित था। इतिहास लेखकों ने भी इसका उल्लेख किया है।^१ यहाँ पर रेणुका क्षेत्र है—जहाँ परशुराम ने अपनी माता का सिर काटा था।

हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि में आगरा ने महत्वपूर्ण योग दिया है। सूरदास संभवतः यहीं के थे—और इनका वास्तव्य विश्व साहित्य में बेजोड़ है। कुछ लोगों का विचार है कि सूर इनका जन्म से और बहुत से उन्हें दिल्ली के निकट-सीही में जन्मा बताते हैं। इधर नागरी प्रचारिणी सभा आगरा के प्राण तोताराम शर्मा पंज ने अपनी खोज द्वारा सिद्ध किया है कि सूर का जन्म सी ही में ही हुआ था—वह आगरा में ही है अब उसका नामकरण-साही हो गया है।

सूर के पश्चात् अकबरी दरबार में अनेक हिन्दी कवि हुए हैं। जिन्होंने अकबर के दरबार (आगरा) में साहित्य पाठना की है। अकबर के दरबारी कवियों ने अधिकांश स्फुट रचनाएँ ही की हैं। नरहरि ने लघुपद्य नीति और चतुर्भुज ब्राह्मण ने द्वादशयश आदि पुस्तकों की रचना की है। टोडरमल भी कविता कर्ता थे।

तानसेन भी अकबर के दरबार के महान् संगीतज्ञ थे। वे कविता भी करते थे। सूर और तानसेन में समिष्टता थी।

अब्दुर्रहीम खानखाना १६६६ में अकबर के दरबार में रहे। वेसे आज भी आगरा के काश्मीरी बाजार में ‘खानखाना’ कटरा स्थित है। उन्होंने बरवे नायिका, नगर शोभा, छोट कौतुक जातकम्, मदनाष्टक आदि कई ग्रंथ लिखे।

रीतिकाालीन कवियों में आगरा ने बहुत-सी महान् विभूतियों प्रदान की हैं। रामचन्द्र शुक्ल के मतानुसार कुलपति मिश्र का समय संवत् १७२४ से १७४३ के बीच माना जाता है। कुलपति मिश्र ने श्रोणपूर्व, मुक्ति तरंगिनी, नखशिख आदि ग्रन्थ रचे। सूरति मिश्र ने अलंकार माला, अमर चन्द्रिका, और रसिकप्रिया की टीका की है। प्रभु चौबे ने शृंगार रस की काव्यता की है। लालदास ने इतिहासवार समुच्चै, अवध-विलास, बारहमासा आदि ग्रंथ रचे हैं।

आधुनिक हिन्दी गद्य क्षेत्र में जिस पक्ष को लेकर आधुनिक युग को गद्य युग कहा जाता है। गद्य युग की चार विभूतियों में से एक विभूति आगरा की थी। जिन्हें हम लल्लूलाल के नाम से जानते हैं। इन्होंने खड़ी बोली और प्रजभाषा में गद्य लिखा। इन्होंने प्रजभाषा की कथाओं को भी खड़ी बोली में लिखा। सिंहासन बत्तीसी, वैतल्य पच्चीसी, माधोनल, प्रेमसागर, राजनीति और शकुन्तला नाटक लिखे हैं। राजा लक्ष्मण सिंह हिन्दी गद्य के प्रवर्तकों में से है। इन्होंने मेघदूत और शकुन्तला का अनुवाद किया है। १६१६ में

मजकेशरी सखनारायण कविरत्न ने मजभाषा में कई वस्तुस्थित रचवाईं थीं। साथ ही उत्तर रामचरित्र और मालती माधव का अनुवाद किया। हनुमन्त सिंह रघुवंशी, शालिग्राम उपाध्याय, ज्ञानपतराय, काशीनाथ और कदवत शर्मा की सेवाएँ भी सराहनीय हैं।

ताजमहल : शब्द के दिन अखिल विनय, लीलासी, कमला गुप्त, राजेश दीक्षित और मैं ताजमहल की सुन्दरता को देखने के लिए गए। साथ में हमारे हैजारीमल जैन प्रेमी थे। जैसे ही ताजमहल के निकट होते जाते थे वैसे ही विशाल जनसमूह चारों ओर से उभर रहा था। होज के पास लीला जी, कमला और हैजारी मल जैन प्रेमी को बिठा कर मैं भाई अखिल विनय के साथ ताज का सौन्दर्य देखने के लिए ऊपर की ओर चल पड़ा। 'ताजमहल' संगमरमर का एक सुन्दर मकबरा है, संभार में एक ही और वह भी आगरा में। आगरा के लिए यह गर्व की बात है और उसे इस पर गर्व भी है। शाहजहाँ ने इसे अपनी प्रिय पत्नी मुमताज बेगम की स्मृति में आगरा में यमुना के तट पर बनवाया था। इसके निर्माण में मादे चार करोड़ रुपये व्यय हुए। रात में कार्य करके २२ वर्ष में इसका निर्माण हुआ। शाहजहाँ अपनी पत्नी की भौतिक स्वयं भी इस मकबरे में दफनाया गया। इसके चारों ओर लाल पत्थर की दीवारें हैं। ताज के सम्मुख सुन्दर बाग है तथा एक मनोहर और लम्बा होज भी है जिसमें ताज का प्रतिबिम्ब बहुत ही सुन्दर प्रतीत होता है। ताज का चबूतरा भी संगमरमर का है। चारों कोनों पर चार मीनारें हैं। जिनमें प्रत्येक में १२० मीदियाँ हैं। मुमताज बेगम तथा शाहजहाँ की वास्तविक समाधियाँ ताज के निम्न भाग में हैं। यहाँ प्रकाश का आभाव है अतः लालटेन से देखना पड़ता है। समाधियाँ सुन्दर और कलात्मक हैं। शाहजहाँ की समाधि पर एक बहुत बड़ा हीरा लगा था जिसे अंग्रेजों ने निकाल लिया था। अब भी इसका चिह्न विद्यमान है। कहते हैं कि उस हीरे से वहाँ प्रकाश रहता था। ऊपर के भाग में कुत्रिम समाधियाँ हैं, जिनके चारों ओर संगमरमर की सुन्दर जाली आकर्षक रंगों से रंजित है। प्रत्येक बेलबूटे में जहाँ आजा रंग भरे हैं कभी हीरे जगमगाया करते थे। उस समय की इसकी शोभा अनुपम थी। ताज के दोनों ओर बसजिहें हैं तथा पीछे की ओर यमुना बहती है

जिससे इसकी शोभा द्विगुणित हो गठती है। चौदनी रात में तो इसकी शोभा देखते ही बनती है।

आगरा किला : दिल्ली के किले की तरह यह भी लालपत्थर का बना हुआ है। इसका मुख्य द्वार-द्वार के साथ-साथ पुल का भी कार्य करता है। और समेटा भी जाता है। किले का मध्य भाग छोटी ईंटों का बना है एवं कुछ संगमरमर में है। अन्दर सुन्दर बाग और विशाल कुएँ हैं।

सीवाने खास जो दिल्ली के लाल किले के आकार की सुन्दर-इमारत अंगूठी के नग की तरह किले की शोभा बढ़ा रही है।

मोती मस्जिद जो संगमरमर की एक छोटी इमारत है। इसे शाहजहाँ ने नील लाज की लागत से बनवाया था। इसकी नक्काशी और बनावट इतनी सजीव लगती है कि किसी कवि की यह उक्ति कि 'पत्थर के पेशे हरे होंगे। साकार होने की चेष्टा करने लगती है। यह मस्जिद भी किले के अन्दर है।

मुश्मनबुर्ज जो एक संगमरमर का सुन्दर भवन है किले में चार चौद लगा रहा है। शाहजहाँ की मृत्यु यहीं हुई थी। यहाँ से एक कौच द्वारा और वैसे भी ताज रण्ट दीखता है। मध्य में यमुना नदी है। यहाँ संगमरमर की आखियाँ, भी दर्शनीय हैं। सम्राट के बैठने के लिए कमोटी के पत्थर का कृष्ण वर्ण का एक तख्त है, जो एक ही पत्थर को काटकर बनाया गया है। इसके अतिरिक्त आगरा दुर्ग में अंगूरी बाग, जहाँगीर महल, और बौद्धीरोमणि अमरसिंह राठौर जिस बुर्ज से कूदे थे वह स्थान भी दर्शनीय है।

दयाल बाग : में राधास्वामी का मन्दिर बनाया जा रहा है। इस मन्दिर को चालीस वर्ष से निरन्तर बनाया जा रहा है और एक मंजिल ही इसकी अभी तक बन सकी है।

सिकन्दरा : ताज से छे मील दूर पर है। यहाँ सम्राट अकबर की समाधि है। वहाँ लाल पत्थर और संगमरमर का सुन्दर कलात्मक कार्य देखने को मिलता है।

मैत्री क्लब : सिकन्दरा से दो मील दूर केशाश में स्थित है। आगरा से ६ मील है। गढ़े और सुखद मानवीय सम्बन्धों के लिए एक भारत व्यापी संस्था, समाज के समस्तरीय तथा विषम-ऊँचे और निम्न, धनी अथवा

निर्धन वर्गीय व्यक्तियों के बीच पारस्परिक, समझ, सहिष्णुता, सहायता और बृहत्तर सहयोग का सृजन करने वाली मिलन स्थली है।

फ़तेहपुर सिकरी : आगरा से १६ मील दूरी पर यह ऐतिहासिक स्थान है। यह किसी समय केन्द्रीय शासन का स्थान था। यह सम्राट् अकबर का बसाया हुआ स्थान है। यहाँ पर लाल पत्थर का सुन्दर कार्य है। विशेष करके दर्शनीय पंचमहला और सुलन्द दरवाजा है। जिनकी जोड़ विश्व में मिलना दुर्लभ है। सीकरी स्थापत्य कला का एक उत्कृष्ट नमूना है। इसके अतिरिक्त हमने आगरा के कई आधुनिक साहित्य सेवियों के दर्शन किए। इन से भेंट कर हमें बहुत प्रसन्नता हुई।

श्रीयुत बाबू गुलाबराय जी का जन्म माघ शुक्ल चौथ संवत् १६४४ को इटावा में हुआ। परन्तु आपका जीवन आगरा में ही बीता और आज भी आप आगरा में ही हैं। आपकी दर्जेनो पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। जिस समय मैं आपके दर्शन के लिए पहुँचा उस समय आप पलंग पर बैठे विचार मग्न थे। शरीर से बाबू जी बिलकुल ही थक गए हैं। संस्कृत और दर्शन के आप विद्वान् हैं। समन्वयवादी आप आलोचक हैं। 'साहित्य मन्देश' में आपकी रचनाएँ प्रकाशित होती रहती हैं। आलोचना के सम्बन्ध में एक प्रश्न के उत्तर में बाबूजी ने बताया कि पूर्ण अध्ययन करके जो आलोचना नहीं करते और वर्ग विशेष के दायरे में पड़े रहते हैं। यह हानिकारक है।

श्रीयुत हरिश्चक्र जी शर्मा विगत चालीस वर्षों से आगरा में ही रहते हैं। आप एक प्रसिद्ध साहित्य-सेवी हैं योग्य पिता के सुयोग्य पुत्र हैं। आप कवि हैं लेखक हैं और यशस्वी पत्रकार हैं। छन्द शास्त्र के आप प्रकाण्ड विद्वान् हैं। रस विधान के भी आप विद्वान् हैं। ३५ के ऊपर आपने पुस्तकें लिखी हैं।

श्रीयुत श्रीराम जी शर्मा का जन्म फाल्गुण शुक्ल १३ सम्बत् १६५२ में किरधरा (मेनपुरी) में हुआ था। राजनैतिक बन्दी और क्रान्तिकारी के रूप में आपका संपूर्ण जीवन प्रमथ करते हुए बीता है। नेता सितमगर, प्राणो का सोदा, अंगल के जीव, बोलती प्रतिमा, शिकार आदि पुस्तकें आपकी अपने ही ढंग की अन्तही हिन्दी साहित्य में हैं। सन् २२ से आपने शिकार पर लिखना आरम्भ किया और आज भी लिख रहे हैं। प्रांतीय

भाषाओं में भी इस प्रकार का साहित्य नहीं है। इधर कहानियों में आपने ढंग नए का प्रयोग किया है। जिस में जीवन की सत्य घटनाओं को कहानी कीमें सजा कर उसे नया रूप दिया है। यों तो आपका सम्बन्ध 'विशाल भारत' के प्रकाशन के समय से ही रहा है। किन्तु सन् १६३५ से आपने उसका सम्पादन करना आरंभ किया था—और आज भी आप 'विशाल भारत' का सम्पादन कर रहे हैं।

डॉ० रामविलास जी शर्मा का जन्म संवत् १६६६ में उजाव में हुआ। सन् १६४३ से आप आगरा में ही रह रहे हैं। मार्क्सवादी और निर्भीक आलोचक के रूप में शर्माजी को कौन नहीं जानता !

सरल सुन्दर भाषा और आत्म विश्वासपूर्ण शैली के कारण आपकी आलोचना तिल मिलाने वाली होती है। दर्जेनो पुस्तकें आपने हिन्दी को दी हैं। 'रूप तरंग' के नाम से आपका काव्य-संग्रह निकला है। काव्य के रूप में भी आप प्रसिद्ध हैं। १८५७ की क्रान्ति आपका महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इस ऐतिहासिक ग्रन्थ का प्रकाशन हाल ही में हुआ है। 'भाषा विज्ञान पर' शीघ्र ही आपकी एक पुस्तक प्रकाशित हो रही है। शर्माजी ने सर्वप्रथम 'चरम दिन' नामक उपन्यास लिखा था। आजकल आप 'समालोचक' का संपादन कर रहे हैं।

डाक्टर सत्येन्द्र का अघिकांश जीवन आगरा में ही बीता और अब भी आप आगरा में ही हैं। व्रज भाषा का आपने गहन अध्ययन किया है और सूर साहित्य के आप विशेष ज्ञाता माने जाते हैं। लोक वार्ता और लोक गीतों के क्षेत्र में अनेक महत्वपूर्ण शोध कार्य किए हैं और इस दिशा में अनेक हिन्दी सेवियों का पथ-प्रदर्शन किया है। आपकी भाषा संस्कृत निष्ठ है। शैली में प्रवाह है। प्राञ्जलता, तर्क पूर्णता और सुसंबद्धता आपकी शैली की प्रमुख विशेषता है। आपने कई नाटक लिखे हैं। आपके नाटकों का धरातल नैतिक है और उसमें मानवता का संदेश देने की भावना निहित है। प्राचीन और आधुनिक दोनों शैलियों का आपने समन्वय किया है। ४० के लगभग आपकी पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। आजकल आपका स्वास्थ्य ठीक नहीं है किन्तु अब भी आप साहित्य सृजन में सजग हैं।

श्रीयुत रावी : सरल और सरल भाषा में लिखित लघु कथाएँ कहीं भी पढ़ने को मिले तो जान लेना चाहिए की

रावी की ही कहानियाँ हैं। हिन्दी में अपने ढंग का यह अनूठा साहित्य केवल रावी ही दे रहे हैं। शुभा, पूजा, मेरी सुनिए, अपनी सोचिए, और नई दुनियाँ नया प्रश्न, मेरे कथा गुरु का कहना है, वीरभद्र की गोष्ठी, नए नगर की कहानी, पूर्व और पश्चिम, पत्नियों का दीप, उप-जाऊ पत्थर, सपने का सौदागर, मुझे आपसे कुछ कहना है, नया समाज नया मानव इसके अतिरिक्त आपने दर्जनों पुस्तकें दी हैं।

इन पुस्तकों में नित्यप्रति की अनुभूतियों का सजीव, मार्मिक और कल्पनापूर्ण चित्रण है। प्रेम का अपार्यव चित्रण भी इन में देखने को मिलेगा। रावी की भाषा में उर्दू और अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग नहीं खटकता क्योंकि वह प्रसंगानुकूल होता है।

डॉ० पद्मसिंह शर्मा कमलेश ने गुजराती साहित्य का हिन्दी में अनुवाद किया है। साथ ही इन्टरव्यू लिखने की कला में आप प्रवीण हैं। कवि के रूप में भी आप प्रसिद्ध हैं।

श्रविकेश चतुर्वेदी हास्य रसाचार्य हैं। हास्य रस के आप प्रकारब विद्वान् हैं। आपकी कविताएँ व्यंग्यात्मक होते हुए भी सजीव होती हैं। चतुर्वेदी जी का द्वार सदैव अतिथियों के लिए खुला रहता है। अतिथियों का स्वागत आप हृदय खोल कर करते हैं। हास्य-रस के ऊपर आपकी कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। हिन्दी साहित्य में आपका हास्य अपने ढंग का अनूठा है।

श्री कृष्णदत्त पात्कीवाल : आप स्वतन्त्रता-संमाम

के एक प्रमुख सेनानी हैं। वर्षों से 'सैनिक' दैनिक द्वारा आप हिन्दी पत्रकारिता की सेवा कर रहे हैं। इस पत्र ने हिन्दी की सेवा ही नहीं बल्कि जनता में स्वाधीनता की प्राप्ति के लिए अग्नि प्रज्वलित की थी। कई पुस्तकें आपने लिखी हैं। आज कल आप उत्तर प्रदेश विधान सभा के स्वतन्त्र प्रगतिशील दल के नेता हैं।

राजेश बोसित : नई पीढ़ी के प्रमुख कवि, लेखक और पत्रकार के रूप में आपने पर्याप्त ख्याति अर्जित की है। स्वभाव में मन-मौजी हैं। नियमित रूप से धारा प्रवाह लिखते रहते हैं।

भूदेव शास्त्री : सामाजिक चेतनाओं में संघर्ष-शील समाज के उत्थान के लिए सदैव प्रयत्नशील रहते हैं। विद्यार्थियों के लिए आपका द्वार सदैव खुला रहता है।

पत्र-पत्रिकाएँ : सैनिका अमर उजाली-उजाला, नव पभात, स्वराज्य, समालोचक, साहित्य संदेश, आदि पत्र-पत्रिकाओं द्वारा हिन्दी की श्रीवृद्धि में महत्वपूर्ण योग प्रदान कर रहे हैं।

आगरा हिन्दी विद्यापीठ, नागरी प्रचारणी सभा और नवीन लेखक संघ आगरा की साहित्यिक गतिविधियों को आगे बढ़ाने में अग्रसर हैं। राजेश्वर चतुर्वेदी, अंगराज, घनश्याम अस्थाना, राजेन्द्र रघुवंशी, कुलदीप, विद्याशंकर, सतीशचन्द्र चतुर्वेदी प्रेमी, हीरालाल जैन प्रेमी विद्यार्थी, सोमठाकुर तोताराम शर्मा पंकज और रमेश-कुमार शर्मा की ओर आगरा की ओलें लगी हुई हैं।

१७०, हाईकोर्ट रोड,
हैदराबाद—२

—कवि मामचन्द्र कौशिक

मुझे इसलिये एक बुद्धिमान् मनुष्य समझा जाता है
क्योंकि मैं जानता हूँ कि मैं कुछ नहीं जानता।

—सुकराल

डॉ० राधाकृष्णन् और पश्चिम

यह बात माननी पड़ेगी कि स्वामी श्री विवेकानन्द के बाद यदि किसी ने भारतवर्ष और बाहर भी तथा-कथित पश्चिम या यूरोपीय सभ्यता तथा संस्कृति की आलोचना कर उसका हर स्थान पर सुंदतोष उत्तर दिया है तो वह डॉ० राधाकृष्णन् ने ही। यह सच है कि श्री अरविन्द, गुरुदेव रवीन्द्रनाथ और महात्मा जी ने भी पाश्चात्य संस्कृति की टीका की है। श्री अरविन्द का 'आर्य' में भारतीय संस्कृति पर जो लेख प्रकाशित हुए हैं वे विचार और साहित्य की दृष्टि से बहुत ऊँचे हैं। गुरुदेव का अन्तिम प्रवचन "पश्चिमी सभ्यता का संकट-प्रस्त काल" एक श्राप है। महात्मा जी ने 'हिन्दु स्वराज' में यूरोपीय सभ्यता को शैतानी सभ्यता कहा और अन्तिम समय तक वे उससे जुझते रहे।

पर यह सब साहित्य पुस्तकों में रहा। इनमें से किसी ने यूरोप और अमेरिका के प्रत्येक देश में जाकर अपने विचारों को नहीं सुनाया। उनका जीवन लक्ष्य दूसरा था और उन्होंने उसी को साध्य किया। डॉ० राधा-कृष्णन् ने अपनी शक्तिशाली वाणी से यूरोप के प्रत्येक देश में अमेरिका के कई विश्वविद्यालयों में और अन्य स्थानों में भी भारतीय सिद्धान्तों तथा दृष्टिकोण का विवेचन तथा स्थापना की।

ऐतिहासिक दृष्टि से भारत पर यूरोपीय आक्रमण के बाद यहाँ तीन धाराएँ बहीं। एक ने यूरोपीय आक्रमण तथा राज्य से जो विचार और सभ्यता आई उसका प्रतिकार और विरोध किया। दूसरी धारा ने यूरोपीय सभ्यता को पूरी तरह बगैर विचार किए अपना लिया। तीसरी धारा ने यूरोपीय विचारों और संस्कृति को परखा और उसकी अच्छी बातों के समन्वय का प्रयत्न किया।

स्वामी विवेकानन्द जैसे प्रखर वक्ता ने भी 'प्राच्य और पाश्चात्य' पुस्तक में लिखा है: "पहले यह समझना होगा कि ऐसा कोई गुण नहीं है जिस पर किसी जाति विशेष का अधिकार हो, तब जिस प्रकार एक व्यक्ति में किसी-किसी गुण की प्रधानता होती है वैसे ही जाति के सम्बन्ध में भी होता है।" विवेकानन्द

ने आगे चल कर भारत के सम्बन्ध में कहा है: "मुझे चूमा कीजिए यदि इस यह कहें कि यह सोचना कि हमारे राष्ट्रीय आदर्श में भूल रही है मेरी मूर्खता है... इस देश का प्राण धर्म है, भाषा धर्म है तथा भाव धर्म है। आपकी राजनीति समाजनीति...आदि इस देश में चिरकाल से जैसे हुआ है वैसे ही होगा। अर्थात् धर्म के द्वारा यदि हो तो हो अन्यथा नहीं। आपके रोने विज्ञाने का कुछ भी असर नहीं होगा।

डॉ० राधाकृष्णन् ने स्वयं कहा है: "मैं भी हिन्दुत्व का अभिमान था और मेरा यह अभिमान स्वामी विवेकानन्द के कर्तव्य और उद्गारों से और भी प्रदीप्त हो उठा था। मिशनरी स्कूलों में और कालेजों में हिन्दुत्व के प्रति जो बर्ताव किया जाता था, उससे मेरा यह अभिमान तिलमिला उठा। मैं इस बात को मानने को तैयार नहीं था कि जिन जिन हिन्दु योगियों और उग्र-वेष्टाओं ने भारत की प्राचीन संस्कृति को हमारे लिए जगा रखा है और जिनकी साधना का परिणाम हमारा समस्त ज्ञान है, स्वयं वे ही आध्यात्मिक व्यक्ति थे।" डॉ० राधाकृष्णन् की भूमिका में हमारे धर्म की स्थापना तथा पाश्चात्य सभ्यता की तीव्र टीका ग़ी है। यह टीका उनके "हिन्दु व्यू आफ लाईफ", "आथडिय-लिस्ट व्यू आफ लाईफ", "करकी" आदि पुस्तकों में प्रखरता से प्रगट हुआ है। इन सभी में उन्होंने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है कि हम केवल धर्म के आधार पर ही सच्ची प्रगति कर सकते हैं। आथडिय-लिस्ट व्यू आफ लाईफ में उन्होंने पाश्चात्य विचार-धारा का समग्रता से विचार किया है। उन्होंने पाश्चात्य विचारधारा को उसी की भाषा में सुंद तोष उत्तर दिया है।

इस पुस्तक के पहले दो अध्यायों में उन्होंने अनी-स्वभाववाद, अज्ञेयवाद, संशयवाद, मानवतावाद, आधु-निकता, अधिनायकवाद आदि को निष्पक्षता से परखा है। दूसरे अध्याय के अन्त में उन्होंने कहा है कि दर्शन का मुख्य उद्देश्य समन्वय है। और इसीलिए उन्होंने अत्यन्त स्पष्टता से अपने विचारों का प्रतिपादन किया।

वह विचार इतने तीखे हो जाते थे कि स्व० डॉ० जोष ने डॉ० राधाकृष्णन् पर जो पुस्तक लिखी है उसका नाम “पूर्व का प्रयाक्रमण” देना पड़ा। जो अश्विनान स्वामी विवेकानन्द ने प्रारम्भ किया था। डॉक्टर राधाकृष्णन् ने वही ही भाव बढाया स्व० डॉ० जोष ने अपनी पुस्तक के पहले अध्याय “पश्चिम और पूर्व” में लिखा है कि पाश्चात्य सभ्यता ताश के कगारे पर खड़ी है। पर उन्होंने यह भी लिखा है कि आध्यात्मिक मूल्यों का प्रहरी मुझाये से गस्त है तथा एक पुराने वृक्ष के सघे तने जैसा है। उस पर आधार रखना कठिन है।

डॉ० राधाकृष्णन् ने स्वयं भी हिन्दु धर्म की निर्बलता को माना है। हिन्दु धर्म आज निकतेज तथा प्राणहीन सीखता है डॉ० राधाकृष्णन् ने हिन्दु धर्म और समाज के शरीर में जो कीटाणु घुस गए थे उन्हें निकालने का प्रयत्न किया है उन्होंने हर बार हिन्दु धर्म की अष्ट सामाजिक व्यवस्था तथा धर्मान्धता के विरुद्ध क्रोध करने का आह्वान किया है। वे पूर्व की अन्धकारों के मर्मार्थक हैं कि बुराईयों के। स्व० डॉ० जोष ने अन्त में ठीक ही लिखा है कि “राधाकृष्णन् पूर्व की अन्तर्दृष्टि को पश्चिम की दुनियादारी से जोड़ते रहे।”

श्री कोदन्डराव की पुस्तक “पूर्व विरुद्ध पश्चिम” में तथा कथित विरोधों का खण्डन किया गया है। उसकी भूमिका में डॉ० राधाकृष्णन् ने लिखा है “कुछ शताब्दियों के पहिले तक पश्चिम और पूर्व में कोई मूलभूत भेद नहीं था। दोनों ने एक दूसरे को हराभरा रखा है। ईरान और यूनान, भारत और यूनान, इजरायल और यूरोप आधुनिक संघर्षों का समूह दिलाते हैं। भेद अरुण थे पर वे भौगोलिक या जातीय नहीं थे। मूलभूत बातों में भेद न हो कर केवल इधर उधर जो भेद था। हम तरह सभ्यताओं में कोई मूलभूत संघर्ष नहीं रहा है। गहनवाद, परलोकवाद, पश्चिम में मिलते हैं वेसे ही आधा धर्म, अप्रामाणिकता, दुनियादारी की चीन और भारत में भी कम नहीं है।

मेरी यह मान्यता है कि मानव स्वभाव सभी दूर एक सा है और वह भौगोलिक तथा ऐतिहासिक तथ्यों के कारण ही अलग-अलग प्रकार से विकसित हुआ है... मैं इन धारणा पर पहुँचा हूँ कि नई सभ्यता पूर्व या पश्चिम की नहीं हो कर विश्वव्यापी होगी। विज्ञान और तकनीक के सम्पर्क द्वारा मानव की प्रतिष्ठा और

आध्यात्मिक मूल्य की अन्तर्दृष्टि के ऊपर ही उसकी रचना होगी।

इसी बात को श्री रामधारीसिंह दिनकर ने अपनी पुस्तक संस्कृति के चार अध्याय में इस प्रकार कहा है “राधाकृष्णन् अतीत की अपेक्षा नहीं सिखाते। परम्पराएँ एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को बाँधनेवाली कड़ियाँ होती हैं... अपेक्षा न तो पूर्व की करनी है न पश्चिम की न तो वर्तमान की करनी है और न अतीत की। अतीत से बिल्कुल छिन्न होना किसी के लिए भी सम्भव नहीं होता न कोई लौट कर अतीत में पहुँच ही सकता है। पूर्वा जगत में पश्चिम का आगमन वापस जाने को नहीं, बल्कि यहाँ ठहरने को हुआ है। इसी प्रकार पूर्व ने पश्चिम को जो आध्यात्मिक उत्तेजना दी है वह भी वहाँ की संस्कृति को अनुप्राणित करने वाली है। राधाकृष्णन् का सन्देश है कि मनुष्य का भावी कल्याण इसमें है कि वह अतीत और वर्तमान तथा पूर्व और पश्चिम के बीच समन्वय का पता लगाए तथा सामंजस्य स्थापित करे... मनुष्य मात्र की आध्यात्मिक आवश्यकता यदि एक है तो उसका दर्शन भी एक होना चाहिए और डॉ० राधाकृष्णन् ने अब तक जो कुछ भी लिखा है वह इसी विश्वदर्शन का आख्यान है।”

“धर्म में पूर्व और पश्चिम” पुस्तक में डा० राधाकृष्णन् ने लिखा है कि वह समय हमारी आशाओं से भी जल्दी आ रहा है अब गिरजाघर मस्जिद और मन्दिर हर भले आदमी का स्वागत करेंगे। उस समय ईश्वर में श्रद्धा तथा मानव के प्रति प्रेम यही परस्पर मैत्री और सेवा की भावना के लिए आवश्यक माने जाएँगे। इस तरह सारी मानवता एकामता से बन्ध जाएँगी। “...जिम तरह रेनाई ने एक नए फूल काम्बो सान्तो को जन्म दिया “क्या हम यह आशा नहीं कर सकते कि आनेवाले युगों में पूर्व और पश्चिम के धर्मों का जो मिलाप होगा उनसे भी अत्यन्त पुष्प का विपुल संभार आएगा ?” यह उन्होंने १९२६ में कहा था। केनाबा के मेकगील विश्वविद्यालय में १९५४ में उन्होंने “पूर्व और पश्चिम” विषय पर प्रवचन दिए थे। उनके अन्त में उन्होंने कहा है मानवजाति एक ही वृद्धम में निकली है। उसने केवल भिन्न रूप धारण किए हैं। अब वह इन भिन्न रूपों के समन्वय की और प्रयत्नशील है। पूर्व और पश्चिम का भेद समाप्त हो गया है। नए

जगत का सम्पूर्ण विश्व का नया इतिहास प्रारम्भ हो गया है। वह विस्तार में बड़ा, रंगों में विविध तथा गुणारमकता से पूर्ण होगा।

‘श्रद्धा की पुनर्स्थापना’ शीर्षक ग्रन्थ में सनातन धर्म की महत्ता को स्थापित करते हुए उन्होंने कहा है “हम तनाव भय और अवसर के युग में रहते हैं। हम हमारी कमियों के प्रति जागरूक हैं। यदि हमारे में ध्येय को देखने की दृष्टि है और उसके लिए कार्य करने का साहस है तो हम उन कमियों को दूर कर सकते हैं।”

इस तरह हम देखते हैं कि डॉ० राधाकृष्णन् के सम्पूर्ण प्रतिपादनो में पूर्व के प्रति जो गलत भ्रम और सन्देह पश्चिम में फैला हुआ था उसका तीव्र खण्डन तथा विरोध है। इससे यूरोप में एक नई जिज्ञासा का उदय हुआ। भारत में इसका शुभ परिणाम यह हुआ कि पश्चिमात्य विचारधाराओं ने अपने नए चैंधियानेवाले प्रकाश में ज़िब हीन भाव का प्रसार किया था वह बहुत कुछ मिट गया।

डॉ० राधाकृष्णन् ने केवल अस्वीकारात्मक भूमि को ग्रहण नहीं की उन्होंने एक विश्वदर्शन की कल्पना का प्रतिपादन किया। यह ठीक है कि डाक्टर राधा-

कृष्णन् के प्रयास बौद्धिक क्षेत्र तक सीमित लगते हैं पर यह नहीं कहा जा सकता कि उनका कोई आध्यात्मिक आधार ही नहीं है। उनके कई आलोचकों का यह मत है कि डॉ० राधाकृष्णन् के तत्त्वज्ञान में स्वयं का अंश बहुत कम है। पश्चिम की कई बातों को उन्होंने गलत तरह से रखा है। उनका साहित्य पढ़ने पर इस आग्रही वृत्ति के दर्शन होते हैं पर वे स्पष्टता से एक विशिष्ट दृष्टिकोण को रखते हैं जिससे भावि समन्वय की भूमि तैयार होती है।

पश्चिम के अन्धानुकरण के प्रति उन्होंने जो चेतावनियाँ दी हैं उनके प्रति सजग और जागरूक होना आवश्यक है। हम यह देखते हैं कि भौतिकवाद का भस्मासुर आज हर शुभ वस्तु और शिव भावना प्रहाथ रखने को दौड़ रहा है। पश्चिम ने भौतिक भूखों को जगा कर उसके मूल रूप को ढक दिया है।

डॉ० राधाकृष्णन् ने पश्चिम का शिव रूप देखा है और उसे स्पष्टता से रखा भी है। इसी कारण वे समन्वय का दर्शन रख पाए हैं।

यह बात सर्वमान्य होगी कि डॉ० राधाकृष्णन् विश्व के महान समन्वयवादी दार्शनिकों में से एक हैं।

बड़ा रावला,
जूनी, इन्दौर

—नि. छ. जमींदार

क्रोध मत करो

मैं चाहता हूँ कि जो लोग समस्त मनुष्य जाति को परामर्श देते रहते हैं—
यौमस ये कैम्पस के निम्न लिखित वाक्य को पढ़ें :

“तुम दूसरों पर क्रोध मत करो क्योंकि तुम दूसरों को वैसा नहीं बना पाते
जैसा कि तुम चाहते हो क्योंकि तुम स्वयं अपने को उस प्रकार का नहीं बना पाते
जैसा कि तुम चाहते हो।”

—वैविड प्रेसन

विवाह-वेदिका

पात्र-परिचय

नागय्या : वधू का पिता (उम्र ४० वर्ष) नए वस्त्र पहने हैं। धोती, उतरीय, कुर्ता।

नरसिंहम : वर का पिता (उम्र ४५ वर्ष) ग्लास्को धोती, बनारसी जरी उतरीय, कमीज, कोट, हाथ में लकी उंगलियों में दो अंगूठियों अधपका क्राफ, छोटी-सी बन्धी चोटी।

रघु : वर (उम्र २५ वर्ष) धोती, कमीज, उतरीय, लालट पर शिरमौर, कड़ाक।

नारायण : नागय्या का पुत्र उम्र २० धोती, आकशर्ट, क्राफ और मसैं।

निकेपराय : इस सम्बन्ध को जोड़नेवाला आसामी-धोती, आकशर्ट, तौलिया, क्राफ फ्रेंच कतरन की मुँछें उम्र २०।

शास्त्री : पुरोहित-धोती, जनेऊ, कमर पर अंगवस्त्र, भुजा पर एक और वस्त्र, शरीर और मुँह पर भस्म की रेखाएँ, चोटी, कमर में नस्य की डिबिया सोसे उम्र ५०।

रवि और राजु : रघु के मित्र।

पद्मा : वधू (उम्र १८ वर्ष) मुँह रेशमी साड़ी, जाकेट, देह भर में आभूषण, शिरमौर लालट पर मुँह पर टीका।

रमणम्मा : पद्मा की माता। उम्र ३५ मुँह पर कुंकुम की बिंदी, जरी किनारेवाली साड़ी, रेशमी जाकेट, कानों में छोटे-से कुण्डल-हाथों में सोने की नूदियों, कंठमाला।

(समय-रात्रि-रंगमंच के बाईं तरफ मकान, मकान के सामने विवाह का पंढाल, तोरण मंच दिखाई देते हैं। पंढाल के चारों तरफ टट्टीयों का बाका। एक ही द्वार है। द्वार के एक तरफ स्टूल पर पेट्रोमाकस लाइट जल रहा है।)

नागय्या पंढाल में से मंच पर आता है। आते ही बिंग में से बाहर भाँक कर लकी परेशानी के साथ इधर-उधर घूमता रहता है। बाहर से निकेपराय प्रवेश करता है।)

निकेपराय : (आते ही) क्यों नागय्या जी ?

नागय्या : आ गए बाबू, तुम्हारी ही राह देख रहा था। वर कहाँ ?

निकेपराय : आ तो रहा है।

नागय्या : कब ? मुझूतें का समय बीतता जा रहा है।

निकेपराय : आज के युवक घड़ी देखकर ही वक्त पर निकलते हैं। ठीक वक्त पर वह पहुँच जाएगा, घबराते क्यों हैं ?

नागय्या : घबराने की बात नहीं, बाबू। सभी लोग आकर बैठ गए हैं। सब कोई यही पूछते हैं— 'वर, कहाँ ?'

निकेपराय : आता ही होगा। मैं वहीं से आसी आ रहा हूँ। बन-ठनकर आएका मोटरकार में आने में देरी क्या होगी।

नागय्या : मेरा मतलब यह नहीं कि आएका...

निकेपराय : जाने भी तो दीजिए। मैंने दामाद को पहले ठीक से देखा न होगा। आकर देख लीजिएगा।

नागय्या : आज नया-नया थोके ही देख रहे हैं। बेटी को देखने आया ही था न।

निकेपराय : हाँ, ठीक कहा।

नागय्या : उस वक्त देखा था न।

निकेपराय : तो क्या पसन्द आया ?

नागय्या : मेरे पसन्द या नापसंद से क्या मतलब है ? वे दोनों एक दूसरे को पसन्द कर चुके हैं। बस ! हमें और क्या चाहिए ?

निकेपराय : उनकी बात छोड़ दीजिए। अपनी बात कहिए न ? हमारी पद्मा के योग्य घर ही ह न ?

नागय्या : और कहना ही क्या ? इस सम्बन्ध को ठीक करने वाला निकेपराय ठहरा।

निकेपराय : (मुस्कराते हुए) मेरा क्या हाथ है।

नागय्या : विवाह ते करना मामूली नहीं। मैं जानता हूँ, कैसा कठिन काम है। तुमने अपनी सामर्थ्य

से साध लिया, वरना मुझ से न बनता।

नि० : यह सब भगवान की कृपा है। मैं तो केवल निमित्त मात्र हूँ। बस।

ना० : भगवान की कृपा तो है ही, फिर भी.....

(मोटरकार आकर द्वार पर रुकने की ध्वनि सुनाई देती है दोनों उस ओर जाकर विंग में देखते हैं।)

नि० : आइए, पधारिए।

ना० : पधारिए।

(आगे आगे शास्त्री और पीछे वर, उसके दो मित्र तथा रघु का पिता नरसिंहम भीतर प्रवेश करते हैं- वर के दोनों दोस्त पैट और बुश शर्ट पहने हुए हैं।)

नि० : नमस्ते जी, नरसिंहम जी।

ना० : आइए, समची सादर।

नरसिंहम : (नमस्कार करके रघु से) देखो, बेटा। (रघु ठहर कर पिता की ओर देखता है) यह क्या, लॉग ठीक से खोलो तो।

शास्त्री : (सुंघनी खींचकर बिज्या को कमर में खोलते) ओहो! फिर लॉग खुल गई, ठीक से रहने भी तो दे। (उधर-उधर खींच-खोलते रहने पर वह रहेगी। कैसे? (यह कहते शास्त्री लॉग ठीक करके रहते हैं))

नरसिंहम : (नागध्या से) लाज कहिए, हमारा जमाना ही कुछ और है (रघु के मित्रों को दिखाते हैं।) ये मेरे लक्ष्मी के दोस्त हैं। मेरा लक्ष्मी भी ऐसे ही पैट, कोट, बूट पहनता है। आज तक कभी इसने सोती नहीं पहनी।

ना० : यह भी कोई प्रथा-विधा है! इन दस दिन में सिखाते तो काम बन जाता।

नि० : (हँसते हुए) सिखाने के लिए कोई अच्छा गुरु नहीं मिला; इसलिए आपके हाथों में सौंप रहे हैं न।

शास्त्री : तो इसका मतलब, आज से लक्ष्मी का भला बुग सब नागध्या को ही देखना होगा!

नि० : वे नहीं तो उनकी लक्ष्मी देखेगी। हम कौन होते हैं इस मामले में!

शास्त्री : (कहकहा लगाते) ओहो, निखिराय ने अच्छी खिन्नी लगाई। (नरसिंहम से) सुन रहे हैं न!

नरसिंहम :...हाँ, ठीक ही तो कह रहा है-

विवाह के बन्धन में बन्धने तक ही हमारी जिम्मेदारी है, उसके बाद तो उन्हीं को सब कुछ संभालना होगा।

ना० : (हँसते) इन मजाकों से जी नहीं भरता। पहले भीतर चक्षिए। (सब भीतर जाने लगते हैं। घुर को खड़ाऊँ पहने चलने की आदत न होने के कारण दोनों पैर टकराकर गिरने लगता है।)

रवि : रघु। एक्को बूट नहीं, खड़ाऊँ है खड़ाऊँ। (नागध्या हँसते हुए सब को "भीतर आइए, भीतर" कहते उन्हीं भीतर भेज कर आनेवाले सज्जनों का स्वागत करने के लिए वहीं खड़ा हो जाता है। भीतर से शास्त्री का कण्ठ सुनाई देता है।)

शास्त्री : शुरु करो भाई बाजा-भञ्जरी! (आ जानेवाले राही। "मुझ को न भूल जाना" नामक क्रिसम का गीत बज उठता है। उस ध्वनि में शास्त्री जी के मन्त्र-पठन का अर्थ कोई समझ नहीं पाता है। नागध्या अतिथियों का स्वागत कर भीतर भेजते रहते हैं। आखिर शास्त्री और भञ्जरीयों की ध्वनि रुक जाती है।)

देखो भाई, वधू को जल्दी लाइए।

(नागध्या की पत्नी रमणम्मा का प्रवेश, उसके हाथ में एक थाली और उसमें नए वस्त्र हैं।)

रमणम्मा : क्यों जी, आप ही को।

ना० : तुम भी यहाँ आ गई हो? उधर पुरोहित जी लड़की को विवाह-वेदिका पर लाने के लिए चिन्ता रहे हैं। सुनती नहीं?

रमणम्मा : उनकी चिन्ताहट का कहना क्या? बेटी को लाकर पीढ़ों पर बिठा आई हूँ।

एक नारी का कण्ठ : रमणम्मा आभी। (भीतर से पुकार)

ना० : कोई बुला रहे हैं, भीतर चली आओ।

रमणम्मा : आप यहीं रुकें रहें तो दायाद को कपड़े कौन देंगे! आप भी चलिए तो।

ना० : अच्छा चलो।

शास्त्री : (पंढाल में) जल्दी वर वधू को नए वस्त्र देते हैं, लाइए।

(रवि और राजू मंच पर आते हैं)

रवि : (जेब-कमाल से हवा करते) भाई राजू! वधू को देना, पसन्द आई?

राजू : तुम को?

रवि : मेरी क्या, पहले तुम अपनी बात कहो । और क्या ?
क्या पसन्द आई ? कितने अच्छे दोगे ?

राजू : वैसे तो बुरी नहीं, उत्तीर्ण अंक दे सकते हैं ?

रवि : तुम्हारा घर ।

राजू : अरे इससे ज्यादा अंक कौन देगा ? कौन इतनी फेशन बुल है ?

रवि : अरे बाबू । तुम्हारा घर तो ईसा है, लेकिन उसमें अकल की कमी है ।

राजू : देखो, रवि ! खबरदार ! मुझे जानते हो न ?

रवि : हूँ । वरना तुम कहते क्या हो ? तुम्हें रिजिनासिटी के लिए अंक देने को कहा या फेशन को ?

राजू : अरे कौन ऐसी सुन्दरी है ! क्या तुम शत-प्रतिशत दोगे ?

रवि : अरे सौ न हो, पर पचहत्तर जरूर दे सकते हैं ।

राजू : मैंने एक तरफ देखा । ठीक से मुँह दिखाई नहीं दिया । चलो, ठीक से देखेंगे । हम रघु के सामने दिखाई नहीं देंगे तो वह बुरा मानेगा ।

रवि : अजबे, अभी से उस उमस में कहा मरते रहेंगे ?

राजू : सो तो है ही, पर (भीतर से आककर) देखो, देशी पंखे आ गए हैं । अब कोई तकलीफ नहीं ।

रवि : देशी पंखे । देशी पंखे क्या बला है, तुम्हारा घर !

राजू : (हँसकर) अरे मेरी खोपड़ी में अकल नामक पदार्थ की कमी भले ही हो पर तुम्हारी खोपड़ी में केवल गोबर है, गोबर । देशी पंखे जानते नहीं हो ? हवा करने वाला पंखा है ब्रदर, पंखा ।

रवि : ओ हो । ऐसी... (नरसिंहम का प्रवेश)

नरसिंहम : (आते ही) क्यों बेठा । यहाँ क्यों हो ? भीतर चलो । (दोनों युवक भीतर चले जाते हैं । नरसिंहम ई पैर जले बिछी की भौंति इधर-उधर टहल रहा है । निक्षेपराय प्रवेश करता है ।)

नि० : क्यों जी, उदास क्यों हैं ?

नरसिंहम : क्यों जी । अरे भाई अकल आदमी समझ कर विश्वास किया तो हमारा सर्वनाश किया

नि० : क्या हुआ ? बताते क्यों नहीं ?

नरसिंहम : ओ सी हुआ हो, तुम्हें क्या मतलब ? सर्वनाश तो हमारा हो रहा है । क्या हमारे तुम्हारे बीच दादा-परदादाओं के समय की वुरमनी है ?

नि० : आप क्या कहते हैं ? राम राम ।

नरसिंहम : तो मेरे साथ ऐसा थोखा देना कहीं तक उचित है ?

नि० : मैंने थोखा दिया । आप यह क्या कहते हैं ।

नरसिंहम : थोखा नहीं तो क्या है ? लक्षके को दहेज में देनेवाली जमीन फ्री-एकड़ कितना होता है ?

नि० : आज के भाव अनुसार तीन हजार रुपए ।

नरसिंहम : सच ?

नि० : अरे, झूठ ही बोलना था तो बाँच इसार से कम क्यों बताता ? इस निक्षेपराय के कथन में चरा भी अत्युक्ति हो तो मोली से उड़ा सीजिए । क्यों सहमत हैं न ?

नरसिंहम : अरे, बड़-बड़ कर क्या बकते हो ? तुम निक्षेपराय हैं तो मेरा नाम नरसिंहम है । तुम समझते क्या हो ? मैं कुछ पता बता लगाए बिना ही बोल रहा हूँ ? एक एक पन्द्रह सौ में बिका तो अमरफ लो बहुत मिल गया ।

नि० : कोई दुरमन बताता होगा । उसकी बातों पर यकीन कर के ऐसा कदना आपको शोभा नहीं देता ।

नरसिंहम : किसी ऐरे-गैरे की बातों पर यकीन करनेवाला नहीं, यह नरसिंहम । एक भले आदमी ने बताया है ।

नि० : अहा ! सब भले आदमी हैं देखने में । बताइए तो वह कौन हैं ।

नरसिंहम : क्यों, उसका सिर नोचने के लिए ? इसीलिए उस भले आदमी ने पहले ही कहा था—

नि० : क्यों नहीं कहेगा ? झूठाखोर इतना भी सावधान नहीं रहता । उसको मालूम है, सब कोई उसके मुँह पर थूँके । देखिए नरसिंहम जी । अभी कुछ बिगड़ नहीं, मेरी बात पर यकीन कीजिए ।

नरसिंहम : अब रहने दो भाई तुम्हारी बक-बात । यकीन करना है, यकीन । दूसरे सम्बन्ध वाले नगद दस हजार रुपए मेरे बेटे के बाखों पर लड़ाने वाले

ये। तुमने कहा, यह परिवार प्रतिष्ठित है, लक्ष्मी सुन्दर है, तो मैं तुम्हारी बातों में आ गया। एक हजार कम होने पर भी मान लिया। कौन जानता था, उसका परिणाम ऐसा होगा? आखिर यत्नीन दिला कर गला काटना चाहते हो?

नि० : ऐसा कभी न समझें। एक एकड़ तीन हजार न होगा तो मैं अपना कान कटवा लूँगा। मुहूर्त का समय हो रहा है। पहले विवाह होने दीजिए।

नरसिंहम : हूँ। विवाह हो जाने पर हमारी क्या हालत होगी। मैं भली भाँति जानता हूँ। चोटी तुम्हारे हाथों में पकड़ा कर..... उल्लूक करना होगा। यह दाल मेरे पास चलने की नहीं।

नि० : तो मैं आपको कैसे समझाऊँ। यह तो बताइए, आखिर मुझे क्या करना होगा?

नरसिंहम : हूँ ऐसा कहो! रास्ते पर आओ, तुम्हें समझा देता हूँ। उस लक्ष्मी की जिन्दगी के साथ खिलवाड़ करना मैं भी नहीं चाहता। उस तीन एकड़ जमीन के साथ और तीन एकड़ जोड़ कर घोषणा करने के लिए कहो। सब कुछ ठीक हो जाएगा।

(यह कहके भीतर जाने लगता है)

नि० : देखिए, नरसिंहम जी!

नरसिंहम : यह सब मेरे पास चलने का नहीं। मैंने जो कुछ कहा, वैसा होना ही चाहिए, बस। इसमें खरा भी कमी-बेशी नहीं। जो कुछ करना हो, जल्दी करो।

(नरसिंहम चले जाते हैं, भीतर से शास्त्री प्रवेश करता है)

शास्त्री : अजी, निक्षेपराय महाराज।

नि० : (झुंमलाइट से) ठहरो भी तो।

शास्त्री : ओ हो, मुझे भी मालूम है, बरात के लोगो के भोजन का समय बीतना नहीं चाहिए। पलभर में तीन छलांग मार कर सूत्रधारण घटना तक पहुँच गया हूँ। इससे भी जल्दी कौन पुरोहित विवाह करा सकता है? देरी तो केवल आप की है।

नि० : शास्त्री जी महाराज मामला कुछ बिगड़ गया है।

शास्त्री : आज्ञा दीजिए। इसी लगन को आधे चण्डे में समाप्त कर सकता हूँ। छः चण्डे तक लगाना हो तो भी तैयार हूँ। यह सब मेरे हाथ की करामात

है। बस, केवल आपकी दया चाहिए।

नि० : हूँ यह सब बाद को देखा जाएगा, पहले काम देख लीजिए।

शास्त्री : ऐसा ही। (जल्दबाजी में भीतर जाते जाते द्वार पर रवि से टकराता है।)

शास्त्री : (कौपते हुए रवि से) क्षमा करो भैया। काम की जो जल्दी...

रवि : कोई बात नहीं, जाइएगा।

(शास्त्री चला जाता है। रवि निक्षेपराय की ओर घूम कर) अजी, निक्षेपरायजी! यह सब कैसे टंटा है?

नि० : टंटा, ऐसा तो कुछ नहीं भाई।

रवि : क्यों नहीं? सम दल बना कर काना फूँसी कर रहे हैं। कोई कुछ नहीं बतता।

(नारायणराव का प्रवेश)

नि० : ओ हो, तुम हो! जरा इधर आओ।

(अलग ले जा कर उसके कान में कुछ कहने लगते हैं।)

नारायण० : (सुनते हुए) हाँ, क्या कहा? सच।

नि० : जल्दी मत करो भैया। तुम क्यों बीच में पड़ते हो? पिताजी को जल्दी बुला लाओ।

नारायण० : अच्छा। (चला जाता है)

नि० : (रवि से) जानते हो, यह वधू का भाई नारायणराव है।

रवि : ओ हो, ऐसी बात है। कुछ झगड़ा-टण्टा न हो तो फिर यह काना फूँसी कैसी?

नि० : धरे भाई! शादी के समये छोटे-मोटे झगड़े होते और निपटते रहते ही हैं।

रवि : दहेज को लेकर तो नहीं है न यह सब झगड़ा? इन दहेजों से मरते जा रहे हैं। बैठे-बैठे हमारी जान चली जा रही है।

(जेब में से सिगरेट और दिया सलाई निकाल कर सिगरेट जलाता है)

नि० : (कुछ सोचते हुए से) देखो भाई, तुम्हारा क्या नाम बताया?

रवि : रवि है।

नि० : देखो रवि, वर रघु तुम्हारा अच्छा दोस्त है न?

रवि : जी हाँ !

नि० : उससे कुछ बात करनी है ।

रवि : ओ ! दहेज का विजनेस हम तक क्यों ? आप ही लोग निपटा लीजिए ।

नि० : जब हमारे बस की बात नहीं होती है, तभी ऐसे विषयों में हम आप लोगों के पास पहुँच जाते हैं ।

रवि : दहेज तीन एकड़ जमीन देने का निश्चय हो गया है न ?

नि० : हाँ, तीन एकड़ देने को अब भी तैयार हैं ।

रवि : तो फिर यह फगड़ा-फिसाद क्यों ?

नि० : मैंने कहा था कि एक एकड़ तीन इंचार रुपए का है । किसी कमबख्त ने नरसिंहम जी को बताया कि वह डेढ़ इंचार से ज्यादा न होगा । उनका स्वभाव तो तुम जानते ही हो । इसी को आधार बना कर विवाह-वेदिका पर शादी रोके बैठे हैं ।

रवि : तो वे चाहते क्या हैं ?

नि० : उस कमी को पूरा करने के लिए और तीन एकड़ चाहते हैं ।

रवि : यह कैसा अन्याय है ?

नि० : अन्याय क्या है ? अखिर वे तो वर के पिता ठहरें । वे जो भी माँगे समाज में उनकी चलती है ।

रवि : चलती है, उनकी हाँ में हाँ मिलानेवाले हो तो साफ़ कह दीजिए, नहीं देंगे । देखेंगे, कैसे नहीं सुनते हैं ।

नि० : सब हो चुका ! अब उनसे कहने पर भी कोई प्रयोजन न होगा । रघु सं मेरा कहना उचित न होगा ।

रवि : सो तो है ही !

नि० : बेचारे इनके कुल-मिलाकर ६ एकड़ जमीन है । सब देने से उनकी क्या गत होगी, तुम्हीं सोचो, भैया ।

रवि : नरसिंहम के हृदय नहीं है । उनको मैं खूब जानता हूँ । पर रघु ऐसा व्यक्ति नहीं, नरम दिल का है । आप चबराइए नहीं, मैं बात करूँगा ।

(चला जाता है ।)

नि० : रवि बाबू ! एक परिवार को डूबने से बचाने का पुण्य मिलेगा, तुम्हें ।

(रवि सर हिलाते चला जाता है नागध्या और

नारायण राव प्रवेश करते हैं ।)

ना० : उफ़ ! कैसा अन्याय किया भगवान्, अब क्या होगा ?

नि० : नागध्या जी ! हम तो कार्यवादी हैं । कुछ तो करना ही होगा ।

नारायण० : करेंगे क्या ? किसी की चिक्नी-चुपड़ी बातें सुन कर वह मेरी बहन का गला काटेगा ? मंगलसूत्र बाँधने नहीं देगा ? वह भी देखूँगा, कैसे बाँधने नहीं देता है ?

नि० : देखो, नारायण ! कौंटा जा कर कैले के पत्ते पर गिरे या पत्ता जा कर काँटे पर, दोनों तरह से पत्ते को ही नुकसान होता है । यह जवदाजी क्यों ?

ना० : सो तो है ही ! अब हमें क्या करना होगा ?

नारायण० : इनकी माँग पूरी कीजिए और उपाय ही क्या है ?

(रवि प्रवेश करता है)

ना० : उनकी माँग पूरी करना है ?

नि० : (रवि को देख नागध्या से) ठहरिए तो, (रवि की ओर घूमकर) क्यों बाबू ! क्या कहा !

रवि० : रवि से मेने बात की, यह सब सुनकर बेचारा वह बहुत दुखी हो गया !

नि० : तो क्या कहता है ?

रवि० : मेरे पिताजी से कहने पर भी कोई लाभ न होगा, वे सुनने नहीं ।.....

नारायण० : “इसलिए उनके कहे अनुसार ही जिए” यही कहता है न ?

रवि० : यदि इस विवाह को ठीक तरह से संपन्न करना हो तो दूसरा कोई मार्ग नहीं है ।

नि० : यह तो उसके कहने की क्या जरूरत है ? उसके पिता ने ही साफ़ बता दिया था न !

रवि : नहीं-नहीं ! दोनों के कथन में अन्तर है । यदि आप लोग इस समय यूँ ही ६ एकड़ दक्षिणा के रूप में घोषित करेंगे, तो रघु उस तीन एकड़ को नहीं लेगा । नागध्या को ही छोड़ देगा ।

ना० : ऐसा उसने कहा है क्या ?

रवि० : कहना ही नहीं, बल्कि कहे अनुसार करेगा भी

ना० : रघु का कहना कुछ अच्छा ही अच्छता है ।

उससे यह होगा कि वह अपने पिता का प्रतिवाद करने वाला भी न होगा और साथ ही हम को भी तकलीफ में फँसने से बचानेवाला भी होगा।

रवि० : हाँ हाँ। उसका अतिशय ठीक यही है।

ना० : बेटा, इस भले आदमियों के बीच एक-दूसरे की घोषणा करवाकर उसे फिर वापस लेना अच्छा न होगा।

नारायण० : अच्छा बुरा तो बाद की बात है। ठीक कल भी ऐसा ही होगा, इसका क्या भरोसा है। आज पिता का विरोध न कर सकनेवाला कल कैसे कर सकेगा? आखिर वह उसी का पुत्र ठहरा! यह सब व्यर्थ की आशाएँ हैं। यदि देना की है तो उस पर हमीद छोड़कर खुशी के साथ दे दीजिए।

ना० : मेरे शरीर में प्राण रहते तक यह संभव नहीं। मैंने अच्छा सम्बन्ध समझा था वह तो इस प्रकार मिट्टी में मिला गया। उनकी इच्छा की पूर्ति करने पर भी कल सड़ुराला में जा कर मेरी बेटी क्या सुख पावेगी। इससे अच्छा है कि उसे ले जा कर किसी गंगा में डूबो आवे।

रवि : नगदया जी।

ना० (चिन्ता के साथ) क्या कहें, बेटा। मेरे तो एक ही लक्ष्य है। जो कुछ समीन है, बेटी को लेकर मैं उसे राह का सिखारी बना दूँ। आज तक हमारे पास जो कुछ है, उसमें से दूसरों को कुछ दे, हम भी कुछ खाते रहें हैं। कल से क्या हम भीस मॉग कर खावें? मेरी हैसियत के लिए तीन एकड़ दहेज में देना भी उपादा है। पहले इस शर्त को मान लेना ही मेरी सब से बड़ी भूल है। नारायण की माँ के दूध करने पर भी बेटी सुखी रहेगी, यह सोच कर मैंने मान लिया। बेवकूफी हमसे पहले ही हो गई, अब फिर हम कैसे कर सकते हैं।

रवि : नागदया जी, आप दुःखी मत होइए।

वि० : आप शान्त हो जाइए! बेटीवाले हर पिता के मामले में ही कठिनाइयाँ हैं। हमारी सामाजिक स्थिति ही ऐसी है। मैं फिर एक बार नरसिंह जी को समझाने की कोशिश करूँगा। (निकलते हुए) चलो, नारायण!

ना० : नारायण किसलिए?

वि० : उसका रहना सख्ती है, बताता हूँ,

चलो भाई।

(दोनों चलते हैं)

ना० : मैंने अपनी क्षिदगी अब तक बड़ी प्रतिष्ठा के साथ काटी, अब क्या कहें, बेटा।

रवि : वे दोनों गए हैं। देखेंगे, उनको अपने दीजिए।

(रमणम्मा प्रवेश करती है)

रमणम्मा : (आते ही पति को लक्ष्य करके) अच्छाई-बुराई सब कहीं होती हैं। बात करना भी चाहूँ, वह दिखाई दें तब तो।

ना० : (सुम्नसाहृद के साथ) बात क्या करोगी। रमणम्मा : वह है न...(रवि को देख रुक जाती है)

रवि : भौंप कर नागदया जी, मैं फिर मिलूँगा।

ना० : परवाह नहीं बेटा! यहीं रहो। (पत्नी से) यहाँ कोई पराया नहीं, कहो न।

रमणम्मा : कहने के लिए क्या है, मेरा घर। घर की बहिन है न। बड़ी साहिबा है, उसे हमारी दो दुई साड़ी पसन्द नहीं आई।

ना० : साठ रुपए की साड़ी पसन्द नहीं आई?

रवि : वह तो अपने पिता की प्रतिस्ति है, नागदया जी! उसने तो दहेज के डर से एक गँवार के साथ अपनी बेटी ब्याह ही है। गहने और साड़ियों का पागलपन मदा उसके घर पर सवार रहता है और उसे कोई चिन्ता ही नहीं।

रमणम्मा : ऐसी बात है।

ना० : तो वह कहती क्या है?

रमणम्मा : कहगी क्या? मुँह फुलाए बैठी है। नाक तिकोड़े कहती है—“हमें साड़ियों की कोई कमी नहीं है और न साड़ी के लिए ही हम शादी में आई हैं। भाई की शादी में ऐसी साड़ी ले जाऊँगी तो मेरे गँववाले सब परिहास करेंगे।” सब के सामने चित्ता-चित्ताकर कहती है—“सौ रुपए में रेशमी साड़ी मिलती है।”

ना० : ऊँहूँ। (गहरी साँस लेते हैं)

रमणम्मा : कहती है—“साड़ी दिलाने में अब-सर्व्व हैं, कह दीजिए, अपने रुपयों से खरीद कर कहूँगी कि भाई की शादी में दी गई है।” सौ रुपए इधर फेंकिए तो, हजारों खर्च हो रहे हैं। दस में सवारह।

ना० : छिः की। मुँह बन्द करो।

रमणम्मा : मैंने कहा ही क्या ? नारायण क्यों होते हो ?

रवि : अघली काम तो होमे को नहीं, बीच में साधियों का टंटा क्या है।

रमणम्मा : (आश्चर्य के साथ) अघली काम तो होने को नहीं।

ना० : हाँ, हाँ। बाकी तीन एकक देने पर ही हामाद साहब बेटी के गले में मंगलसूत्र बाँधनेवाला है।

रमणम्मा : क्या कहा। बाकी तीन एकक भी। यह कैसा अन्धाय है। राम, राम।

ना० : यह हम से देखा नहीं जाता। चलो, दोनों नाक-मुँह बन्द कर किसी ऊँचे में कूद पड़ेंगे। घासी भ्रमर से मुक्त हो जाएंगे।

रमणम्मा : पीढ़ों पर की शादी रुक जाती है तो क्या मेरी बेटी जिन्दा रहेगी ? फिर उसकी शादी होगी ? (रवि से) बेटा, समझा-बुझाकर ठीक करो, मैं अगले जन्म में तुम्हारे पेट में पैदा हूँगी। चाहे तो मेरे पास एक हजार रुपए के गहने हैं।

रवि : देखो भाई ! तुम यह बात प्रकट न करो। यदि मालूम हो जायगा कि तुम्हारे पास हजार रुपये के गहने हैं तो तुम्हारे समधी साहब नन पर हाथ साफ़ करना चाहेंगा।

(नरसिंहम, नारायण राव, और निक्वेपराय आते हैं। उन्हें देकर रमणम्मा हटकर दरवाजे पर खड़ी हो जाती है।)

नारायण० : (अपने पिता से) निक्वेपराय मामा ने जो कुछ कहना था, सब कह दिया है, पिताजी।

नि० : कहा तो था, पर फायदा क्या रहा ?

नारायण० : वे बातें सुन सुनकर तंग आ गया। आखिर मैंने कहा—पिताजी के पास चलिए, उन्हें समझाकर मनवालेता हूँ।

ना० : ऐसा क्यों कहा बेटा ?

नारायण० : और कहेगा ही क्या पिता जी ! वे नहीं मानते हैं तो हमी को झुकना होगा।

ना० : (नरसिंहम से) देखिए, नरसिंहम ! मैंने आज तक किसी के सामने अपना सर नहीं झुकाया। किसी ने मेरे ऊपर खंगली नहीं उठाई। मेरी जान भी खली जाय तो झूठ नहीं बोलता। वे तो तीन एकक कम से कम

राम में ही बेचे तब भी दस हजार तो मिल ही जाएँगे। दस दिन सत्र कीजिएगा, मैं ही बेच कर दस हजार रुपए दूँगा। आप भी बाल-बच्चेदार हैं। वेदिका पर विवाह रोकना न्याय संगत नहीं है।

नरसिंहम : नीति-बच्चों की क्या कमी है ? वेदिका पर शादी तुम्हारी बेटी की ही नहीं बल्कि मेरे बेटे की भी विगड़ रही है न। अपनी व्याधा सब की होती है। मेरे लकड़े की पढ़ाई के लिए लगभग पन्द्रह हजार खर्च हो गए हैं। अच्छा सम्बन्ध समझ कर कम में मान लिया। दूसरी जगह होता तो १५ हजार वसूल करके ही छोड़ता।

रवि : पन्द्रह हजार क्या, उसके व्याज सहित वसूल करते।

नरसिंहम : बेटा, तुमने लाखों की बात कही। ये लोग नहीं जानते तो तुम्हीं समझाओ।

नि० : तुम्हारे लकड़े ने बी. ए. तक पढ़ा तो हमारी लकड़ी भी मैट्रिक तक पढ़ चुकी है ना।

रवि : ओहो ! बड़ी जटिल समस्या आ पड़ी है। तो दोनों के लिए आठ हजार कम कर देते हैं। शेष दस-बारह हजार देने पड़ते हैं।

नि० : इस अच्छे सम्बन्ध को देखते ही नरसिंहमजी ने अपने पुत्र की पढ़ाई का आधा मात्र खेने को पड़ले ही स्वीकार कर लिया था।

रवि : इस हिसाब के अनुसार पॉच-छः हजार मात्र देने से ठीक हो जाता है। यही कहते हैं न आप लोग। “अब दस हजार रुपये की जायबाद दे रहे हैं और भी अधिक क्यों ?” यही है न आपका उद्देश्य ?

नरसिंहम : ये उद्देश्य मेरे सामने कुछ नहीं चलते। देना हो तो ६ एकक दे दीजिए।

रवि : तो आप फिर गोल पट्टेन आते हैं। मैं एक उपाय बताऊँ।

नि० : उपाय के न सूझते हम परेशान हैं, भैया।

नारायण० : कहो रवि।

नरसिंहम : वह कहेगा क्या लाक।

रवि : यों तो कुछ नहीं, नागदया जैसे भले जादमी खुद कह रहे हैं कि वह जमीन दस हजार रुपए की तो है। देखेंगे, वे बात के कहीं तक पक्के हैं ?

नरसिंहम : बाह रे बाह अच्छी सलाह कही।

काम के बन जाने के बाद हाथ-पैर पीटने से क्या होता है ?

रवि : होता क्यों नहीं ? रघु पर्व-त्योहारों पर सपुराल में आता जाता रहता है। उसके ओहदे के अनुसार सरकार करके मेजना हो तो कम से कम इस तरह एक एकड़ हमारे हाथ लग ही जाएगी। एक एकड़ के मूल्य के बराबर निषेक (गर्भादान संस्कार) है ही। बाकी एक एकड़ की बात क्या कहना ? नारायणराव के विवाह के समय पद्मा को मेजने से इनकार करने पर आप ही आप मिल जाएंगे।

नि० : उम्र में छोटे होने पर भी बड़ी अच्छी बात कही रवि तुमने।

नरसिंहम : ऐसा मत समझो कि ये सब तरीके मैं नहीं जानता हूँ। अन्त की खीचातानी की अपेक्षा आदि में खीचातानी अच्छी होती है।

रवि : अब क्या समझाऊँ। दोनों में से कोई मान ले तो मामला समाप्त। अब अपनी-अपनी इच्छा के मुताबिक ही कर लीजिए। अब मैं चला।

भा० : सुनो बेटा, रवि।

रवि : नागय्या जी। आप शान्त रहिए। देखिए, नरसिंहम जी। आपको इनकी मदद करनी होगी।

नरसिंहम : ऐसी बात हो तो पछिए। मैं भी तो थन काटकर दुध पीना नहीं चाहता।

रवि : इसलिए कहता हूँ, कोई विशेष बात नहीं। पद्मा तो आगे इनके घर में रहने वाली नहीं है। बाकी रह गए केवल तीन व्यक्ति। मंगलसूत्र धारण के पूर्व ही इन तीनों को तीन भिक्षापात्र खरीद कर दे दीजिए, मिट्टी के ही सही, बस ! काफ़ी है।

नरसिंहम : बस बस ! मुँह बन्द करो। बड़े कहनेवाले आगे आए हो। सबकी बात अपने ऊपर गुजरते प्रकट होती है। देखूंगा, कल तुम अपनी शादी के समय रहेज कैसे नहीं लेते हो। देखो, नारायण तुम यह कहकर मुझे यहाँ बुला लाए—“मेरे पिताजी मेरी बात का प्रतिवाद नहीं करेंगे।” यही तुम्हारी सचाई है ? कल भी तो ऐसा ही करोगे ?

रवि : हाँ, सुनिए, पिता जी की बात पुत्र, पुत्र की बात पिता दोनों में कोई एक सुन ले तो बस मामला साफ़। यह सब टपटा क्यों ? नरसिंहम जी, मैं रघु को

यहाँ बुला लाता हूँ। नारायण और रघु दोनों सोच कर एक निर्णय पर आ जाएँगे। उस निर्णय के लिए आप दोनों को तैयार रहना होगा। ठीक है न ?

नरसिंहम : इस मामले में उसका क्या हाथ है ? नारायण० : आप तो मेरी निन्दा कर रहे हैं, इसलिए।

नरसिंहम : तुम्हारी तरह मेरे लड़के ने बच-बच कर बातें नहीं कीं। मुझे पहले मालूम होता कि आप लोग ऐसे असमर्थ हैं तो मैं कदापि इस सम्बन्ध को स्वीकार न करता। मैंने जो पछा, सो दे दीजिए, अथवा सब कुछ भोगेंगे ही।

ना० : भोगेंगे क्या ? वेदिका पर से वर को ले जाओगे। यही करोगे न ? ऊँ ! करो, खुशी से करो। जो कुछ है, वह सारी जायदाद तुम्हें देनी है ? तुम्हारी बेटी को रेशमी साड़ियाँ पहनानी हैं और भिक्षा पात्र लेकर हमें दर-दर भीख भोगते फिगना है। तुम्हारे जैसे कसाई के घर में व्याह्र देने की अपेक्षा किसी मजदूर के घर में देने से मेरी बेटी सुखी रहेगी।

नि० : ऐसी निकृष्ट जगह में शादी करने की हमें क्या पकी है। कल इस समय तक इससे भी लाख गुना अच्छा सम्बन्ध ठीक कर बेटी की शादी न कहें तो मेरा नाम निम्नपराय नहीं।

नरसिंहम : लाओगे, जरूर लाओगे। यह सब तुम्हीं ने किया है। तुम्हारे साथ जो भी कहें, पाप नहीं लगेगा। देखूंगा, कसा सम्बन्ध लाते हो। अरे रघु, अरे रघु, ! (कहते भीतर जाने लगते हैं)

रमणय्या : (दौड़ते हुए आ कर नरसिंहम को लक्ष्य करके) देखो भाई, मेरी बेटी का गला न काटो, भाई जी।

(नरसिंहम अपनी सुनी करके चले जाते हैं। रम-य्याम्मा उनके पीछे जाने लगती है।)

ना० : छी : तुम्हारी अकल मारी गई !

(उसको ठकल देते हैं। “ओह” कहते वह गिर जाती है। नारायणराव “अम्मा !” कहते दौड़ आता है। अपनी माता को उठाकर)

नारायण० : (भीतर पहुँचकर देखते हुए) रघु, रघु ! देखूंगा, यह विवाह वेदिका से वर को कैसे ले जाता है। इज्जत खोकर जिन्दा रहने से क्या फायदा है ! आज सर सड़ जाएँगे।

(तेजी के साथ भीतर जाने लगता है)

नि० : वरुणिः नारायण ! (उसे पकड़ लेते हैं) यह क्या कर रहे हो ?

नारायण : मुझे छोड़ दीजिए ।

रमणम्मा : (रोती) बेटा ।

नरसिंहम् : (रघु की बाँह पकड़ कर बाहर खींचते हुए) चलो बेटा । सोचते क्या हो ? इस घर में पल-भर भी हम ठहर नहीं सकते । चलो, ऊँ ।

रघु : पिताजी ! ठहरो । यह क्या करते हो ?

नरसिंहम् : ओ मी हो, तुम्हें क्या मतलब ? मैं कहता हूँ कि चलो यहाँ से, बस केसा अहंकार है । हूँ ।

(रघु को खींचते जा रहे हैं, वह अपने पिता के हाथ पालतू जानवर की भोंति जा रहा है। वधू पद्मा प्रवेश करती है। वधू के हाथ में एक थाली है, उसमें मंगल सूत्र अक्षत आदि हैं)

पद्मा : (घाते ही) ठहरिए ।

(सब विवर्ण हो पद्मा की ओर देखते रहते हैं। रमणम्मा "बेटी" कहते पद्मा की तरफ जाती है।)

नारायण : बहन ।

पद्मा : (रघु से) आप कहाँ रहे हैं ? आपके लिए यह उचित है ? मेरी ज़िन्दगी को भिट्टी में मिला कर अपने रास्ते जा रहे हैं ? मुझे ज़िन्दगी भर रो-धोकर मरना ही होगा ? आप शिञ्जित हैं न ? मेरी तरह इस प्रकार कितनी बहनें कुढ़-कुढ़ कर मर रही होंगी । कितनी बहनें आत्महत्या करने के लिए विवश हो रही हैं । कभी आपने सोचा है ? आपके लिए यही उचित है ? आप अपने पिताजी की आज्ञा का पालन कीजिए । उनकी पूजा कीजिए अच्छा ही हैं । लेकिन केवल उनकी तृप्ति के लिए अशोभनीय कार्य करना न्यायसंगत नहीं है । किसी का गला काटना धर्म नहीं कहलाता ।

(रघु चकित हो पद्मा की ओर देखता रहता है)

नरसिंहम् : चलो बेटा । भगवान की कृपा हम पर रही, इसलिए यह मुहूर्त टल गया । इस ढाड़िन के साथ हम कहीं निभाते चलो जल्दी ।

(रघु भी दो कदम आगे बढ़ाता है । पेट्रोमेकम लाइट का प्रकाश कुछ कम हो गया था।)

पद्मा : अजी आप ही को ।

(रघु अपने पिता की पकड़ में से अपने हाथ को छुड़ा कर ठहर जाता है)

नि० : नारायण देखो, लाइट । लाइट बुझने आ रहा है ।

(नारायण आकर लाइट के लिए हवा भरने लगता है)

पद्मा : (रघु से) आपके पिता जी को बहू की अम्माई-बुराई से कोई सरोकार नहीं है । उनको केवल रूप चाहिए रूप । आप मुझे देखने के लिए आए, देखा ! मुझे से बातें की । संतुष्ट हुए । हम दोनों की स्वीकृति लेकर ही मुहूर्त निश्चय हुआ । सम्पूजा जाय तो उसी दिन हमारा विवाह हो गया है । दहेज की बात इससे विलकुल भिन्न है । वह हमारे जीवन से सम्बन्धित विषय नहीं है । हम दोनों को अलग करने का अधिकार उसे नहीं है । यह लिजिए, उससे पहले मंगल सूत्र बाँधिए ।

(मंगल-सूत्र रघु के हाथ में देती है । रघु उसे पद्मा के गले में बाँधने लगता है।)

नरसिंहम् : अरे रघु ! (रघु अपने हाथ पीछे हटा लेता है) मेरी बात के विरुद्ध इस लक्ष्मी के गले में मंगलसूत्र बाँधोगे ? पाल-पोस कर बड़ा किया, पढ़ाया ! और आज इतने लोगों के बीच मेरा अपमान करोगे !

रघु : अब तक आपके घर से विवाह नहीं हुआ पर निर्जिव प्राणी की भोंति बैठा रहा । मित्रों ने साहायन किया, लेकिन साहस नहीं कर सका । (पद्मा को दिखाते हुए) इमने मेरी आँखें खोल दीं । आप लोगों के दहेज-पुरस्कार, जमीन-जायदाद की मुझे कोई जरूरत नहीं । मुझे केवल यह पद्मा काफी है ।

(पद्मा के गले में मंगलसूत्र बाँधने लगता है । नारायण गवा का हवा भरने वाला लाइट अपना पूरा प्रकाश फेंकते हुए जलने लगता है।)

शास्त्री : (दोषा आकर) हे बाजे-भजंत्री ! ऊँ बजाओ, भाई ! (मन्त्र-पठन प्रारम्भ करता है।)

नि० : शास्त्री जी ! तुम्हारा श्रृण नहीं रखेंगे घबड़ाओ नहीं, भाई ।

शास्त्री : बात कुछ दूसरी है, भाई ! ठीक वक्त पर सूत्र-धारण हो रहा है । यही विशेष बात है ।

नि० : समय क्या है ?

रवि : (अपनी कलाई की घड़ी देख कर) साढ़े नौ ।

नि० : क्यों शास्त्री जी ! तुमने लगन का समय आठ बजे कर पच्छिस मिनट निश्चय किया था ।

शास्त्री : (सब लोगों में अछत बॉटते हुए) असल में ठीक मुहूर्त यही है जी। बरात के भोजन को दृष्टि में रख कर बताया गया मुहूर्त है वह। समझ गए हैं न।

(पद्मा के गले में मंगल सूत्र बाँधना समाप्त हो गया है। सब लोग बर-वधू पर अछत छिड़कते हैं। बर-वधू नरसिंहम जी निकट के पहुँच कर उनके चरण छूकर नमस्कार करते हैं।)

नरसिंहम : (अपने पुत्र को ऊपर उठाते) बेटा, यह सब तुम्हें पसन्द न हो तो क्या मुझे चाहिए। सदा के लिए चिरंजीवि बने रहो।

(राजू प्रवेश करता है। उसके हाथ में नोटों का बराडल है।)

राजू : नरसिंहम जी। (नोटों का बंडल देते) आपने कहा था न, नागय्या की अमीन उतने मूल्य की न होगी, लीजिए यह अग्रिम। फी एकक साढ़े तीन हजार के हिसाब से लीजिए।

रवि : अरे भाई, उन्हें देते क्यों हो। अब देने

की जरूरत भी क्या है। उनके बराबर धन की राशि लगा दी जाय तो उन्हें ऐसी बहू नहीं मिलेगी।

नरसिंहम : अरे आजो भी तो। अपनी किस्मत की बात है। किस्मत का लिखा कौन मिटा सकता है।

(सब हँस पड़ते हैं)

नागय्या : वहनोई जी। भोजन का समय बीतता जा रहा है, चलिए भोजन करने।

नरसिंहम : अच्छा। ऐसा ही। भोजन के समाप्त होते ही बहू की विदाई के लिए तैयार कीजिए। शुभमुहूर्त के पहले ही हमारे घर में प्रवेश करना होगा।

नि० : जी, ऐसा ही होना चाहिए। नरसिंहम जी बात के पक्के हैं। उसका कोई अपवाद नहीं। उनकी इच्छा के अनुसार चलिए।

नरसिंहम : भाई, तुमने अपने निवेदपराय का नाम सार्थक कर लिया।

शास्त्री : अह हा हा। मुहूर्त का योग ऐसा है। वेदिका पर की शादी को रोकना किस के लिए संभव होगा।

६ सत्यनारायण स्टूट
मद्रास—१७

मूल : —सुंकर सत्यनारायण
अनु० : —बाकशीर रेड्डी

मळयाळम की कहावतें

१. अरि परिकुजाल आशरं काका
भात बिखेर दें तो हज्जारों कोए।
२. गति कट्टाल पुल्लि पुल्लुं तिन्नुम्
दिन फिरने पर बाध भी घास खाता है।
३. नाइ नडुकळविल्लुं चेन्नलुं नक्किइ कुळिक्कु
बीब समुद्र में भी कुत्ता चाटता ही है।
४. मूक्कु इल्लिवात राज्यतु मुरिमुक्कन् राजाडु
नकटों के राज्य में आधी नाक वाला ही राजा है।
५. मुट्टुमुल्लक्के मणमल्ल
बर की चमेली में सुगंध नहीं।

नई कविता के प्रति राजस्थानी दृष्टिकोण

आज जो नई कविता पढ़ाई निर्भर की भान्ति फूट रही है, उसके बारे में कई मत हैं। कुछ लोग तो उससे एकदम नाक भौं सिकोड़ते हैं और कुछ लोग उसे छाती से लगाए हुए हैं। संपूर्ण भारतवर्ष में—केवल हिन्दी भाषी क्षेत्र में ही नहीं बल्कि अहिन्दी भाषी क्षेत्र में भी—इस नवीन प्रयोगवादी नकेनवादी^१ रचना पर बड़ा मन्थन चल रहा है। राजस्थान में जहाँ हिन्दी काव्य के आदिम स्वरूप को संवारा है, उसमें आलोक और वेग भरा है वहाँ नवीनतम काव्य धारा के प्रति भी वह उदासीन नहीं है। यहाँ के कवि, पाठक और श्रोता की आस्था-अनास्था, अशा-निराशा समय-समय पर व्यक्त होती रही है। हाल ही में राजस्थान-साहित्य अकादमी द्वारा 'आधुनिक काव्य के नये मान और मूल्य' विषय को लेकर एक उपनिषद् (सिम्पोजियस ६, ७, ८) संसम्बर को डा० अंचल के संयोजकत्व में कोटा में आयोजित किया गया था। वहाँ पर नए काव्य को लेकर जो आलोचन-विलोचन हुआ उससे सहज ही मैं कुछ निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।

जिन परिस्थितियों में आज का नया काव्य लिखा जा रहा है वे परिस्थितियाँ एक गहरे अमन्तोष, सहज अनास्था और फ्रस्टेशन से उद्भूत हैं। एक और मौलिकता की जड़-उपामना से मानव चेतना विद्रोह कर उठी है, दूसरी ओर आत्मा की अतीतिक्रम सत्ता और अखण्ड आनन्द की अनुभूति उससे नहीं हो पा रही है। अन्तर्जगत और बहिर्जगत संघर्ष एक उलझी हुई भाव-धारा को व्यक्त कर रहा है जिसमें, कुण्ठा है, अहं है संशय है निराशा है। भाव-धारा को जिन रूप के तटों में बान्धा जा रहा है वे भी अपने में नवीन, विश्वरूपित एवं अपरिचित हैं। फलतः न तो आज की नई कविता का साधारणीकरण हो पा रहा है न बुद्धि का राग संवेदना।

प्रश्न है नई कविता के मूल्य और मान का। प्रत्येक युग में कविता के दो मूल्य रहे हैं। (१) नैस-

र्गिक मूल्य (Inherent value) और (२) कृत्रिम मूल्य (Artificial value) नैसर्गिक मूल्य हमेशा स्थाई रहता है और वह है हमारी तामसिक एवं राजसी प्रवृत्तियों पर सात्विक प्रवृत्तियों का लेपन। दूसरे शब्दों में पशुत्व से उठा कर मनुष्यत्व की ओर खे जाता। कृत्रिम मूल्य युगीन परिस्थितियों एवं आदर्शों के अनुसार हमेशा बदलते रहते हैं। आज जिस संकष्ट काल में हम रह रहे हैं उसके कृत्रिम मूल्य निराशा, कुण्ठा और अहं ही तो हैं यद्यपि जनवाद, शान्ति और स्वतन्त्रता से भी इन्कार तो नहीं किया जा सकता।

आज का कवि और पाठक समान प्रभावक परिस्थितियों में जी रहा है। अतः शास्त्रीय साधारणीकरण की प्रक्रिया नई कविता में (विशेष को 'विशेष' रूप में ही व्यक्त करने के कारण) चाहे सम्भव न हो पर सामाजिक प्रक्रिया तो संभव है ही अतः आज का कवि प्रो० नन्द चतुर्वेदी के अनुसार 'विविध परिस्थितियों—सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक—में जीता है और उनसे विविध प्रभाव ग्रहण करता है।

इन्हीं प्रभावों का प्रतिकल है कवि की रचना जो कवि जितने अधिक प्रभावों को ग्रहण कर सकेगा उसकी कविता उतनी ही श्रेष्ठ होगी।' इस मूल्य निर्धारण में एक बात का खतरा अवश्य है और वह यह कि महाकाव्य गीतिकाव्य की अपेक्षा अनायास ही श्रेष्ठ बन जाएगा। दूसरा प्रश्न जैसा कि वनस्थली के श्री० प्रेमचन्द विजयवर्गीय ने उठाया कि विशेषी भावों को कवि एक साथ कैसे ग्रहण कर सकेगा? इसका उत्तर बड़ा सीधा और सरल है कि कवि की मानस-प्रक्रिया में सुन्दर, असुन्दर प्रिय अप्रिय, सभी समरस हो जाते हैं वह टुकड़े-टुकड़े करके भावों को व्यक्त नहीं करता बल्कि सबका संपूर्ण प्रभाव ग्रहण कर टार्च के प्रकाश की भाँति उनको संप्रेषित करता है।

नई कविता के बारे में राजस्थान में तीन दृष्टिकोण हैं।

(१) अत्यधिक आशावादी दृष्टिकोण : यह वर्ग नई कविता के प्रति अत्यधिक आश्चर्य और सजग है। उसे वह मानवतावादी, नवीन आदर्शों की संवाहिका और नए सौन्दर्य-बोध की अभिव्यक्ति मानता है। उसे इसके प्रति भी शिकायत नहीं है। वह पूरे हृदय (चाहे कविता में वह न हो) और मस्तिष्क के साथ उसका स्वागत करता है। प्रो० प्रकाश 'आतुर' और शान्ति-लाल मारवाज इसी वर्ग के हैं।

(२) आशावादी दृष्टिकोण : यह वर्ग नई कविता के प्रति आशावान तो है पर तथाकथित प्रयोगों पर उसे चिढ़ है। कवि 'वाणी का डिक्टेटर' है इस सिद्धान्त में इस वर्ग की आस्था है। पाठक चाहे अर्थ समझे या न समझे, कवि को नए शब्दों में अपनी बात कहते रहना चाहिए। एक दिन अवश्य ऐसा आएगा जब कि पाठक उसकी बात उसी के शब्दों में समझने लगेगा। इस वर्ग वाले कवि और समीक्षक को एक ही व्यक्तित्व में बाँधने को सदैव तैयार रहते हैं। अगर आज का आलोचक नए कवि के प्रति सहामुही नहीं दिखाता तो कवि को अधिकार है कि वह अपने संकलन की लम्बी भूमिकाओं में अपने जीवन दर्शन और काव्य दर्शन पर जम कर लिखे। भावयित्री प्रतिभा भावक में ही होती है और कारयित्री प्रतिभा कवि में ही। ऐसा विभाजन ठीक नहीं। प्रो० नन्द चतुर्वेदी, प्रो० प्रेमचन्द विजयगोय, ज्ञान भारिल्ल, ललिताना व्यास, डॉ० स्वर्ण अग्रवाल इसी वर्ग के हैं।

(३) संदिग्ध दृष्टिकोण : यह वर्ग नई कविता को संदिग्ध दृष्टि से देखता है। वह न तो अत्यधिक आशावादी है न निपट निराशावादी। आशा-निराशा के हिंडोले में झूलता हुआ यह नई कविता कामिनी के अंग-प्रसंगों को देख रहा है। कभी वह उत्साहित होता है तो कभी सिर धुनता है। कभी कहता है अगर इसी तरह के प्रपञ्च लिखे गये तो फिर कविता और गद्य में भेद ही क्या रह जायगा ? फिर रस का अस्तित्व ही कहाँ रहेगा ? इस वर्ग की मान्यता है कि कविता राग को संवेदनीय बनाए, दर्शन या चिन्तन को राग का विषय बनाए न कि राग को बुद्धि का विषय। प्रयोगवादी और न केनवादी रचनाओं के प्रति उसके मन में चिढ़ है। पर जो नए गीतकार मानवता को स्वर दे रहे हैं। उसके प्रति इस वर्ग की पूरी अवस्था है। गीत नई लहरी में

लोक-परम्परा है, सामाजिक मान-मर्यादा है, निर्माण का तराना और विकास की लय है। देश विदेश के घटनाचक्रों पर सूक्ष्म रागात्मक अंकन है। प्रेम का उदात्तीकरण एवं रूप-चित्रण का सामाजिक प्रयोग है, वैयक्तिक कुंठा का प्रदर्शन मात्र नहीं। नीरज, वीरेन्द्र-मिश्र, रामनाथ अवस्थी, रामावतार त्यागी, नैपाखी आदि इसी कोटि के नए गीतकार हैं। डॉ० अंचल भी इसी वर्ग के हैं।

छेलक का अपना दृष्टिकोण : नई कविता के प्रति जिस ढंग से आज वह झिझी जा रही है—मेरी अल्प आस्था है। पर नए गीतकारों के प्रति (जिनकी आज-कल कवि सम्मेलनों में अधिक गूँज है, नीरज वीरेन्द्र मिश्र आदि)—जिनमें जनवाद, शान्ति, स्वतन्त्रता निर्माण आदि के स्वर हैं, अधिक सजग है। काव्य-सिद्धान्त के क्षेत्र में मैं महाकवि तुलसी के आदर्शों से प्रभावित हूँ। और उनके आदर्श काल-विशेष के न हो कर कालातीत हैं। व्यष्टि की विचार-धारा समष्टि तक कैसे पहुँचाई जाए, यही वह समस्या है जिसे हल करने के लिए अभिव्यक्ति का माध्यम अपनाया जाता है। आज के तथा कथित कवि 'अभिव्यक्ति की कुशल शक्ति ही है कला' में विश्वास नहीं करते। मनो-मत्र कोश से कविता को उद्भूत कर मनोमयकोश में ही उसकी इति ठूँढ़ते हैं। जब कि काव्य का लक्ष्य है मनोमयकोश में उठ कर आनन्दमय कोश तक पहुँचना। इस सत्य की अवहेलना के कारण 'उपज हि अनत अनत छवि लहरी' में उनकी आस्था नहीं। पर कविता तो वही है जो पाठक पर प्रभाव डाल कर उसका 'सिर धुन' दे। तुलसी ने इसीलिए कहा था कि मणि, माणिक और मोती अपनी जगह पर अर्थात् सौंप, पवैत, और हाथी के सिर पर इतने सुशोभित नहीं होते जितने कि राज-मुकुट और रत्नी के अलंकारों में। यही बात कविता के लिए भी सत्य है :

“मणि मानिक मुकुटा छवि जेनी
अहि गिरि गज सिर आहे न तेसी
नुप किरिट तदनी तनु पाई
लहहि सकल सोभा अघिकाई
तेसेहि सुकवि कवित बुध कहही
उपजहि अनत अनत छवि लहही”

—तुलसी

जब तक नया कवि इस भावालोक को ग्रहण नहीं करेगा तब तक कवि और पाठक में गतिरोध बना ही रहेगा। हृदय को समुद्र, बुद्धि को सीप और सरस्वती को स्वाति-नक्षत्र के रूप में मान कर, जब तक सुन्दर विचार रूपी जल-वर्षण का कार्य आज का कवि नहीं करेगा, तब तक मुक्ता-मणि के समान सुन्दर कविता का आविर्भाव संभव नहीं। आज का नया कवि हृदय रूपी समुद्र की उपेक्षा कर केवल बुद्धि रूपी सीप को ही मथ कर प्यास मिटाना चाहता है। पर उससे केवल कुराठा रूपी कंकड़, संशयरूपी शंख, अहं रूपी घोघे और वाचना रूपी वाक्यांही ही मिल सकती है, हृदय को परितृप्त करने वाली पीयूष-धार नहीं। अगर सचमुच रसा-

नुभूति काव्य का धर्म है तो कवि को निम्न प्रकार की 'सांसारिक प्रक्रिया' करनी होगी—

“हृदय चिन्तु मति सीप समाना
स्वाति सारदा कहहि सुजाना
जौ बरछइ वर वारि विचार
होहि कवित मुकुतामनि चारु”

—तुलसी

और तभी—

“जुगुति बेधि पुनि पोहिअहिं, राम चरित बरताग
पहिरहिं सज्जन विमल डर, सोभा अति अनुराग”

—तुलसी

हिन्दी-विभाग

गवर्नमेण्ट डिग्री कॉलेज,
बून्दी (राजस्थान)

—नरेन्द्रकुमार भगवत

आनन्द मठ

श्री बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय का 'आनन्द मठ' ही सर्वप्रथम उपन्यास है जिसने भारतवासियों को सर्व प्रथम राजनैतिक विद्रोह की कहानी सुनाई, नवयुवकों में देश के लिए विदेशी राजशक्ति के विरुद्ध एक आदर्श रखा। 'आनन्द मठ' का इतिहास बहुत कुछ कारुणिक है। पर आनन्द मठ से भारतीय जनता के सामने स्वाधीनता की लड़ाई का एक इतिहास आया। इस उपन्यास द्वारा भारतीयों के सामने स्वतन्त्रता के युद्ध का आदर्श रख दिया गया। उपाय या साधन बताया गया और साथ ही एक मन्त्र दिया गया।

शरीफ आदमी

हकीम अकमशली के बारे में अपना ख्याल यह था कि वह भी हिन्दुस्तान के उन्हीं कुछ इंसानों में से एक हैं, जिन्हें भगवान् ने कुछ करने के लिए ही दुनिया में भेजा है।

उनकी शराफत का सिक्का अकेले हम पर ही नहीं, तमाम मुद्दले पर गल्लिब था। क्योंकि हकीम साहब का तमाम दिन प्रायः नमाओं पढ़ते ही बीतता था। शाम को वह अपने सूफियाना लिबास में घर से निकल कर जब गली में चलते थे, तब ऐसा लगता था मानों हकीम साहब का कुछ खो गया हो और वह उसे तलाश करते फिर रहे हों। इसलिए हमारी नजर में वह पीर फकीर के भी कुछ ईंच ज्यादा ही थे कम नहीं।

कल अपने इसी सूफियाना लिबास में हकीम साहब हमारे पास इस तरह से आए, गोया यह हम से किसी जनाजे में शामिल होने की आरजू करने आए हों, मुँह लटका हुआ था; कानों पर गद्दे थी। शकल का हाल तो हम पहले ही बता चुके हैं कि कंगलो से कुछ इक्कीस ही थी।

हकीम साहब आए, आकर बैठ गए। थोड़ी देर तक उन्होंने कबूतर की तरह आँखों की इधर-उधर मटकाना। बाद में बोले—“असगर मियाँ, शराफत और सदाकत के कददान इस दुनिया में अब नहीं रहे।”

“आप बजा फरमाते हैं।” हमने बिना सोचे ज़ममे ही कह दिया। अतः हमारी ताईद को ताकत की दवाई समझ कर हकीम साहब आगे बोले—“इंसान कुछ सोचता है, कुछ करता है, लोग कुछ सोचते हैं, कुछ करते हैं, कुछ कहते हैं...।”

हकीम साहब लगातार हिन्देशिया का-सा खाका खींचे जा रहे थे, अपनी समझ में खाक नहीं आ रहा था इसलिए उन्हें रोक कर हमने कहा—“हकीम साहब, बराए मेहरबानी करा खुलासा कदिए कि दरअसल मामला क्या है और हम आपकी क्या खिदमत कर सकते हैं।”

“कुछ मदद कर सको तो कहूँ, नहीं तो पचा रहने दो मुझे मेरे हाल पर ही।” हकीम साहब बोले।

“जबूर करेंगे आप बताइए तो?” हमने फिर आश्वासन दिया।

“तुम मुझे क्या समझते हो?” हकीम साहब ने बात न बता कर वल्टा सवाल किया। हमने कहा—“शरीफ आदमी समझते हैं।” वह फिर बोले—“और शरीफ आदमी से कैसे कामों की उम्मीद रखते हो?”

“नेक कामों की।”

“बस, खुदा तुम्हारा भला करे; आज कल मैं चन्द नेक काम किया करता हूँ, लेकिन पता नहीं बेगम को...।” हमने हकीम साहब को रोक कर कहा—“हम समझ गए। बेगम समझदार हैं, हम उन्हें समझा देंगे।”

“मुझे तो यकीन नहीं होता कि वह कुछ समझ जाएगी?”

“समझ जाएँगी—शायद कुछ गलतकदमी उन्हें हो गई है।” हमने फिर हकीम साहब को आश्वासन दिया वह बोले—“तो चलो, अभी चल कर समझा दो—भाई मेरे, मैं तो उमसे तंग आ गया हूँ कमबख्त आधी रात से लड़ना शुरू करती है और फजर की नमाज तक बराबर लड़ा करती है।

“आप चलिए तो सही, हम अभी आए।” कहने को तो हम हकीम साहब से कह गए; लेकिन जब उनके घर पहुँचे और हमने ज़िम शारत्राधी दंग से दोनों मियाँ बीवियों को बंटे देखा, उस दंग को देख कर हमारी सारी काबलियत ही अवाब दे गई और हमारे जमीर ने महज तमाशाई रहने के, इससे आगे बढ़ने के लिए बिलकुल रोक दिया।

हकीम साहब बिलकुल मरीखनुमा अन्दाज से बीबी के सामने हाथ सा फैलाए बैठे अपनी बीमारियों का बयान-सा कर रहे थे और बेगम साहिबा हकीम साहब को भी बिलकुल इसी दंग से घूर रही थीं मानों मरीख ने इलाज के बीच में ही कोई बदपरेहशी कर ली हो।

इसलिए हमारे लिए यह जरूरी हो गया कि पहिले हम दोनों की बातें सुन लें और बाद में जब किसी नतीजे पर पहुँच जाएँ तो अपनी अकल को काम में लाएँ। लिहाजा हम बेगम साहिब को एक मुंशियाना सलाम करके हकीम साहब के पैताने इस ढंग से बैठ गए जिससे उन्हें हमारे बैठने से कुछ आराम मिले। और वाकई उन्हें भी हमारे बैठने से कुछ तसल्ली-सी होती दिखाई दी।

इस तसल्ली का सुबूत भी उन्होंने तुरन्त ही देना शुरू कर दिया। हमारे बैठते ही उनकी बेजान गर्दन में जान आई और उससे करने की तरह अहिस्ता-अहिस्ता ऊपर उठना शुरू किया। जब उनकी गर्दन अपने लेबिल में आ गई तब उन्होंने बेगम साहब की ओर सीधी निगाह करके कहा—“बेगम, हम अपनी जवान से ही नहीं कहते, तमाम शहर जानता है, तमाम मुहन्ना ग्वाह है कि हकीम अक़रम अली निहायत शरीफ आदमी हैं—यकीन न आए तो असगर से पूछलो।”

हमारे “बाकई” कहने से पहिले ही बेगम तमक गई। बोलीं—“असगर मे क्या पूछलें-तुम्हीं बताओ न, अज तक तुमने शराफत का कौन सा काम किया है। रोख-दो-दो बजे रात तक घर लौटना ही क्या शरीफों का काम है? यदि यही है तो रजालन का कौन-मा है?”

बेगम का यह सवाल ऐसा अजीब सवाल था कि इसका जवाब देना हमारे लिए महज गुस्ताखी ही होती। इसलिए हम तो चुप रहे लेकिन हकीम साहब की हिम्मत भी जवाब देने की नहीं हुई। लिहाजा बेगम फिर बोलीं—“जनाब पता नहीं रात-रात भर किसी चराहू खाने में पड़े रहते हैं घर में खुदे रमजान पर आमादा हैं और आपको कोई फ़िक्र ही नहीं। मतब बन्द कर दिया, पोछा तोंगा बेच खाया, शीशिऐँ कबाड़ी को दे दीं। छप्पर में पैबन्द लग रहे हैं और बने फिरते हैं नवाब!”

“अपनी कम अज़ली अपने पास ही रखो बेगम।” इस बार हकीम साहब को ज़रा-सा ताब आ गया। कहते रहे “नेक काम करना आदमी को आसान नहीं होता, उसमें समय ही नहीं, सर की भी कुर्बानी देनी पड़ती है।”

बेगम पर हकीम साहब की इस तिखाई का असर

रती भर नहीं हुआ। वह उसी लहजे में बोलीं—“लेख समझे तो मही, जनाब के वह नेक काम हैं कौन-से जो महज रात को ही किए जाते हैं?”

इस सवाल का जवाब सुनने की इच्छा हमें भी हुई क्योंकि यह तो हमें पता था कि हकीम साहब कोई शानदार काम कर रहे हैं, लेकिन वह शानदार काम है कौन-सा यह उन्होंने हमें भी नहीं बताया था। इसलिए साहब का जवाब सुनने के लिए हमने भी उनके मुँह की ओर ताका। हकीम साहब हमारा मतलब समझ गये। बोले “हम लोगों के चाल-चलन सुधारना चाहते हैं।”

वाकई काम बड़ा नेक था। देश को इस समय इस काम की बड़ी जरूरत थी। हमें भी बड़ा अच्छा लगता। लेकिन हमारे ताईद करने से पहिले ही बेगम ने फिर एक तमाचा-मा हकीम साहब के मुँह पर मार दिया—बोली “मियाँ, पगले अपनी चाल-चलन तो सुधार लो। ‘आप मियाँ मैंगते, बाहर खड़े दरवेश—चले हैं दुनिया का चाल-चलन सुधारने।”

इस बार हकीम साहब तिलमिला गए। बोले “बस, बेगम, हृद से बाहर मत जाओ-वरना हम कुछ कर बैठेंगे।”

“जो कर बैठेंगे या कर रहे हो, वह जानती हूँ। लेकिन, एक दिन यह शराफत की नकाब भरे बाजार उतारना बैठेंगे—यह बतलाए देती हूँ।”

“इमका मतलब यह है कि हम बदमाश आदमी हैं—साफ-साफ क्यों नहीं कहती।” हकीम साहब खिण्डे। बेगम पर फिर भी कोई असर नहीं हुआ। बेशक। नहीं तो बताओ तुमने चाल-चलन ठीक करने करने का कौनसा-कालिख खोल रखा है। उपदेश देते हो, हैंडबिल बाँटते लेख खिखते हो—क्या करते हो?” बेगम का सवाल वजनदार था। असल में हकीम साहिब की कावसियत के लिए इमतिहान का पर्वा या इसका जवाब हकीम ने जो दिया, उससे बेगम को तो क्या, हमें भी तसली नहीं हुई। हकीम साहब बोले—“इन ढंगों के अलावा और भी तो हजारों ढंग हो सकते हैं।”

“मसलन?” बेगम पूछ बैठी।

“बहुत से, नहीं भी बताए जा सकते।”

“जी, हाँ और उन्हें ही तुम अपनाते हो?”

“क्या अपनाते हैं हम ?”

“वही जो बताने में शर्माते हो ?”

“कौन से हैं वह—तुम जानती हो तो तुम्हीं बता दो ?”

“जल्दी ही किसी दिन बतला दूँगी ?”

वेगम के चेहरे पर भी लबाई के आसार उभरते जा रहे थे। इसलिए अब वहाँ ठहरना हमारे लिए मुनासिब नहीं था। और हम बिना यह देखे ही कि हकीम साहब शराफत की किम मंजिल की ओर चले हमने घर का रास्ता लिया। अलबत्ता चलते-चलते यह जरूर हकीम साहब की ख़्बान से सुना—“ख़ुदा उस मरद की शकल पर क्रुफ़, नाज़िल करे जो हम पर शक करे।”

चलने को हम चले तो आए लेकिन, हकीम साहब की भलमनसाहत पर हमें ख़रा शक भी नहीं हुआ। उल्टे दिन भर हम यही सोचते रहे—“कब दिन छिपे और कब हम तन्हाई में जा-कर वेगम को समझाएँ।”

दिन छिपा और हम फिर हकीम साहब के घर की ओर चले। घर पर ताला लटक चुका था। सवेरे के मामले को लेकर हमें शक हुआ और हमने एक बच्चे को दो पैसे देकर पहले तो यह मालूम किया कि इस घर में आज कोई डाक्टर तो नहीं आया। बाद में उस बच्चे को छोड़ कर, दूसरे को इकन्नी देकर हमने यह पूछा कि यहाँ आज पुलिस तो नहीं आई थी। तीसरे को चवन्नी देकर हमने यह दरियाज़त किया कि इम घर से कोई अरपताल तो नहीं गया है।

कुछ पैसों में ही हमें यह सञ्जत मिल गया कि लबाई ने ज्यादा ख़तरनाक रुक इज़्तिहार नहीं किया था और इम वक़्त हकीम साहब अपने नेक काम करने और वेगम साहब बाज़ार गई हैं। वैसे दोनों सलामत हैं।

वहाँ से अपने होटल पर रोटियों खा कर हम भी बाज़ार की ओर चल दिए। हकीम साहब अब भी हमारे दिमाग पर सवार थे। हम सोच रहे थे कि वाकई अख़लाताला भर सैयद अहमद खाँ की तरह से इनसे भी कोई शानदार काम करना चाहता है। वेगम नाहक ही इस भले आदमी पर शक करती है।

हकीम साहब के मामले में उल्लेख-सुल्लेख ही हम

सिनेमा की पट्टी पर आ गए। यहाँ जो चीन हमने देखा, उससे खेल्ना हज़ार जगह अच्छा था। उसे देख कर हमारे सारे शरीर पर बुखार-सा चढ़ आया और एक बार तो अब क्या बताएँ काज़ी बनने को भी हमारा दिल मचल उठा लेकिन उस पुलिसमैन का शरीर देख कर हमारा यह पाक खयाल जहाँ का तहाँ ही इस तरह बैठ गया, मानों कह रहा हो—“मियाँ अपनी हालत के मुताबिक कुछ और ही सोचो—काज़ी बनना यहाँ नसीब नही होगा।”

अब सुनिश्च वह चीन क्या था ज़िम्मे हमें एक दम गरमा दिया था। चीन यह था कि हकीम अक़रम साहब की गरीब गर्दन एक तन्दुरुस्त पुलिसमैन के हाथ में इम तरह फँसी हुई थी जिस तरह संडासी में पतीली फँसती है। और उस चीन का मज़ाक आदमियों की एक भीज तो ले ही रही थी कुछ औरतें भी ले रही थीं। तिस पर भी तुराँ यह था कि सारा मज़मा ही हकीम साहब के इस तरह ख़िलाफ़ था, मानो उन्हें हकीम साहब की शराफत का कतई पता ही न हो। उल्टे पुलिस वाले को इस के लिए शाबाशी दे रहे थे। गोया उसने हकीम साहब नहीं, कोई डाकू पकड़ रखा है। औरतो की बात। उनमें से ज्यादातर सूत-सीखड़ी थीं, अलबत्ता एक के अन्दर कुछ जान इसलिये महसूस होती थी। वह कभी-कभी बुकें में से अपना हाथ-पैर हिलाती थी। लेकिन, वह थाद हिला कर हकीम साहब को बधाई दे रही है या पुलिस को शाबाशी दे रहे हैं यह कोई नहीं जान पाता था।

उस समय हकीम साहब की हालत कुर्बान बकरे से बेरहत नहीं थी। मुश्किल से एकाध अन्फाज वह फँसी हुई गर्दन से बाहर खींच पाते थे और उस अन्फाज का भी कोई मतलब नहीं निकलता था यानी वे-मतलब।

ऐसे मौके पर हमारा चुप रहना भी मुश्किल था और बड़ना भी ख़तरनाक था और जब तक यह पता न चल जाए कि हकीम साहब कौनसी धारा के मुलाज़िम हैं, मुँह खोलना भी बुरा था।

रही हाथपाई की बात, उसका कोई सवाल ही नहीं था। अतः हमने कुछ देर अलग खड़े होकर पहिले तमाशा ही देखना मुनासिब समझा। हकीम साहब में करते रहे। पुलिस वाला गर्दन को कभी थोड़ी आज़ादी

दे देता कमी रही-सही भी छीन लेता। उधर तमाशाइयों की ख्वाहिश यह थी कि वह गर्दन को बिलकुल ही ही सर से अलग जुदा दे।

जब हमें यकीन हो गया कि थोड़ी देर में हकीमे साहब को गर्दन से हाथ धोना पड़ सकता है, तब हम आगे बढ़े और हकीमे साहब से पहिले हमने पुलिसमैन को सलाम किया। 'सलाम वाले कुम जमादार साहब, हवालदार साहब' उसके बाद हमने हकीमे साहब को भी सलाम किया। 'आलेकुम हकीमे साहब'

हकीमे साहब तो इस हालत में थे ही कहा कि वह हमारी सलाम का जवाब दे देते। अलबत्ता पुलिसमैन ने जवाब दिया और हमारी सलाम की बदौलत उसने इतनी रियायत भी हकीमे साहब के साथ की कि गर्दन को आजाद करके महज एक कान पर अपना कब्जा रखा। यानी गर्दन उसने छोड़ दी और हकीमे साहब का कान पकड़ लिया।

हमें यह विश्वास हो गया कि भगवान् ने चाहा तो हम जल्दी ही कान को भी आजाद करा लेंगे। इस लिए हमने कोशिशें शुरू कीं—“जनाव, हकीमे—साहब किस जुर्म में गिरफ्तार हैं।” हमने पुलिसमैन से इस तरह पूछा गोया हम उनके वकील हों।

“गुण्डागर्दी के औरतों को छेड़ने-के।” पुलिस वाले ने हमें तो जवाब दिया लेकिन हकीमे साहब के गाल पर एक चनकट रसीद किया।

इस चनकट के लगने का नतीजा यह निकला कि हकीमे साहब की आँखों में आँसू इन तरह से आ गए मानो उन्होंने कोई तेज सुरमा डाल लिया हो। उन्होंने हमारी ओर बड़ी रहमावली से देखा। हमें भी गुस्सा आ गया—“हम बोलें गलत हैं, आपको मुगलता होगा। हकीमे साहब निहायत शरीफ आदमी हैं और चन्द दिन से तो यह बेचारे एक शानदार काम में इतने उलझे हुए हैं कि रात-रात भर घर पहुँचना तक नसीब नहीं होता।”

हमारी बात सुन कर पुलिसमैन बोला—“आप यकीन रखिए अब यह ठीक टाइम पर पहुँचा करेंगे साल-दो-साल की सजा काटने के बाद।”

“मतलब ?”

“यानी हकीमे साहब को पहले हवाले हवालात किया जाएगा और उसके बाद मुकदमा चलाया जाएगा

गुण्डा गर्दी में। रही इनके घर लौटने की बात लौटें कहाँ से, एक-एक बजे रात तक सिनेमाओं के चक्कर लगाते हैं, लकड़ियों को छेड़ते हैं, आज पन्द्रह दिन बाद मैंने एकड़ा है इन्हें सोच रहा था कि बास आ जाएँ।

हमारे लाख मिन्नतें करने पर भी न पुलिसमैन को हकीमे साहब की सराफत का यकीन आया और न ही उसने कान छोड़ा। भीड़ बढ़ती जा रही थी। हकीमे साहब का हृदय तंग था। हमने एक बार फिर हिम्मत की—“धवत क्या है कि आज इन्होंने किसी लकड़ी को छेड़ा ?”

“वह खड़ी है सामने, एक घण्टे से उसके आगे-पीछे जनाब शेरें सुनाते, चिकोरिया काटते आगे-पीछे घूम रहे हैं।”

बस, इसके बाद कुछ भी हकीमे साहब की तारीफ करना, अपने सर भी जहमत मोल लेना था। हमने चलने से पहले एक नजर उस बुर्कवाली पर डाली जिसे छेड़ा गया था।

छिड़ने वाली, औरतों की मीठ में से आगे बढ़ी। लोग हट गए। पुलिसमैन के पास आकर बोली—“मुझे इनकी गुरताली पर कोई ऐतराज नहीं है मेहरबानी करके आज आप इन्हें छोड़ दें—इतना करती हूँ।”

“इसका क्या मतलब ? मैं ऐसी इतना जाँच नहीं मानता। तुम लोग और इन लोगों को बदाती हो।”

“जी, नहीं कुछ बात ऐसी ही है।”

“यानी तुम्हारी मर्जों से ही इन्होंने छेड़ा था।”

“नहीं, ऐसी बात तो नहीं है।”

इस समय हकीमे साहब के चेहरे पर एक रंग आ रहा था और दूसरा जा रहा था। उनकी सुरत से ऐसा लगता था मानों वह छूटते ही अपना सर बुर्कवाली के कदमों पर रख देंगे। उधर तमाम मजमा भी हैरत में था और हमारी हैरानगी की तो बात ही क्या है। हम तो उसे हकीमे साहब के लिए फरिश्ता समझ रहे थे।

महिला की तरफ गौर से देख कर पुलिसवाला बोला—“तब इसे क्यों छुवाती हो ?”

पुलिसमैन के इस सवाल ने सबका ध्यान बुर्कवाली की ओर कर दिया। सब उसका जवाब सुनने के लिए जेताब हो उठे।

महिला कुछ और आगे बढ़ी। आगे बढ़ कर बोली—“इसलिए खुशानी हूँ कि मैं इनकी सीधी हूँ।” यह कह कर महिला ने मुकाँ उठा दिया और बेगम का मुख मजे में चाँद की तरह चमक उठा जिसे देख कर हकीम साहब की गर्दन झुक गई। पुष्पिसमैन काम छोड़ चुका था।

हमने बेगम को सलाम करते हुए कहा—“वाकई बेगम साहब, एक शरीफ आदमी की इज्जत शरीफ आदमी ही बचाता है—सलाम आलिकुम हकीम

साहब—खुदा को दुआ दीजिए कि उसने फिर भी आपकी शराफत कायम रखी।”

उस दिन के बाद सुना है हकीम साहब तमाम दिन और रात घर में ही बेगम के पहरें में रहते हैं और वह उन्हें शरीफ आदमी बनाने की कोशिशें कर रही हैं। शराफत के नाते बेगम के भी इस शरीफ काम में हमने दस्तन्दाजी करना मुनासिब न समझ कर हकीम साहब से मिलना-जुलना छोड़ दिया है। क्योंकि आखिर हम भी शरीफ आदमी हैं।

१११, लासना गेट,
गाझियाबाद

—चिरंजीलाल पाराशर

महत्त्वकांक्षा

एक पर्वता रोही दुर्गम खाइयों को पार करता हुआ निरन्तर ऊँची से उँची चोटी पर चढ़ता चला जा रहा था। हर कदम पर सफलता उसका पद चूम रही थी।

एक चोटी पर पहुँचता तो सामने दूसरी ऊँची चोटी दिखाई पड़ती। वह हारने वाला न था। बससे उठा न जाता था पर ऊँची से ऊँची चोटी पर पहुँचने की इच्छा और भी अधिक तीव्र होती जा रही थी। आगे बढ़ता कठिन हो गया। उसने चिल्लाकर प्रार्थना की—ये पर्वत शिखर! जरा झुक जाओ, मैं तुम्हें छू लूँ।

आवाज बहुत दूर-दूर निजेंन विस्तृत पर्वत खण्डों से टकराई और बहुत देर तक प्रतिध्वनित होती रही।

इसके पश्चात् फिर एक अजीब शान्ति। एकाएक पर्वतों में गड़गड़ाहट हुई। लगा, जैसे सारा भूमण्डल हिल उठा हो।

आवाज आई—

‘मानव! मैं हूँ शिखर! तुम्हारी आवाज सुनकर नीचे आ गया हूँ।

मैं भी तुम्हारी तरह ऊपर उठने का प्रयास करता रहा हूँ। आज से नहीं सदियों से, अनन्त साल से। मैं सदैव ऊपर ही उठने का प्रयास करता रहा। बिलकुल तुम्हारी तरह। मैं आकाश को छूना चाहता था पर आज मुझे लगता है मैंने बड़ी भूल की। आकाश तो मैं जमीन पर भी रह कर छू सकता था पर मुझे मालूम न था।”

पर्वता रोही ने आँखें ऊपर कीं। एक झटके के साथ फिर भूमण्डल हिल उठा और पर्वत-शिखर के साथ पर्वता रोही भी लुढ़कता हुआ वण्य भर में पृथ्वी पर आ पड़ा।

टीचर्स ट्रेनिंग कालेज,
वाराणसी

—रामचन्द्र शुक्ल

जब लकीरें नहीं मिलती

लाला करोड़ीमल के मकान के निचले मरातिब को देख कर शम्बीरमियों के कवूतरखाने की याद आ जाती है। दरबे के छोटे-छोटे खाने और उनमें पले हुए भिन्न-भिन्न नरनों के कवूतर-शिराजी, पाजेबदार, गिरह-बाज, लोटन, लकका, गोला और खुदा जाने क्या-क्या घण्टों उनकी कुलेलें देखते रहिए और शम्बीर मियों से उनकी तारीफें सुनते रहिए, क्या मजाल जो तबीयत करोड़ीमल के दरबे में इन्सान पले हुए हैं, भिन्न-भिन्न जातियों के और भिन्न-भिन्न तरीकों के। शम्बीर मियों की तरह उन्हें अपने पालतू जानदारों को दाना नहीं खिलाना पड़ता, उल्टे ये खुद अपनी गाड़ी कमाई का एक अच्छा खासा हिस्सा उनकी सेवा में अर्पित करते हैं और ऊपर से अपनी बेगार द्वारा सामंतशाही युग की याद दिलाते हैं। आँगन के तीन और बनी हुई छः कोठरियों के कुल नब्बे रुपए ही तो मिलते हैं लालाजी को बाकी कमी बेगार द्वारा पूरी होती है। लखनऊ जैसे शहर में यह सोदा कोई मंहगा नहीं साए में रहने को मिल जाय तो धन्य भाग्य।

कवूतरखाने की तरह लालाजी का इन्सानी दरबा भी मनोरंजन प्रदान करता है लेकिन वह इतने नीचे दरजे का होता है कि तबीयत ऊब जाती है। स्त्रियों की बेड़-बेड़ फुट लम्बी गालियों को सुनकर कानों को अंगुली में बन्द कर लेने की तबीयत चाहती है। जरा सी बात में चखचख शुरू हो जाती है, बहाना कर मिलने की की देर रहती है।

यदि ऐसा कहा जाय कि लालाजी की छत्रछाया में बसी हुई प्रजा का भारत सरकार की परिवार नियोजन स्कीम के विरुद्ध सक्रिय असहयोग आन्दोलन जारी है कहना अनुचित न होगा। प्रायः प्रत्येक परिवार वर्ष में एक सदस्य की वृद्धि करके बधाई का हकदार बनता है। इस समय भी आपकी दर्जन बेड़ दर्जन में लेंगे कुचैले, टेढ़े सीधे, रोगी और बड़े पेट वाले, मंगे अधमंगे बच्चे अपनी अपनी धमाचौकड़ी और चिल्ला पो से आसमान पर चढ़ाए मिलेंगे।

इन अन्धेरी कोठरियों की गन्धी हवा लाला

करोड़ीमल तक नहीं पहुँच पाती क्योंकि वह ऊपर की मंजिल में रहते हैं और 'राम फ़रोखे' बैठ कर सबका मुजरा लेते हैं। स्त्रियों के वाक्युद्ध में कमी-कमी सेठानी जी मध्यस्थ बनने का गौरव भी प्राप्त करती हैं और उनका निर्णय अन्तिम और अकाट्य होता है।

लाला जी अपने खजाने की याद भूल कर भी नहीं देते आप भले ही एक नए पैसे से करोड़ों का अनुमान किया करें। उन्हें याद कोई चिन्ता है तो औलाद की और इस अभाव को पूरा करने के लिए उन्हें अपनी ससुराल से सम्बन्धित एक बच्चे को गोद लेना पड़ा है। किमुन अमी पूरे आठ वर्ष का नहीं हुआ है दोचार महीनों की कसर है।

जरा इन गरीब परिवारों के विषय में भी जान लें तो अनुचित न होगा। वह हैं भिगुरी पहलवान, जो किसी और से पहलवान नहीं मालूम पड़ते, हाँ, अकब्र पहलवानी जरूर है। पचास साल की उम्र है। रात में जाग कर दूकानों की चौकीदारी करते हैं और दिन में अखबार बेचने का काम करते हैं। अखबार खरीदने-वालों के मुख से दो चार खबरें सुन कर अपने साथियों पर अच्छा खासा रोष ढाल लेते हैं। चालीस वर्ष तक मजबूरन ब्रह्मचर्य धारण करने बाद अमी दस वर्ष हुए एक जोरू खरीद कर गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया है।

इनकी बगल में बाबू रिक्शोवाला रहता है जो रंगीला नौजवान है और जिसकी काकुलों से खुशबुदार तेल की बूँदें टपक करती हैं। हाफ पेंट पहन कर और हैट लगा कर रिकशा चलाता है और सिनेमा के मुहब्बत के गीत गाता रहता है। अमी छः महीने हुए इसकी बीबी इसे छोड़ कर भाग गई है लेकिन इसे कोई खास परेशानी नहीं। पहलवान की बीबी इस पर जरूरत से ज़्यादा मेहरबान है और इसके बच्चों को माँ का और इसे बीबी का अभाव खटकने नहीं देती। रात में पहरा देता हुआ पहलवान जब 'जागते रहो' की आवाज बलन्द करता है तो यह चैन से उसी की कोठरी में सोया रहता है। इसकी पाठवाली कोठरी में रहने वाला सालिग फलवाला सब कुछ जान कर भी

खामोश रहता है क्योंकि उसकी और पहलवान की नहीं पटती और वह उसका नुकसान चाहता है चाहे जेबा भी हो। बलबलता सालिंग की बीवी के वाकद्वन्द्वों में इस व्यंग वाण्य का प्रयोग करना नहीं चूकती और पहलवान की बीवी जवाब में उसकी कानी आँख का हवाला देते हुआ कहती है “मैं भी क्या कोई कानी कुलरी हूँ तेरी जैसी। मुझे दुनियाँ चाहती है तो तेरा कलेजा क्यों फटता है।”

पदारथ चाटवाला जाति का चर्मकार है मगर पेट की खातिर परदेस में आ कर इस राज को बड़ी खूबी से छिपाए हुए हैं। चाटवाला पंडित के नाम से मगहूर है। उसके कपड़ों के ऊपर जेजेऊ भौंकता रहता है और थोड़ी-थोड़ी देर बाद दर्पण में मुँह देख कर अपने टीके को सुघारता रहता है। उसकी पंडितानी का पिछला जीवन इतिहास किसी को निश्चित रूप से नहीं मालूम लेकिन शायद वह भगाई हुई है। पाँच बच्चों की माँ होते हुए भी जवान मालूम पड़ती है। अपनी चंचल और छिछोरी आदतों के कारण यह काफ़ी बदनाम है लेकिन पदारथ पश्रिडत को इससे कोई सरोकार नहीं, उसे तो अपने चाट का थाल समय पर सजा सजाया मिल जाना चाहिए।

इन परिवारों में सब से ठोस हैसियत रखनेवाले पे० भरोहराम शर्मा ही हैं जो अब अपने को न्यायी ब्राह्मण घोषित कर चुके हैं हलाँकि इनके पूर्वज अपने को हज्जाम कहने में भी संकोच नहीं करते थे। लगातार चार वर्षे दाईं स्कूल परीक्षा से मोर्चा लेने पर भी जब परास्त न कर सके तो हिम्मत हार कर एक होमिगोपैथी डाक्टर के यहाँ मीठी दवाइयों की पुढ़िया बान्धने का काम संभाल लिया। अपनी बिरादरी में वे डाक्टर साहब के नाम से ही विख्यात हैं और मोका मिलने पर किसी भी बीमारी में ‘डिस्टल वाटर’ का इंजेक्शन लगा कर रुपया बीस आना खड़ा कर लेते हैं। श्रीमती शर्मा अशिक्षित होते हुए भी आधुनिक फैशन की कद्रदान हैं और पाउडर लाली आदि का नियमित रूप से सेवन करती हैं। अपने बहनोई श्री नानकराम से इनकी बहुत पटती है जो शायद सिनिस्टरो की हजामत बनाता है। शर्मा जी इस हेलमेल को नापसन्द करते हुए भी कुछ कह नहीं सकते क्योंकि उनकी बीबी उन पर खरूरत से ज्यादा हावी है।

छठवीं और आखिरी कोठरी का इतिहास ज्यादा पुराना नहीं है। अभी पिछले साल ही लालाजी ने अपने छोटे से आँगन को आधा पाट कर अपनी आमदनी में पन्द्रह रुपए माहवार का इजाफ़ा किया है। इसका सबसे पहला किराएदार एक शराउर्था था। उसका पेशा बड़ा ही दिलचस्प था। दूसरों के भाग्य की रेखाएँ पढ़ता लेकिन खुद अपनी नहीं पढ़ पाता। लम्बी दाढ़ी और जटा से सुशोभित यह ज्योतिषी सबेरे ही नदी के घाट पर पोथी पत्रा सजा कर बैठ जाता और बगुले की तरह शिकार की ताक में बैठा रहता। शाम को अपने नाम की छोटी सी तख्ती हाथ में छिपे शहर के मुख्य बाजारों में चक्कर लगता और अवसर दो एक भाग्य के मारे ज़ाल में जा उलझते। नवनिर्मित कोठरी में लालाजी ने इसे इसीलिए बसाया ताकि वह उनके सितारों की गति चौकसी से देखता रहे लेकिन ज्योतिषी कुछ दूरी ही धातु का बना हुआ था। उसका सिद्धांत था। ‘घोड़ा घाम से यारी करे तो खाए क्या?’ और जब वह हर महीने पन्द्र रुपए खरे-खरे गिनता था तो बेगार कैसे? अस्तु लाला की क्योंकि यह ज्योतिषी बात निकालना भी टेढ़ी खीर थी क्योंकि यह ज्योतिषी बात पर अदालती कार्रवाई की धमकी देता। अस्तु लाला करोड़मल खामोशी के साथ मौके का इन्तजार करने लगे।

मकान के सामने गली में जो थोड़ी सी खुली जगह थी, ज्योतिषी वहीं पर खड़ा हो कर लोगों को अजीबो गरीब बातें सुनाता। ‘यह दुनियाँ लकीरों पर ही कायम है। अगर लकीरों न होती तो न अकार होता और न अक्षर और न आज का ज्ञान विज्ञान ही होता। फिर कहाँ होते ये आज के हवाई-जहाज, अणुबम, उड़जन बम और रूसी और अमेरिका के बनावटी चाँद-सितारे। भाग्य विधाता ने भी इन लकीरों की लाप में ही मानव का भाग्य लिख कर अपनी अमीम अनुकम्पा का परिचय दिया है। आप अपनी हथेलियों को देखिए, लकीरों मिलती हुई हैं फिर भी भाग्य भिन्न-भिन्न हैं। इतनी बारीकियों का अध्ययन साधारण बात नहीं तपस्या कर्नी होती है तपस्या। ब्रह्म में अपने को लय करके ही उसकी गति जानी जा सकती है। हम जानते सब कुछ हैं पर बताते नहीं क्योंकि कभी-कभी इसका परियाम बुरा भी हो जाता है।’ लोग मेंत्रमुग्ध सुनते

उसके ज्ञान की प्रशंसा करते और प्रायः दो एक उसकी जाल में फँस भी जाते।

फिर एक दिन उसने एकांत में शर्मा और पदराथ परिङ्कित से कहा, “हममें कुछ छिपा थोड़े ही है। देखा है कभी तुमने लाला क पालतू बच्चे किसनु का हाथ?” दोनों श्रोता आँखें फाड़े उसे देख रहे थे। दोनों ने एक साथ नकारात्मक भाव से सिर हिलाया। ज्योतिषी ने फिर कहना आरम्भ किया “देखो, उसके दाहिने हाथ की यह दो रेखाएँ नहीं मिलनी और जब यह नहीं मिलती तो मनुष्य वर्णसंकर होता है। वर्ण-संकर माने ममरुते? दोगला-दोगला। “श्रोताओं ने डरते डरते अपनी हथेलियों को देखा बाल बाल बच्चे, लकीरें मिलीं हुई थीं। दोनों ही असल थे। ज्योतिष ब्रह्मा रहा, और ललाइन इसे मानती भी कितना है?” फिर एक मेद भरी मुस्कान बिखरेते हुए ज्योतिषी ने कहा, “बात तो यह है कि यह बालक महारथी कर्ण है। शायद अभी भी तुम लोग नहीं समझते? अरे, यह ललाइन के गर्भ से ही उत्पन्न जारज पुत्र है जो विवाह क पूर्व ही हो चुका था और अब इस बहाने पाला जा रहा है। लाला क्या नहीं जानते? सब कुछ जानते हैं, अभी तो उसकी जन्मपत्री मुझे नहीं दिखाते नहीं तो मैं दूध का दूध और पानी का पानी कर दूँ। देखो बात अपने तक ही रखना।” “राम राम कदो ज्योतिषी जी। हम लोग भी क्या ऐसे वैम हैं जो इधर उधर की क्या करें।” पदराथ परिङ्कित ने कान पकड़ते हुए कहा और शर्मा जी ने ममर्थन किया। इस बात का परिणाम कितना अभ्यंकर हो सकता है? शायद ज्योतिषी की लकीरें उसे न बता सकी थीं। ललाइन पर कलंक आरोपित करके उसके हृदय की जलन अवश्य कम हो गई थी।

शर्मा जी सीधे अपनी कोठरी में दाखिल हुए और अपने बच्चों की दस्तरैखाओं का सुझावना करने लगे। भाग्य की बात, सबसे छोटे की वही दोनों रेखाएँ अलग अलग थीं। अब शर्मा जी ने ध्यान से उसका मुख देखना आरम्भ किया। जिम मुख में आज तक उन्हें कोई विशेष बात नहीं दिखाई दी थी, आज उसका प्रत्येक अवयव, आँख, नाक, कान, मुख माथा सभी कुछ नानकराम से मिलला जुलता प्रतीत होने लगा। कामोत्थी के साथ सोचने लगे। श्रीमती शर्मा ने पूछा, “क्या सोच रहे हो?”

“रेखा नहीं मिलती?”

“यह कलमुही रेखा कौन है? मिले न मिले, तुम्हें इससे क्या लेना देना है?”

“लकीरें नहीं मिल रही हैं, लकीरें!” शर्मा ने चीख कर कहा और अपनी धर्मपत्नी पर अपनी पैनी नजर गड़ा दी जैसे मन को बेध कर सब कुछ जान लेना चाहते हों।

“कैसी लकीरें? कुछ कहो भी तो।” तेज स्वर में श्रीमती शर्मा बोलीं।

“असंख्यित की लकीरें। तुम्हारा छोटा लक्ष्मा वर्णसंकर है।”

“नशा तो नहीं पी आया हो। संकर भगवान् को लकीरों से क्या करना है?”

“अरे तुम्हारा लक्ष्मा दोगला है दोगला।”

“लक्ष्मदार जो फिर ऐसा कहा। तुम दोगले होगे और तुम्हारा सात पुत्र। किस कलमुह ने यह बिया तुम्हें पढ़ाई है? बताओ नहीं तुम्हारा दाना पानी हराम कर दूँगी और तुम्हारे मुँह में काँक्षित पोत कर निकल जाऊँगी।

सीवी का रौद्र रूप देख कर शर्मा जी सहम गए। “अरे। तुम तो मज्जाक में बुग मान जाती हो। यों ही जरा बात चल पड़ी थी ज्योतिष जी से। “बताती हूँ अभी मुँह फोँसे को। मैं तो पहले ही जान गई थी कि यह उर्मी की कारस्तानी है। “और शर्मा जी जब तक रोकें रोकें वह आँगन में पहुँच चुकी थीं और ज्योतिषी पर धुआँधार गोखियों की वर्षा हो रही थी। पहलवान की बीवी और पदराथ की परिणतानी ने सी पूरा योग दिया, ज्योतिषी की खो ने कुछ देर मोर्चा लेकर घुटने टेक दिए। पदराथ ने अन्दर आते ही अपनी परिणतानी को सब कुछ बता दिया था, अस्तु परिणतानी द्वारा किमनु की लकीर सम्बन्धी व्याख्यान सुन कर ललाइन सी अपने पक्ष के नेतृत्व को उत्तर आई। अगर शर्मा और पदराथ परिङ्कित बीच बचाव न करते तो बेचारे ज्योतिषी पर बे भाव की पकती।

बेचारा ज्योतिषी बागी करार दिया गया और अन्य पाँच कोठरियों की जनता ने उसका ‘वायकाट’ कर दिया। वहाँ से सही सलामत चले जाने में ही उसने कुशल समझा। आते समय न किसी ने राम-राम किया न दुष्सा सलाम। शर्मा जी अवश्य विवादमयी आँखों

से देखते रहे लेकिन बोलने की हिम्मत उनकी भी न पड़ी।

खाली कोठरी के लिए फिर उम्मीदवारों का तौता बैठा। पुलिस कान्स्टेबल, विधान सभा का चपरासी और स्कूल मास्टर। ललाइन कान्स्टेबल का पञ्च लेती क्योंकि उसकी बदौलत वह जिसे चाहती जेल भेज देती और लाला स्कूल के मास्टर का, क्योंकि इस पेशे का आदमी सीधा सादा होता है, दौब पेंच नहीं जानता। ललाइन को क्राबू में न आते देख लाला ने ट्रम्प चाल चली कियु भी तो पढ़ने लायक हो गया है। मास्टर क रुपए भी तो बचेंगे।" और इस तर्क के सामने ललाइन को चुप होना ही पड़ा।

मास्टर अपने तीन बच्चों और पत्नी के साथ खाली कोठरी में आबाद हुआ। तीन चार दिन बाद ही लाला जी ने कहा "मास्टर जी। जरा कियु भी को घण्टा दो पढ़ा दिया करो। मेहरबानी होगी।" "मेरे पास समय कहीं है लालाजी।" मास्टर ने नम्रता से कहा, "अपने बच्चों को पढ़ाता हूँ, कुछ लिखता पढ़ता हूँ और फिर तीस-तीस रुपए के तीन ट्यूशन हूँ। छोड़ दूँ तभी समय निकल सकता है।" केशी बातें करते हो मास्टर जी। पाँच-पाँच रुपए में मास्टर मारे-मारे फिरते हैं और तुम तीस रुपए सुनाते हो। खूब रही। 'मास्टर स्वामिमानि था बोला, आप क्या जानें विया का मूल्य सेठ जी, तिजोरी भले ही भरी हो, दिमाग का कोना खाली ही होगा।' और उसी दिन से लालाजी और मास्टर में चल गइ। लाला मौके का इन्तजार करने लगे और लालाइन ने अपनी प्रजा की घंघरिया पलटन

बुलाकर ज्योतिषी पर किया गया प्रयोग पुनः सिद्ध करने का आदेश दिया।

अधिक दिन इन्तजार नहीं करना पड़ा। श्रीमती शर्मा किसी भी अवसर को अपने अनुकूल बना लेने में सिद्धहस्त थी।

शामत का मारा मास्टर एक दिन सातवीं कक्षा में पढ़ने वाले अपने बाल को पढ़ा था "जब एक रेखा दूसरी से समकोण पर मिलती है तो उसे लम्ब कहते हैं।"

श्रीमती शर्मा के कान में भनक भर पढ़ने की देर थी। उत्तर आई मैदान में "यह कुलमुंज मास्टर भी रेखा मिलाता है। यहाँ नहीं चलेगी तेरी माया। बड़ा आया लकीरें मिलाने वाला। तेरी दाल यहाँ नहीं गलने की। तेरा मुँह फूँक दिया जाएगा। तेरी मर्याद उठा दी जाएगी।"

ललकार सुन कर ललाइन नीचे उतर आई और पंडितानी और पहलवान की बीवी ने भी आक्रमण की तीव्रता को बल प्रदान किया। बेचारा मास्टर कुछ न समझ सका कि आखिर उसकी गलती क्या थी। बार-बार हाथ जोड़ता जमीन पर सर टिका देता लेकिन न तो उसे उसका अपराध ही बताया गया और न उसे क्षमा ही प्रदान की गई। दोपहर की आरम्भ हुई गस्त्रियों शाम तक चलती रहीं और यह अखण्ड कीर्तन शायद चलता ही रहता लेकिन बेचारा मास्टर धैर्य खो चुका था। संध्या के सुवले प्रकाश में रिक्तों पर सामान लाद कर कहीं और चला गया। कोठरी पुनः खाली हो गई और शायद अभी खाली है।

५. दशमत क्वार्टर्स,
कैथरबाग मण्डी,
लाटूश रोड, लखनऊ

—बिहारीसरण चौबे

पाप करने वाले के प्रति पहले स्वयं पाप न करे। अपराधी से बदला न ले। सदा साधु-स्वभाव से ही रहे। जो किसी के प्रति अकारण पाप करना चाहता है, वह स्वयं नष्ट हो जाता है।

भारतीय संगीत के वर्षाकालीन राग

भारतीय ऋतुओं की रसमयी प्रकृति ने यहाँ के साहित्य संगीत और कलाओं को समान रूप में प्रभावित किया है। यहाँ के रीतिकालीन साहित्य और मध्य-युगीन चित्रकला में इन ऋतुओं का मजीब चित्रण देखने को मिलता है। ऋतुओं का यह मौन्दर्य यहीं तक सीमित न रह सका बल्कि उसकी डम छटा से यहाँ के संगीत को भी प्रेरणाएँ प्राप्त हुईं जिनके फलस्वरूप 'बसन्त' और 'मेघ' रागों की उत्पत्ति हुई। बसन्त ऋतु से 'बसन्त राग' और वर्षा ऋतु से 'मेघ', 'मल्लार' आदि रागों के स्वर चित्र अंकित किए गए। यहाँ की काव्यकला संगीत और चित्रकला में प्रायः सभी ऋतुओं पर रचनाएँ देखने को मिलती हैं परन्तु यदि तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाए तो बसन्त और वर्षा सम्बन्धी रचनाओं के मामले में अन्य ऋतुओं की रचनाएँ उंगलियों पर आमानों से गनी जा सकती हैं।

ये कलाएँ आद काल में ही अपनी भाव प्रवणता एवं शृंगारिकता के लिए जगत् विख्यात हैं। इस दृष्टि से 'वर्षा' और 'बसन्त' ही ऐसा दो ऋतुएँ हैं जिनसे शृंगारिक भावनाओं की सफल अभिव्यक्ति की जा सकती है। इन ऋतुओं की सीली प्रकृति किसी भावुक को सहज से ही मुरग क लेनी है। साहित्य का हो संगीतकार या चित्रकार सभी इन ऋतुओं की शृंगारिक प्रकृति से प्रेरित हो कर कलात्मक सृजन की ओर पशुत होते हैं। भारतीय संगीतकार यदियों से इन सप्त स्वरों का संवल ले एक मोहक राग रचना करता आ रहा है जिसमें जीवन के प्रत्येक क्षणों का भिन्न-भिन्न स्वर चित्र हमारे आँखों के सामने मूर्तियोंमान हो उठता है। संगीत के इन्हीं स्वरों की उपज से भारतीय चित्रकला में एक से एक अद्भुत और अनूठे राग चित्र रचे गए जिन्हें साधारण दर्शक देख कर अवसर भ्रम में पड़ जाता है और उन्हें वह व्यावहारिक जीवन के चित्र समझ बैठता है। वास्तव में राग सम्बन्धी ये चित्र वन रागों से उत्पन्न भाव दृश्यों को ही चित्रित करते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय संगीत भाव प्रधान संगीत है।

इन भाव और रसों की सफल निष्पत्ति के लिए यहाँ का शास्त्रीय संगीत जगत विख्यात है। नृत्य की मधुर थिरकन ने और हाव भाव भरी मुद्राओं से रसानु-भूति प्राप्त करना, सब सुलभ है क्योंकि यहाँ पर भाव प्रत्यक्ष-रूप में देखने लगता है। हमारे जीवन में भिन्न-भिन्न ऋतुओं की प्रकृति से भिन्न-भिन्न रसों की उत्पत्ति हुई जिनका प्रभाव यहाँ के संगीत पर भी पड़ा। "बसन्त" और "मल्लार" राग यहाँ की ऋतुओं की ही देन हैं। वर्षा और बसन्त की प्रकृतिओं ने मानवीय भावनाओं में मे शृंगारिकता भर दी। प्रकृति के रंग रस से पराबोर की हृदयतंत्री हिल उठी। मुँह से स्वर निकले और राग खड़ा हो गया।

भारतीय संगीत में स्वरों की उत्पत्ति जिनके रुचिकर संयोजन से रागों का निर्माण होता है उनके सम्बन्ध में हमें यहाँ पर एक स्वतन्त्र रूप से ही विचार करना उचित होगा। यह पहिले ही कहा जा चुका है कि भारतीय संगीत-भावना प्रधान होता है अस्तु इन भावों की साकारता प्रदान करने के लिए स्वरों के माध्यम से संगीतकार ऋतु विशेष से प्रेरित हो कर स्वरों के मेल से रागों का जन्म देता है। वर्षा कालीन रागों के सम्बन्ध में जब हम विचार करते हैं तो—इस ऋतु में मुख्य रूप से मेघ, मल्लार, गौड़ मल्लार, मल्लार या मिया मल्लार और देश आदि रागों के गाने का प्रचलन है। इसके बाद यह भी देखना है कि ऐसे रागों के निर्माण में किस प्रकार के स्वरों का विशेष रूप से प्रयोग होता है। क्योंकि भारतीय संगीत में शब्दों से अधिक महत्व स्वरों का है। संगीत में रस की निष्पत्ति मूलतः राग में प्रयुक्त स्वर समूहों द्वारा ही होती है। शब्दों का अस्तित्व एक दम नष्ट कर दिया जाए तब भी रस का संवरण अबाध-गति से प्राप्त होता रहेगा। भारतीय संगीत में "तरानो" का निर्माण इसी ढंग से किया गया है जिसमें "तोम" "नौम" आदि अर्थ रहित शब्दों के बावजूद भी ये रचनाएँ कर्ण प्रिय और रुचिकर लगती हैं परन्तु इतना अवश्य है कि अर्थपूर्ण शब्दों से संगीत को अधिक बल मिलता है। इस प्रकार से हम यहाँ पर वर्षा कालीन

रागों में प्रयुक्त होने वाले “स्वर” और “शब्दों” के सौन्दर्य पर विचार करेंगे।

यों तो वर्षा ऋतु के मुख्य राग मेघ, मल्लार, गौड़ मल्लार और मल्लार ही माने जाते हैं परन्तु देश और जयजयवन्ती राग की चीन्ही भी इस ऋतु में बड़े चाव के साथ गाई बजाई जाती हैं। इसका प्रधान कारण यह है कि देश और जयजयवन्ती रागों की प्रकृति तथा उन रागों के शब्द मित्रों में वर्षाकालीन अन्य रागों की प्रकृति और उनमें अंकित शब्द चित्रों में बहुत कुछ साम्यता है। आजकल वर्षाकाल में मल्लार, गौड़-मल्लार तथा देश राग ही अधिकतर गाए जाते हैं। इन सभी ऋतु रागों की उत्पत्ति ‘काफ़ी’ और ‘खमाऊ’ ठाट से है। ‘मेघ’ राग को छोड़ कर शेष वर्षा राग, पूर्वांग वादी ही ठहरते हैं। मेघ राग के अतिरिक्त इन शेष-रागों की जातियों में भी बहुत समानता है। वर्षा-कालीन रागों में तीव्र स्वरों से ही राग की रचना की गई है। इन रागों में कोमल स्वरों का अति अल्प प्रयोग किया गया है। दोनों ‘नी’ स्वर का प्रयोग सब रागों में प्रायः समान रूप से किया गया है और कुछ रागों में कोमल ‘ग’ का भी अल्प प्रयोग दिखाई देता है विशेष कर मल्लार, और जयजयवन्ती रागों में। इसका निष्कर्ष यह है कि वर्षा कालीन रागों में बहुलता तीव्र (शुद्ध) स्वरों की है।

वर्षा कालीन रागों का सामान्य परिचय प्राप्त करने के पश्चात् उनमें प्रचलित रागों के मुख्य अंग के सौन्दर्य पर विचार करना आवश्यक जान पड़ता है। “राग के मुख्य अंग” से मतलब है उस राग में बारम्बार आने वाले स्वरों का वह समुदाय जिससे राग झलक उठता है। “मुख्य अंग” में अल्प स्वरावलियों के छेड़ते ही राग ध्वनित हो उठता है। राग के स्वरूप तथा उसके चलन का परिज्ञान राग-के मुख्य अंग से सरलता पूर्वक किया जा सकता है। वास्तव में राग का ‘मुख्य-अंग’ उसका प्राण होता है। उदाहरणार्थ गौड़ मल्लार राग का मुख्य अंग प्रस्तुत किया जा रहा है :

रे प, म प, धनिषा धनिपम, रे ग रे म ग रे सा।

इन स्वर लहरियों को गुणगुजाने से हृदय में एक सरस भाव-चित्र की कल्पना होने लगती है जैसे कोई नर्तकी अपने दोनों नेत्रों को नचाते, गर्दन को किंचित झुकाते हाथों की उंगलियों को करफराते शृंगारोत्तेजक भाव

मुद्राएँ रचते तथा अंग प्रत्यंग को लहराते (रे ग रे म ग रे सा) की धीर-गति में उतरकर पायल की मधुर ध्वनी से सम्पूर्ण वातावरण मुखरित कर रही है। इस राग का “तीन ताल” में एक सुप्रसिद्ध शब्द चित्र देखिए :

“आए बदरा कारे-कारे, हमरे कंथ निपट भए बारे,
ऐसे समय परदेश सिधारे”

“एक तो मुरला वन में पुकारे,
मोहे जरी को अधिक जरावे
है कोई ऐसी पियु को मिलावे,
उजड़ा पंछी कौन बिधारे”

वियोग जन्य भावनाओं को उभाड़ने वाले ये शब्द जब-जब स्वरों का संवल लेकर हमारे सामने आते हैं तो यही शब्द और स्वर अपने भस्मित प्रभाव से हमारे आँखों के सामने एक अमिट चित्र खींच जाते हैं। हम अपने सुख दुःख को पराया सुख दुःख समझने लगते हैं। इस प्रकार से संयोग और वियोग दोनों ही अवस्थाओं के मर्मस्पर्शी चित्र भारतीय संगीत में उपलब्ध होते हैं संयोग की दशा में वर्षाकालीन दृश्य हृदय को जितना ही उल्लसित करता है वियोग की हालत में वही दृश्य उद्ध्वलित भी करता है।

इसके बाद ‘मल्लार’ और ‘जयजयवन्ती’ राग के स्वर और शब्द चित्रों का भी अवलोकन करना आवश्यक जान पड़ता है। ‘मल्लार’ वर्षा ऋतु की एक प्रसिद्ध मौसमी राग है। ‘जयजयवन्ती’ कोई ऋतु विशेष राग नहीं है अपितु यह एक सार्वकालिक राग है परन्तु इसने स्वरों में वियोग जन्य परिस्थितियों को चित्रित करने की अपूर्व क्षमता है। रे ग रे सा, नी ध प रे, सा नी ध प, धमग रे ग रे सा। इन स्वरों से इस राग की पूर्ण अभिव्यक्ति हो जाती है। आत्म निवेदन, मुनहार आदि से द्रवित होकर स्पर्श करनेवाली भावना का सच्चा स्वरूप इन स्वरों में उपस्थित हो जाता है। हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति ही सुप्रसिद्ध वीज जयजयवन्ती त्रिताल (विलम्बित) देखिए :

“दामनि दमके डर मोहै लागे,
समगै दल बादल श्याम घटा
लिख मेजो सखि उस नौदन को,
मेरी खोल किताब देखो बिधा”

मियों ‘मल्लार’ राग में तो वर्षा ऋतु के एक से

एक मोड़क शब्द चित्र अंकित किए गए हैं। वैसे यह ऋतुकालीन राग होने के नाते भी इस मौसम में चौबीसों घण्टे गाय जाता है। गीतों के शब्दों के अतिरिक्त स्वरों को भी एक अपूर्व संयोजन इस राग में देखने को मिलता है जिसे बड़ी सावधानी के साथ गाना पड़ता है अन्यथा असावधानी से शीघ्र ही इसका स्वरूप बिगड़ जाता है। इस राग के प्राण स्वर, नि नि सा दोनों विषाद और म ग म ग म पमम रे हैं। ये स्वर मन्द और मध्य सप्तक में आलाप चारी करते समय गम्भीर प्रकृति धारण करते हैं और तार सप्तक के स्वरों को लेते हुए मध्यसप्तक के नि नि सा करते समय इस राग में तरल प्रकृति का भाव झलकने लगता है। स्वरों के ऐसे संयोजनों से संयोग एवं वियोग के कितने ही मफल चित्र इस राग में अंकित किए गए हैं। हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति की एक संयोग शृङ्गार प्रधान चीज झपताल में देखिए।

“अयो है मेघ, नई रुत पावस कर लायो,
देख हुलसाय दिया नए पिया प्यारी को,
पहन चूतर सुरंग, अंग भूखन नयो,
नयो बादर नयो जीवन त्रिजनारी को”

इसके अलावे प्रचार में कुछ राग ऐसे भी हैं गाए जाते हैं जो इस ऋतु में बड़े ही सुहावने लगते हैं। “देस” एक ऐसा ही प्रसिद्ध राग है जो सर्व कालिक होते हुए भी बड़े चाव से इस मौसम में हर जगह गाय बजाया जाता है। एक तो इसकी प्रकृति ही इस ऋतु के अनुकूल है दूसरे इसके गीतों में वर्षा ऋतु का अधिक चित्रण भी मिलता है। इसके स्वर शृंगारित भावनाओं को अच्छी तरह से अभिव्यक्त करते हैं। इस राग में रे

स्वर बहुत ही मद्धत का होता है। चारों ओर घुम फिर कर स्वरलहरियाँ ‘रे’ स्वर पर विश्राम करती हैं। ‘रे’ देशका तीर्थ स्थल है। दीनता, विवशता आदि भावों तथा आत्मनिवेदन के कथन को इन स्वरों में गायक बड़े ही धैर्य और सौंदर्य के साथ व्यक्त करते हैं। स्वरों के इस सुगंधकारी स्वरूप में हम आराम विस्मृत हो जाते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वर्षाकालीन रागों में विशेष रूप से “मल्लार”, मेघमल्लार “गोबे मल्लार” और “देस” रागों के ही गाने बजाने का अधिक प्रचलन है। इन रागों में प्रधानता शृंगारिक प्रकृति की ही सर्वत्र देखी जाती है और प्रायः एक सा वर्णन भी सबसे देखने को मिलता है। जहाँ तक स्वरों की प्रकृति का प्रश्न है उससे भी वही बात अभिव्यक्ति कराते हैं। हाँ इनके स्वर संयोजनों का सौन्दर्य और आकर्षण भिन्न भिन्न है। जिसका इस प्रकार का होना स्वाभाविक ही है। यहाँ केवल “देस” राग का एक गीत दिया जा रहा है स्थाना भाव से उसकी स्वर लिपि नहीं उपास्थित की जा रही है महाकवि ‘निराला’ के सुप्रसिद्ध सावम गीत की इन पंक्तियों का रसस्वादन सस्वर करें।

“आली घिर आए घन सावन के
लख ये काले काले बादल,
नील सिंधु में खिले कमल दल
हरित ज्योति चपला अति चंचल,
सौरभ के रस के ॥आली०
द्रुत समीर कापे धरधरधर,
धारायें फरती फर फर फर,
जगती के प्राणों में स्मर भर,
बेध गए कस के ॥” आली०

रुइया होस्टल, डी. ब्लाक,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी

—विसरंजन ज्योतिषी

दुख और कष्टों की साकार मूर्ति को बार-बार देखता रहा और सोचता रहा कि
व्यथा में भी कितना आकर्षण और मोन में भी केसा आनन्द है।

स्व० नाथूराम माहौर

ब्रजभाषा के अनन्य कवि, बुन्देलखण्ड के गौरव, कान्ति-कारियों के आश्रयदाता एवं निर्भीक देशभक्त कवीन्द्र नाथूराम माहौर का जन्म २२ जुलाई को अपने निवास स्थान पर वेहान्त हो गया। लम्बी बीमारी के कारण उनकी देह इतनी जर्जरित हो चुकी थी कि दो दिन पहिले उनकी मनाई गई हीरक-जयन्ती में भी वह उपस्थित न हो सके और उस समय उपन्यास सम्राट बाबू वृन्दावनलाल वर्मा स्वयं उनके निवास स्थान पर थेली भेंट करने गए।

स्वर्गीय माहौरजी का जन्म सम्वत् १९४२ में जेठ शुक्ल दशमी के दिन हुआ था। माहौर जी जन्मजात विद्रोही कवि थे। वे हमेशा राष्ट्रवादी आन्दोलनों में भागे रहे और अपनी अज्ञेय कविताओं के द्वारा नव-युवकों में चेतना फूँकते रहे। कांग्रेस की ऐसी कोई सभा नहीं होती थी जिनमें माहौर जी कविता पाठ न करते हों। एक बार जब स्वर्गीया उमा नेहरू, फॉसी पधारी तो उनकी सभा में माहौर जी ने वीर रस में ओतप्रोत एक कान्तिकारी कविता पढ़ी, कविता समाप्त होने के परचाट्ठी भीमती उमा नेहरू बोलने के लिए खड़ी हुई। उन्होंने जन समूह को सम्बोधित करते हुए कहा— माहौर जी की कान्तिकारी कविता ने मेरे शान्तिवादी विचारों में उथल-पुथल मचा दी है।

अदार्थ व्यापारी : माहौर जी ने १५ वर्ष की आयु में ही कविताएँ लिखना प्रारम्भ कर दिया था, किन्तु उसे उन्होंने जीविका का माधन कमी नहीं बनाया, वे कपड़े का व्यापार करते थे। ममौला कद, बड़ी-बड़ी ऐंठी हुई मूँछें, घुटनों तक खहर की धोती, घुन्हीदार कंगरखा, सिर पर खाली की टोपी, गौरवर्ष और चककती हुई आँखें तथा रोबीली आवाज, यह था माहौर जी का व्यक्तित्व। माहौर जी ने कभी भी ठाकुर सुहाती बात नहीं कही, निर्भीकता उनकी नम-नस में भरी हुई थी। सन् १९३५ की बात है, बसंतपंचमी के मेले के अवसर पर माहौर जी पन्ना रियासत में अपनी कपड़े की दुकान लेकर गए। उसी दिन पन्ना दरबार में

विशाल कवि सम्मेलन था, दूर-दूर से दरबारी कवि पधारे हुए थे, पन्ना नरेश के दरबारी कवि श्री हरनाथ, माहोरा जी से परिचित थे, वे इन्हें भी कवि सम्मेलन में खिवा ले गए। उन दिनों आज कल जैसे कवि-सम्मेलन नहीं होते थे। कवि सम्मेलन में समस्या पूर्ति की जाती थी और जो कवि सब से अच्छी समस्या पूर्ति करता था उसे पुरस्कृत किया जाता था। पन्ना दरबार में समस्या रखी गई थी “कृपाणु” की उपस्थित कवियों ने “कृपाणु” के माध्यम से पन्ना नरेश की खूब प्रशंसा की। अन्त में बारी आई माहौर जी की। माहौर जी तो जन्मजात विद्रोही कवि थे, वे इस समय कब चूकने वाले थे उन्होंने दरबार में निम्नलिखित कवित सुनाया :

“जानी है शिवाजी, छत्रशाल कर तानी जब
कीनी मनमानी धूँ-धानी मुगलानी की
जानी है प्रताप, करी हानी बैरियों की खूब
ठीक बान ठानी, रतंत्रता महान की
“नाथूराम” बाई साब जानी है जनाई जान
प्रीत जग छाई सिंह वाहिनी प्रमान की
जाने कहा, निगुरे निगोड़े रजपूत कोरे
कायर कपूत कर करनी कृपान की”

दरबार में सजाटा छा गया, दरबारियों की शृङ्ख-टियों तनगई राजकवि हरनाथ थर-थर काँप रहे थे, पता नहीं महाराज क्या आदेश दें, किन्तु पन्ना नरेश काय्य रसिक थे, उनके चेहरे पर मुस्कान छा गई, उन्होंने ठठ कर माहौर जी की भूरि-भूरि प्रशंसा की और उन्हें स्वर्णपदक से पुरस्कृत करने की घोषणा की। किन्तु माहौर जी उस समय भी न चूके। उन्होंने नम्रता पूर्वक निवेदन किया। महाराज, मैं कवि नहीं व्यापारी हूँ मैं आपका स्वर्णपदक न लूँगा, यदि आप मुझमें प्रसन्न हैं तो मेले में आइए और मेरा कपड़ा खरीदिए। पन्ना नरेश उसी दिन माहौर जी की दुकान पर गए और उनका समस्त कपड़ा खरीद लिया।

निर्भीक देशभक्त : माहौर जी का जीवन देश

भक्ति से ओत-प्रोत रहा है। सन् १९३० में रेलवे के इन्ताली मजदूरों को उन्होंने अपनी अपार सम्पत्ति खिलाड़ी और स्वयं सबैदारा बन गए। उन्होंने अपने भानजे भगवानदास माहौर को कान्तिकारी शिक्षा-वीक्षा दी, और यही भगवानदान आगे चलकर भगत-सिंह तथा चन्द्रशेखर आजाद के साथ कान्तिवाहिनी के सेनानी बने। जिस समय लोग महात्मा गान्धी तथा कप्रेष का नाम लेने में हिचकते थे, उस समय माहौर जी की कान्तिकारी कविताएँ बुन्देलखण्ड के जन-मानस में देश प्रेम की आग फूँक रही थीं। जब उनकी एक पुस्तक अंग्रेजी सरकार ने जप्त करली तो उन्होंने अन्त्योक्ति में “गोरी बहू” नामक काव्यसंग्रह प्रकाशित कराया जिसमें गोरी नौकरशाही पर बड़ चुटीले व्यंग्य थे।

उन दिनों फ़ौसी के कुछ अंग्रेज भक्तों ने ‘आनन्द सभा’ नामक एक संस्था का निर्माण किया था। आनन्द सभा का कार्य था राष्ट्रीय नेताओं की निन्दा करना और अंग्रेजी राज्य की प्रशंसा करना। एक समय आनन्द सभा ने एक कवि सम्मेलन का आयोजन किया। कवियों के सम्मुख समस्या रखी गई ‘काले हैं।’ कई कवि गण स्वयं काले होते हुए भी कवि सम्मेलन में काले लोगों और भारतीयों की खिलौयें उड़ाने लगे, अचानक माहौर जी भी घूमते-घामते उधर से निकल पड़े, जब उन्होंने कवि सम्मेलन के मंच से भारतीयों तथा राष्ट्रीय नेताओं की निन्दा करते हुए सुनी तो उनका खून खौल उठा, उन्होंने अध्यक्ष महोदय से कविता पाठ करने के लिए १० मिनट माँगे। अध्यक्ष महोदय माहौर जी को कविता पाठ करने के लिए अवसर देने को तैयार नहीं थे किन्तु श्रोताओं के आग्रह पर उन्हें स्वीकृति देनी पड़ी। उस दिन माहौर जी ने जो कविता सुनाई वह हिन्दी साहित्य के इतिहास में अमर रहेगी। उन्होंने कहा—

“तोयधि, तमोगुण, तमभ्रा, तम-तार ऐसे
ताजी, तर-बतर, अतर संभाले हैं
‘नाथूराम’ बाले हैं, निरासे भ्रमशाले संजु
मन्मथ बाले केस मनमथ बाले हैं
गोरी के अमोल गोल-गोल गालों पर
पड़े हुए लामे, लहराले, घुंघराले हैं

बन्धन विमुक्त, मतवाले प्रण रोप रहे
मानो कर कोप चढ़े गोरो पर काले हैं”

कविता सुनते ही आनन्द सभा के संयोजकों के मुँह फीके पड़ गए, उपस्थित श्रोताओं ने तालियों की गड़गड़ाहट के बीच माहौर जी की कविता दुहराना प्रारम्भ कर दी और उसी दिन से गोरी सरकार की लिस्ट में माहौर जी का नाम राजद्रोही के रूप में लिख लिया गया।

कान्तिकारियों के आश्रयदाता : भुवावल बम-सके अभियुक्त भगवानदास माहौर के साथ स्व० नगत-सिंह, चन्द्रशेखर आजाद तथा उनके साथी महोर् जी के घर पर आया करते थे, भगवानदास को माहौर जी ने ही पढ़ाया लिखाया था अतः माहौर जी का घर कान्तिकारियों के लिए विचार विमर्श तथा उदरपूर्ति का स्थान बन गया था। पता नहीं कितने कान्तिकारी अभियानों की भूमिका माहौर जी के घर पर बनी। भगवानदास ने अपने साथियों का विस्तृत परिचय माहौर जी को कभी नहीं दिया, किन्तु माहौर जी जानते थे कि ये नवजवान देश के किसी महान कार्य में संलग्न हैं। भगतसिंह और चन्द्रशेखर आजाद को माहौर जी की कविताएँ बहुत पसंद थीं वे उन्हें बार-बार सुना करते थे। कह नहीं सकते कि माहौर जी की कान्तिकारी कविताओं से इन कान्तिवीरों ने कितनी प्रेरणा प्राप्त की। जब भगवानदास भुवावल बम काँड में पकड़े गए तो माहौर उनसे जेल में मिलने गए। भगवानदास ने कहा मामा मैंने जो कुछ किया देश के लिया किया है। माहौर जी की छाती गर्व से फूल उठी उन्होंने कहा। भगवान, मैंने देश के लिए कविताएँ लिखी और तुमने देश के लिए बम बनाए, मुझे तुम पर गर्व है, किन्तु दुःख इस बात का है कि तुमने मुझे अयोग्य समझा और अपने सुकृत्य में भागीदार नहीं बनाया।

बाद में महोर् जी आजीवन कान्तिकारियों के आश्रय-दाता रहे इसी कारण वे अंग्रेज सरकार के कोप भाजन रहे और बाद में कांग्रेसी सरकार के भी। उन्होंने अपने दोनों कान्तिकारी भानजों को अपने पास ही रखा और अन्त में अन्त उनकी सत्यु पर इन्हीं कान्तिकारी भाइयों ने उनका अन्तिम संस्कार किया।

माहौर का जीवन आभाओं में ही पला। साहित्य

और देश की सेवा में उन्होंने अपना तन-मन-धन अर्पित कर दिया और अन्तिम दिनों में वे फकीर हो गए। समाज और शासन के साथ अनवरत संघर्ष करने के पश्चात् वे बर्षों तक रोग शय्या पर पड़े रहे। पन्ना नरेश का स्वर्णपदक डुकराने वाला कवि एक-एक पैसे के लिए मुहताश हो गया किन्तु उन्होंने किसी के सम्मुख हाथ नहीं फैलाया। अन्त जब भाँसी के नागरिकों ने ने महौर जी की हीरकजयन्ती मनाने का निश्चय किया तब समय भीत चुका था। जिम, दिन बाबू घुन्दावन-लाल वर्मा, माहौर जी को एक हजार रुपये की थैली भेंट करने गए उसके तीसरे दिन ही माहौर जी चल बसे और वह थैली उसी तरह बन्द पड़ी रही जिस तरह फिरदौसी को भेंट की गई, असर्कियों की थैली बन्द पड़ी रही थी।

महान जैनकवि : माहौर जी ने जब कविताएँ लिखना प्रारम्भ किया था उस समय कवि सम्मेलन केवल राजदरबारों की शोभा थे। माहौर जी ने बुन्देलखण्ड में जमता के बीच कवि सम्मेलन करने की परम्परा कायम की उन्होंने “माहौर मित्र मण्डल” की स्थापना की जिनके द्वारा बुन्देलखण्ड को “सेवकैन्द्र त्रिपाठी” तथा “रामचना हयारण” “मित्र” जैसे कवि दिए।

माहौर जी राज दरबारों में होनेवाले कवि सम्मेलन में खूब बुलाए जाते थे। उनके चुटीले व्यंग्य सुन कर दरबारी कवि तिलमिला उठते थे। उदयपुर, पन्ना, टिकमगढ़ आदि दरबारों में उन्होंने काफ़ी यश प्राप्त किया। खनियाधाना दरबार से माहौर जी को कवीन्द्र की उपाधि प्राप्त हुई थी।

माहौर जी की प्रकाशित पुस्तकों में “वीर वधू” दीन का दावा वीर वाला, गोरी बीबी, अशुभाल, द्रोपदी डुकूल, व्यंग्य विनोद, सूरसुधा, शान्ति सागर, शृंगार वागीश, छत्रमाल, गुणावली आदि बहुत प्रसिद्ध हैं। वे वृज, बुन्देली एवं खड़ी बोली के रस सिद्ध कवि थे। वीर वधू में उन्होंने नख-शिक्ष वर्णन के माध्यम से वीर-रस को सजीव कर दिया है।

वीर वधू के कुछ छन्द देखिए :

कक्षाई वर्णन :

“मंजु मलाई की मोहक
कोमल कर-कंज-कलाई

रवि-हिमकर वारा सोरा सौ
भिजे बचाई पाई
जग में मंजु कलाई को फि
फहरे सुजस-पता को
बेरिन बिधन बिनासन को
जनु रदन लाल गिरजा को”

लुकाट वर्णन :

“हेम पाट उजल ललाट पे
रोरी कौ टीको है
बेरिन दियो बेधि गोली को,
करत काम नीको है
उच्च भाल पे तिलक लाल,
लाली बिसाल में ऐंठो
घनुसासन पे मनहुं वीर रस,
वीर घाम मे बैठी”

माहौर जी ने व्यंग्य विनोद वातनी में समाज के लम्पटों पर बड़े ही करारे व्यंग्य किए हैं। उनकी एक व्यंग्यात्मक कुराबली देखिए :

“वर्तन सारे अवा के गए सप्रेम पकाए
उपयोगी जिय जानके खोलो अवा सुहाय
खोलो अवा-सुहाय जान जनता-हितकारी
ऐहैं सब के काम, नाम-पेहें जग-भारी
“माहुर” कवि का कहैं, भयो ऐसो परिवर्तन
चार पांच को छोड़, कहे सब फूटे वर्तन”

गंगा जी के पंढाओं की ओट में माहौर जी ने समाज के परदाओं पर बड़ी तीखी चोट की है :

“गंगा तेरे घाट के परदा रहे मुठाय
मनमानी निज दक्खिना मोंगे मुँह फैलाए
मोंगे मुँह फैलाए, घाट पे जो कोई आवै
बिना दिए अरनान ने कहूँ करन न पावै
“माहुर” कवि कहे अकृति के चरित घनेरे
करैं बोट पै चोट, ओट में गंगा तोरे”

माहौर जी ब्रजभाषा के भक्त थे, सुकवियों के संगी

ये, उनका भाषा पर पूर्ण अधिकार था, उन्होंने बुन्देल- किसी का आश्रय नहीं लिया। जिस दिन उनकी मृत्यु
खराब भूमि में काव्य रस की गंगा बहाई और अन्त तक हुई उस दिन वीर प्रसूता बुन्देलभूमि और आकाश दोनों
गिराश्रितों तथा नवीन लेखकों को आश्रय दिया किन्तु फूट-फूट कर रोए थे।

२१८ डर मोडेला,
झाँसी
व० प्र०,

— हरिनारायण 'विद्रोही'

मध्य रात्रि के आगमन के साथ साथ छायाएँ अपने भयानक पिंजरा मात्र
पंख फड़फड़ाते हुए मेरे चारों ओर कूद पड़ीं। मैंने अपने सामने एक विकराल दैत्य
को खड़े देखा जो मुझे अपनी सम्मोहक भयानकता से लुभावना संग रहा था।
कड़कती आवाज में उसने कहा, तुम्हारा भय दूना है। तुम्हें मुझसे भय होने का
भय है। तुम इसे छिपा नहीं सकते क्योंकि मकड़ी के जाले से भी तुम अधिक
दुर्बल हो। तुम्हारा लौकिक नाम क्या है ?

मैं एक बड़े पत्थर से टिक कर खड़ा हुआ और इस धक्के को सँभलते
हुए दुर्बल कांपती आवाज में मैंने जवाब दिया, 'मेरा नाम है अब्दुल्ला, जिसका
मतलब है ईश्वर का दास'। कुछ क्षणों के लिए वह अपनी डरावनी चुप्पी लेकर
शान्त रहा। मैं उसके साक्षात् से परिचित होने लगा परन्तु फिर उसके अकस्मात्
विचारों और शब्दों से, उसके, अद्भुत विश्वास और दर्शन से कांप गया।

वह फड़कते हुए बोला, 'ईश्वर के दास कई हैं और ईश्वर को इन दासों के
कारण अनेक कष्ट हैं। तुम्हारे बाप ने तुम्हारा नाम 'दैत्यपति' क्यों नहीं रखा
नाविक दुनिया के अनन्त संकटों में एक और संकट बढ़ गया। तुम भय के कारण
अपने पूर्वजों की दी हुई उपहारों की पूँजी चिपकाये बैठे हो, तुम्हारा दुःख पैतृक
धन के कारण है और तुम हमेशा मृत्यु के दास बने रहोगे जब तक तुम मृत
व्यक्तियों में एक नहीं हो जाते।

चन्द्रगुप्त नाटक की परम्परा

भारतीय इतिहासकारों में चाणक्य और चन्द्रगुप्त : सूर्य और शशि के समान सर्वदा प्रकाशित रहेंगे। वह प्रथम व्यक्ति चाणक्य ही है जिसने छोटे-छोटे राज्यों में विभूतिलालित भारत को एक सुदृढ़ सूत्र में पिरोया और समृद्ध केन्द्र शासित राज्याधार पर खड़ा किया। आज तक आचार्य चाणक्य का अर्थ शास्त्र एक महत्वापूर्ण आर्थिक और राजनैतिक ग्रन्थ स्वीकार किया जाता है। चाणक्य ने चन्द्रगुप्त को विशाल बट वृक्ष बनाया और उसकी सबल छाया में भार को सुख-पूर्वक बैठा दिया। चन्द्र गुप्त स्वयं अदम्य माहसी, महावीर और बुद्धिमान युवक था। साहित्य में सबसे पहले महाकवि विशाख ने अपने नाटक में चाणक्य और चन्द्रगुप्त को गौख पूर्ण ऊँचा आसन दिया। संस्कृत साहित्य में इस नाटक को बहुत मान मिला है। इस नाटक का निर्माण कब हुआ, इस पर बड़ा मतभेद चलता रहा है क्योंकि महाकवि विशाख का समय आठवीं शती से बारहवीं शती तक आँका जाता है। शास्त्रीय दृष्टि से यद्यपि मुद्राराक्षस चन्द्रगुप्त ही माना जावेगा क्योंकि अधिकारिक कथा का फल उसे मिलता है तदपि कथा की गति को अप्रपर करने वाला चाणक्य ही है, जिसके बिना मुद्राराक्षस का ऊँचा प्रसाद तुरन्त धाराशायी हो जाता है। नाटक का ध्यान भी चाणक्य के चरित्र पर विशेष टिका है और राक्षस को सामने खड़ा करके वह पूछता है—दर्शको ! पाठको ! ! बताओ क्या कौन है ? मुद्राराक्षस का चाणक्य बुद्धि के ताने बाने से बुना गया है और वह बुद्धि की मजीब प्रतिमा है। उसके पास हृदय नाम की

कोई वस्तु नहीं जो अन्य किसी को दे दे। वह अपने मार्ग के बाधको को समूल उखाड़ फेंकता है और ब्राह्मण होते हुए भी रक्तपात या हत्या करने में किसी प्रकार का संकोच नहीं करता है। उसके समने चन्द्रगुप्त का व्यक्तित्व दबा हुआ है। चन्द्र गुप्त का अपन व्यक्तित्व कुछ है ही नहीं। और तो और कृत्रिम विरोध प्रदर्शन के तुल्य बाद घबड़ा कर वह कह नठता है—

“गुरु आयसु चल सो कलह करि हू जीय डराय
किमि नर गुरु जन सों लरहिं यहै सोच जिया दाय।”

(अंक १.)

मुद्राराक्षस में चाणक्य ही सब कुछ है चन्द्रगुप्त तो अपनी रक्षा तक करने में असमर्थ है। चाणक्य महान् त्यागी भी है। वह राक्षस से डट कर लोहा लेता है और उसे परास्त कर देता है बिना चाणक्य, राक्षस को मंत्रित्व दे देता है। चन्द्रगुप्त, गुरु चाणक्य की आज्ञा मानकर राक्षस को मंत्री बना लेता है। मुद्राराक्षस को नाटक का रस नहीं करता है कि चाणक्य का आदर्शपात्र यह व्यक्ति राक्षस क्यों कट जाता है ? यह उसका नाम था या उसकी उपाधि थी या जन्मते ने यह नाम रख दिया था। महाकवि विशाख ने राक्षस का चित्र, चाणक्य से भी ऊँचा दिखाया है। तब भी वह राक्षस कहा गया है। चाणक्य आरंभ से अंत तक कुसुमपुर निवासी है। संकेतों से नाटककार यह बताता है कि राजा नन्द ने शिखा पकड़ कर चाणक्य को बाहर निकलवा दिया था। फलतः चाणक्य ने प्रतिज्ञा सुमार नवो नन्द का समूल उन्मूलन किया और चन्द्र गुप्त को मगध के सिंहासन पर बिठाया। मुद्राराक्षस की कथा अत्यंत

१. भारतेन्दु जी द्वारा अनुदित मुद्राराक्षस

२. जिन जनन ने अति सोच सो नृप भय प्रगटधिक नहि कछो

पै मम अनादर को आते हि वह सोच जिय जिनके रखो

ते लखहि आसन सो गिगयो नन्द सहित समाज को (मुद्राराक्षस अंक १.)

नव नन्दन कौ मुख सहित खेखो छन भर में (अंक १)

जिमि हम नृप अग्रमान सो महाक्रोध उर धरि, करी प्रतिज्ञा नन्द नृप नासन कौ निर धारि

सो नृप नन्दहि पुन सहै बासि करी हम पूर्ण, चन्द्र गुप्त राजा कियो करि राक्षस मद चूर्ण

अति हि क्रोध करि खोलि क सिखा प्रतिज्ञा कीन, सो सब देखत भुव करी नव नृप नन्द विहीन (अंक १.)

सुसंस्कृत और प्रवाह पूर्ण है।

मुद्राराक्षस की प्रेरणा एवं अन्य इतिहास पुराणों के आधार पर बंगला के प्रसिद्ध नाटककार श्री द्विजेंद्र लाल राय ने अपना नितान्त भौक्षिक नाटक चन्द्रगुप्त लिखा। मुद्राराक्षस में चाणक्य के अपमान के संकेतो को लेकर पहले कुछ का संपूर्ण तृतीय दृश्य निर्मित कर जाला। इस दृश्य में नन्द और नन्द का साला, वाचाल राज सभा में आए। चाणक्य की शिक्षा वैकल्य कर निकाल देते हैं। राय साहब ने मुद्राराक्षस में प्रयुक्त वृषक शब्द को शुद्ध अर्थ में प्रहण किया है। पौराणिक मान्यताओं के आधार पर चन्द्रगुप्त को मुरा-पुत्र स्वीकार किया है। राजा महापद्म की शूद्र दासी, मुरा से चन्द्रगुप्त उत्पन्न हुआ था अतः चन्द्रगुप्त मौर्य कहलाया। मुद्राराक्षस के समान राय साहब के नाटक में भी चाणक्य, गुप्तचर वभाग का अन्वेषण है। मुद्राराक्षस के अनुरूप ही यहाँ भी चाणक्य विजयोत्सव को रोक देता है। महाराज चन्द्रगुप्त इसका कारण पूछते हैं और रुठ होते हैं। इस दृश्य (४-१) का संवाद भी मुद्राराक्षस जैसा ही है। चाणक्य, चन्द्रगुप्त को शूद्र बताता है और अपमान्य होकर चला जाता है। मुद्राराक्षस से अन्तर उतना ही है कि चन्द्रगुप्त चाणक्य के परामर्श से क्रोध का प्रदर्शन मात्र नहीं करता है वरन् वह वास्तव में रुठ हो जाता है। यहाँ चन्द्रगुप्त का व्यक्तिगत उभर जाता है। मुद्राराक्षस के समान अन्त में चाणक्य, कार्यायन को मान्त्रत्व दे देता है। चन्द्रगुप्त नाटक में राक्षस ने कार्यायन नाम प्रहण किया है। मुद्राराक्षस में चाणक्य अपने मुख से कहता है कि मेने ही नन्द वंश का समूल नाश किया है किन्तु राय साहब ने इसका वर्णन एक पूरे दृश्य में किया है (३-६)

ऐसी समानताओं के होते हुए भी राय साहब का चन्द्रगुप्त मुद्राराक्षस से बहुत भिन्न है। स्वयं कथानक ही बहुत भिन्न है। 'चन्द्रगुप्त' सिकन्दर विजय से प्रारम्भ होता है, मगध सिंहासन पर चन्द्रगुप्त बैठता है और सिन्धुकुक्ष की पराजय के पश्चात् चन्द्रगुप्त एवं हेलन के विवाह के साथ तारक समाप्त हो जाता है। मुद्राराक्षस की कथा नितान्त दूसरी दिशा में प्रवृत्ति है। राय साहब ने कथा के बहाव में देश और काल की सीमा का ध्यान नहीं रखा है। नाटक हिरात से लेकर मगध तक दोड़ता है और आरम्भ से अन्त तक २०-२५

वर्ष का समय लगता है। चन्द्रगुप्त नाटक में कुछ पात्रों के नाम तो मुद्राराक्षस के ही हैं और कुछ नवीन हैं। पुराने पात्रों का चरित्र भी बदला हुआ है। चाणक्य और चन्द्रगुप्त है तो मुद्राराक्षस के परन्तु सनके जीवन और कार्य परिवर्तित हैं। मुद्राराक्षस का राक्षस यहाँ कार्यायन बन गया है। सिकन्दर, सिन्धुकुक्ष, ऐश्टी गोनम, हेलन, छाया, चन्द्र केतु, मुरा, वाचाल नवीन पात्र हैं।

सब से बड़ी भिन्नता है चाणक्य और चन्द्रगुप्त के चरित्रों की। मुद्राराक्षस में चन्द्रगुप्त, चाणक्य के हाथ का खिलौना है। राय साहब इस विचार को लेकर लिखने बैठे हैं कि मैं चन्द्रगुप्त को चाणक्य के हाथ की कठपुतली नहीं बनने दूँगा वरन् चन्द्रगुप्त को एक स्वतंत्र सत्ता देकर ऊपर उठाऊँगा। फलतः रायसाहब का चन्द्रगुप्त अपने बल पर आगे बढ़ता है, चाणक्य के सहारे नहीं। इस चन्द्रगुप्त नामक में चाणक्य चन्द्रगुप्त को नहीं बढाता। चन्द्रगुप्त ही चाणक्य को अपनी महायतार्थ बुलवाता है; क्योंकि उसने सुना है कि चाणक्य बड़ा मेधावी, नीति कुशल और दृढ़वती ब्राह्मण है और वह नन्द का घोर शत्रु है। चन्द्रगुप्त नाटक का नायक वास्तव में चन्द्रगुप्त ही है; क्योंकि नाटक उसी के सहारे अप्रमत्त होता है। आरम्भ में हमारे सामने चन्द्रगुप्त एक वीर, साहसी और कुशल युवक के रूप में आता है। चन्द्रगुप्त, नन्द का सौतेला भाई है। नन्द ने उसे निर्वासित कर दिया है। चन्द्रगुप्त बड़े कोशल और साहस से सिकन्दर की सेना में रह कर यूनानी रण कोशल और व्यूह-रचना सीखता है। सिकन्दर के सामने निर्भीकता से उत्तर देता है और समय पर वीरत्व का परिचय देकर ऐश्टीगोनस के आक्रमण से सिन्धुकुक्ष को बचाता है। उसके स्वतंत्र व्यक्तित्व के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं। चाणक्य जब नन्द-वध करने को उद्यत है तो वह नन्द को क्षमा कर देता है और एक क्षमा-पत्र चाणक्य के पास भेज देता है। चाणक्य नन्द का वध कभी भी न कर पाता यदि देवात युग के हृदय में नन्द-वध की बात न पैठ गई होती। मुरा ही नन्द-वध करवा पाती है, चाणक्य नहीं (३-६)। चाणक्य चन्द्रगुप्त को उपदेश देता है, समझाता है, परामर्श देता है, अनेक भय प्रलोभन दिखाता है किन्तु नन्द से युद्ध करने के लिए चन्द्रगुप्त

चन्द्रगुप्त नाटक की परम्परा

भारतीय इतिहासकारों में चाणक्य और चन्द्रगुप्तः सूर्य और शशि के समान सर्वदा प्रकाशित रहेंगे। वह प्रथम व्यक्ति चाणक्य ही है जिसने छोटे-छोटे राज्यों में विस्तृत भारत को एक सुदृढ़ सूत्र में पिरोया और ममृद्ध केन्द्र शासित राज्याधार पर खड़ा किया। आज तक आचार्य चाणक्य का अर्थ शास्त्र एक महत्त्वपूर्ण आर्थिक और राजनैतिक ग्रन्थ स्वीकार किया जाता है। चाणक्य ने चन्द्रगुप्त को विशाल बट बूझ बनाया और उसकी सबल छाया में भार को सुख-पूर्वक बैठे दिया। चन्द्र गुप्त स्वयं अदम्य माहरी, महावीर और बुद्धिमान युवक था। साहित्य में सबसे पहले महाकवि विशाख ने अपने नाटक में चाणक्य और चन्द्रगुप्त को गौख पूर्ण ऊँचा आसन दिया। संस्कृत साहित्य में इस नाटक को बहुत मान मिला है। इस नाटक का निर्माण कब हुआ, इस पर बड़ा मतभेद चलता रहा है क्योंकि महाकवि विशाख का समय आठवीं शती से बारहवीं शती तक आँका जाता है। शास्त्रीय दृष्टि से यद्यपि मुद्राराक्षस चन्द्रगुप्त ही माना जावेगा क्योंकि अधिकारिक कथा का फल उसे मिलता है तदपि कथा की गति को अप्रवर करने वाला चाणक्य ही है, जिनके बिना मुद्राराक्षस का ऊँचा प्रसाद तुरन्त धाराशाही हो जाता है। नाटक कार का ध्यान भी चाणक्य के चरित्र पर विशेष टिका है और राक्षस को सामने खड़ा करके वह पुकता है—दर्शकों! पाठकों!! बताओ क्या कौन है? मुद्राराक्षस का चाणक्य बुद्धि के ताने बाने से बुना गया है और वह बुद्धि की सजीव प्रतिमा है। उसके पास हृदय नाम की

कोई वस्तु नहीं जो अन्य किसी को दे दे। वह अपने मार्ग के बाधकों को समूल उखाड़ फेंकता है और ब्राह्मण होते हुए भी रक्षपात या हत्या करने में किसी प्रकार का संकोच नहीं करता है। उसके समने चन्द्रगुप्त का व्यक्तित्व दबा हुआ है। चन्द्र गुप्त का अपन व्यक्तित्व कुछ है ही नहीं। और तो और कृत्रिम विरोध प्रदर्शन के तुल्य बाद घबरा कर वह कह बैठता है—

“गुरु आयसु चल सो कलह करि हूँ जीय डराय
किमि नर गुरु जन सों लरहिँ यहै सोच जिया दाय।” -

(अंक ३.)

मुद्राराक्षस में चाणक्य ही सब कुछ है चन्द्रगुप्त तो अपनी रक्षा तक करने में असमर्थ है। चाणक्य महामत्यागी भी है। वह राजस से डट कर लोहा लेता है और उसे परास्त कर देता है विजयी चाणक्य, राजस को मंत्रित्व दे देता है। चन्द्रगुप्त, गुरु चाणक्य की आज्ञा मानकर राजस को मंत्री बना लेता है। मुद्राराक्षस को नाटक कार स्पष्ट नहीं करता है कि चाणक्य का आदर्शपात्र यह व्यक्ति राजस क्यों कट जाता है? यह उसका नाम था या उसकी उपाधि थी या जनता ने यह नाम रख दिया था। महाकवि विशाख ने राजस का चित्र, चाणक्य से भी ऊँचा दिखाया है। तब भी वह राजस कहा गया है। चाणक्य आरंभ से अंत तक कुपुसपुर निवासी है। संकेतों से नाटककार यह बताता है कि राजा नंद ने शिखा पकड़ कर चाणक्य को बाहर निकलवा दिया था। फलतः चाणक्य ने प्रतिज्ञा सुमार नवो नन्द का समूल उन्मूलन किया और चन्द्र गुप्त को मगध के सिंहासन पर बिठाया^२ मुद्राराक्षस की कथा अत्यंत

१. भारतेन्दु जी द्वारा अनुदित मुद्राराक्षस

२. जिन जनन ने अति सोच सों नृप भय प्रगटयिक नहिँ कस्यो

पै मम अनादर को आते हि वह सोच जिय जिनके रखो

ते लखहि आसन सों गिरायो नन्द सहित समाज को (मुद्राराक्षस अंक १.)

नव नन्दन को मुख सहित खोखो छन भर में (अंक १)

जिमि हम नृप अपमान सों महाक्रोध उर धरि, करी प्रतिज्ञा नन्द नृप नासन को नैर धारि

सो नृप नन्दहिँ पुन सहै बासि करी हम पूखै, चन्द्र गुप्त राजा कियो करि राजस मद चूखै

अति हि क्रोध करि खोखि क सिखा प्रतिज्ञा कीन, सो सब देखत मुव करी नव नृप नन्द विहीन (अंक १.)

सुसंस्कृत और प्रवाह पूर्ण है।

मुद्राराक्षस की प्रेरणा एवं अन्य इतिहास पुराणों के आधार पर बंगला के प्रसिद्ध नाटककार श्री द्विजेंद्र लाल राय ने अपना नितान्त भौक्षिक नाटक चन्द्रगुप्त लिखा। मुद्राराक्षस में चाणक्य के अपमान के संकेतो को लेकर पहले कुछ का संपूर्ण तृतीय दृश्य निर्मित कर जाला। इस दृश्य में नन्द और नन्द का साला, वाचाल राज सभा में आए। चाणक्य की शिक्षा वैकल्य कर निकाल देते हैं। राय साहब ने मुद्राराक्षस में प्रयुक्त वृषक शब्द को शूद्र अर्थ में ग्रहण किया है। पौराणिक मान्यताओं के आधार पर चन्द्रगुप्त को मुरा-पुत्र स्वीकार किया है। राजा महापद्म की शूद्र दासी, मुरा से चन्द्रगुप्त उत्पन्न हुआ था अतः चन्द्रगुप्त मौर्य कहलाया। मुद्राराक्षस के समान राय साहब के नाटक में भी चाणक्य, गुप्तचर वभाग का अन्वेषण है। मुद्राराक्षस के असुरूप ही यहाँ भी चाणक्य विजयोत्सव को रोक देता है। महाराज चन्द्रगुप्त इसका कारण पूछते हैं और रष्ट होते हैं। इस दृश्य (४-१) का संवाद भी मुद्राराक्षस जैसा ही है। चाणक्य, चन्द्रगुप्त को शूद्र बताता है और अपमान होकर चला जाता है। मुद्राराक्षस से अन्तर उतना ही है कि चन्द्रगुप्त चाणक्य के परामर्श से क्रोध का प्रदर्शन मात्र नहीं करता है वरन् वह वास्तव में रष्ट हो जाता है। यहाँ चन्द्रगुप्त का व्यक्तिगत उभर जाता है। मुद्राराक्षस के समान अन्त में चाणक्य, कार्यायन को मान्त्रत्व दे देता है। चन्द्रगुप्त नाटक में राक्षस ने कार्यायन नाम ग्रहण किया है। मुद्राराक्षस में चाणक्य अपने मुख से कहता है कि मेने ही नन्द वंश का समूल नाश किया है किन्तु राय साहब ने इसका वर्णन एक पूरे दृश्य में किया है (३-६)

ऐसी समानताओं के होते हुए भी राय साहब का चन्द्रगुप्त मुद्राराक्षस से बहुत भिन्न है। स्वयं कथानक ही बहुत भिन्न है। 'चन्द्रगुप्त' सिकन्दर विजय से प्रारम्भ होता है, मगध सिंहासन पर चन्द्रगुप्त बैठता है और सिन्धुकुस की पराजय के पश्चात् चन्द्रगुप्त एवं हेलन के विवाह के साथ तारक समाप्त हो जाता है। मुद्राराक्षस की कथा नितान्त दूसरी दिशा में प्रवाहित है। राय साहब ने कथा के बहाव में देश और काल की सीमा का ध्यान नहीं रखा है। नाटक हिरात से लेकर मगध तक दीक्षता है और आरम्भ से अन्त तक २०-२५

वर्ष का समय लगता है। चन्द्रगुप्त नाटक में कुछ पात्रों के नाम तो मुद्राराक्षस के ही हैं और कुछ नवीन हैं। पुराने पात्रों का चरित्र भी बदला हुआ है। चाणक्य और चन्द्रगुप्त है तो मुद्राराक्षस के परन्तु उनके जीवन और कार्य परिवर्तित हैं। मुद्राराक्षस का राक्षस यहाँ कार्यायन बन गया है। सिकन्दर, सिन्धुकुस, ऐश्टी गोनस, हेलन, छाया, चन्द्र केतु, मुरा, वाचाल नवीन पात्र हैं।

सब से बड़ी भिन्नता है चाणक्य और चन्द्रगुप्त के चरित्रों की। मुद्राराक्षस में चन्द्रगुप्त, चाणक्य के हाथ का खिलौना है। राय साहब इस विचार को लेकर लिखने बैठे हैं कि मैं चन्द्रगुप्त को चाणक्य के हाथ की कठपुतली नहीं बनने दूँगा वरन् चन्द्रगुप्त को एक स्वतंत्र सत्ता देकर ऊपर उठाऊँगा। फलतः रायसाहब का चन्द्रगुप्त अपने बल पर आगे बढ़ता है, चाणक्य के महारे नहीं। इस चन्द्रगुप्त नामक में चाणक्य चन्द्रगुप्त को नहीं बढ़ाता। चन्द्रगुप्त ही चाणक्य को अपनी महायत्तार्थ बुलवाता है; क्योंकि उसने सुना है कि चाणक्य बड़ा मेधावी, नीति कुशल और दृढ़व्रती ब्राह्मण है और वह नन्द का घोर शत्रु है। चन्द्रगुप्त नाटक का नायक वास्तव में चन्द्रगुप्त ही है; क्योंकि नाटक सही के सहारे अप्रमत्त होता है। आरम्भ में हमारे सामने चन्द्रगुप्त एक वीर, साहसी और कुशल युवक के रूप में आता है। चन्द्रगुप्त, नन्द का सौतेला भाई है। नन्द ने उसे निर्वासित कर दिया है। चन्द्रगुप्त बड़े कौशल और साहस से सिकन्दर की सेना में रह कर यूनानी रण कौशल और व्यूह-रचना सीखता है। सिकन्दर के सामने निर्भीकता से उत्तर देता है और समय पर वीरत्व का परिचय देकर ऐश्टीगोनस के आक्रमण से सिन्धुकुस को बचाता है। उसके स्वतंत्र व्यक्तित्व के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं। चाणक्य जब नन्द-वध करने को उद्यत है तो वह नन्द को क्षमा कर देता है और एक क्षमा-पत्र चाणक्य के पास भेज देता है। चाणक्य नन्द का वध कभी भी न कर पाता यदि देवात युग के हृदय में नन्द-वध की बात न पैठ गई होती। मुरा ही नन्द-वध करवा पाती है, चाणक्य नहीं (३-६)। चाणक्य चन्द्रगुप्त को उपदेश देता है, समझाता है, परामर्श देता है, अनेक भय प्रलोभन दिखाता है किन्तु नन्द से युद्ध करने के लिए चन्द्रगुप्त

प्रस्तुत नहीं होता है। चाणक्य हताश है। मुरा ही चन्द्रगुप्त को युद्ध क्षेत्र में भेज पाती है (२—४)। वास्तव में यदि नाटक में मुरा न होती तो चाणक्य अमफलता के गर्त में गिर कर कराहता दिखाई देता। विजयोत्सव बन्द करने वाले चाणक्य को बन्दी बनाने का चन्द्रगुप्त आदेश दे देता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि राय साहब के चन्द्रगुप्त नाटक के चाणक्य और चन्द्रगुप्त मुद्राराक्षस से नितान्त भिन्न हैं। एक और बड़ा भारी अन्तर किया है, रायबाबू ने चाणक्य के चित्रण में। मुद्राराक्षस का चाणक्य पाषाण प्रतिमा है जिसमें हृदय नहीं है, केवल बुद्धि है। वह बुद्धि के रक्तमार्ग से बना है, बुद्धि के मैदान में खेलता है, बुद्धि के सहारे बढ़ता है और सदा बुद्धि को साथ लेकर सोता-जागता है। इसी का विरोध करता हुए राय साहब अपने नाटक में चाणक्य से कहलाते हैं—“बुद्धि, बुद्धि, बुद्धि, सुनते सुनते बहरा हो गया हूँ। रह-रह, कर संसार भर में एक यही बात सुन पड़ती है कि चाणक्य की कैसे बुद्धि है!” (५—२) चन्द्रगुप्त नाटक में चाणक्य बड़ा बुद्धिमान है किन्तु साथ ही मानवी हृदय भी मिला है। उसकी स्त्री थी जिसे वह प्यार करता था, वह एक लक्ष्मी को छोड़ कर मर गई। तब उसने अपने हृदय का मारा स्नेह—जब अपनी पुत्री पर बरसा दिया। किन्तु हायर देव, उसे डाकू उठा ले गए। इस बाह्यिका के स्नेह में उसका हृदय रोता था, आहें भरता था और व्यथ होता था। एक लक्ष्मी का कण्ठस्वर अपनी लक्ष्मी जैसा सुन कर वह तड़प उठता है। जब वह जान पाता है कि यह लक्ष्मी वसी की है तो उसके हृदय और नेत्र का बाँध टूट पड़ता है, एवं उसके माथ रहने के लिए वह मन्त्रित्व पर भी लात मार देता है। मुद्राराक्षस के चाणक्य के समान वह रक्तपात कराता अवश्य है किन्तु वह बड़ा दुःखी है और पश्चाताप करता है। वह बार-बार अपने को दुःकारता है, धिक्कारता है और गाली देता है। नाटककार ने वर्ण-भेद के आधार पर नाटक की रचना की है। आरम्भ से अन्त तक भावुकता यजी-खजाई बैठी है जो दर्शक या पाठक को झकझोर देती है। रायबाबू ने राष्ट्रप्रेम से विश्व-बन्धुत्व को अधिक अग्रता दी है। इस विश्व बन्धुत्व का प्रतिनिधित्व करती है लेखन।

हरिनारायण आपटे कृत मराठी उपन्यास ‘चाणक्य

और चन्द्रगुप्त’ का स्वर देश-प्रेम से संकृत है। आपटे जी का चाणक्य देशोद्धार और देश-सुधार के लिए ही अपना प्रदेश गांधार छोड़कर मगध जाता है, जहाँ वह नन्द के द्वारा अपमान प्राप्त करता है। आपटे जी का चाणक्य देश-प्रेमी हैं। श्री कन्हैयालाल माणिक लाल मुंशी ने अपने गुजराती उपन्यास “भगवान् कौटिल्य” में चाणक्य को बहुत उदात्तता दी है। वह महान व्यक्ति है। उनके पास एक प्रेमी हृदय भी जिसे वह शक्तार की कन्या गोरी को दिए है। ये दोनों उपन्यास हैं। नाटक के क्षेत्र में प्रसाद जी ने चाणक्य चन्द्रगुप्त” को लेकर अपना नाटक “चन्द्रगुप्त” लिखा जो अत्यन्त सरस, सुन्दर और प्रौढ़ है। प्रभाप जी ने इस नाटक में अपने से पूर्व के साहित्य का भर पूर उपयोग है। नवीन शोधों का लाभ भी उठाया और अपनी कल्पना की कृवी से नए केजरंग भी जी भर कर भरे हैं। इस नाटक के आरम्भ की भूमि का स्पष्टतया बताया है कि प्रसाद जी ने नवीन शोधों का गम्भीर अध्ययन किया था। साथ ही प्रसाद जी अपने से पूर्व निर्मित मुद्राराक्षस डि. एन. राय कृत चन्द्रगुप्त नाटको से पूरी माहयता ली है।

मुद्राराक्षस का प्रमाद आरम्भ से अन्त तक देखा जा सकता है। उनके प्रधान पात्र चन्द्रगुप्त, नन्द, राक्षस वे ही नाम अपनाएँ हुए हैं जो मुद्राराक्षस में मिलते हैं। इस पात्रों के साथ ‘मुद्राराक्षस’ के अनेक प्रसंग भी इस नाटक में आ गए हैं। राक्षस को लीजिए। इस नाटक में भी चाणक्य, राक्षस की मुद्रा पाता है (३-२) और इस मुद्रा की सहायता से एक पत्र लिखवाकर नन्द के पास भेजता है। जब नन्द राक्षस को वह पत्र और मुद्रा दिखाता है तो मुद्राराक्षस नाटक के राक्षस की कोई वह सिर नीचा कर मौन हो जाता है। (३-७) एवं (३-८)। राक्षस, चाणक्य की और चन्द्रगुप्त में विरोध उपजाने का जाल रचता है। ४-२) मुद्राराक्षस के राक्षस की भोंति यहाँ भी चाणक्य से परास्त हो जाने पर राक्षस, चाणक्य की प्रशंसा करता है (३-९)। चाणक्य मन्त्री-पद राक्षस को दे देता है (४-१३)। मुद्राराक्षस में गुप्त चरों का जाल फैला है, जो वेश बदल-बदल कर अपना काम माथते हैं। यह जासूसी वातावरण प्रमाद जी के नाटक में भी कम मात्रा में नहीं है। यहाँ तो चाणक्य और चन्द्रगुप्त तक छद्म-

वेश में स्थान-स्थान पर कार्य-रत दिखलाई पड़ते हैं। प्रसाद जी के चन्द्रगुप्त में मुद्राराक्षस का क्षयणकी वेश भी विद्यमान है (२-५)। प्रसाद जी ने मुद्राराक्षस के आधार पर ही चाणक्य द्वारा विजयोंत्सव रकवाया है। (४-२)। परिणाम स्वरूप चाणक्य और चन्द्रगुप्त में विरोध खड़ा हो जाता है और चाणक्य क्रुद्ध हो कर चला जाता है। चाणक्य के चले जाने पर चन्द्रगुप्त कुछ दुर्बलता का अनुभव करता है (४-२)। यह सब मुद्राराक्षस की छाया है।

प्रसाद जी के नाटक चन्द्रगुप्त पर राय बाबू के चन्द्रगुप्त नाटक का प्रभाव, मुद्राराक्षस से भी अधिक है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रसाद जी का नाटक राय-बाबू के चन्द्रगुप्त नाटक की प्रेरणा से ही निर्मित हुआ है। प्रसाद जी के नाटक में वही कथानक है जो राय-साहब के चन्द्रगुप्त नाटक में है। प्रसाद जी पर दोषरोपण किया जाता है कि प्रसाद जी ने चन्द्रगुप्त में देश और काल की सीमा का उल्लेखन किया है। उनका नाटक समस्त उत्तरी भारत में दौड़ा फिटा है और २०—२५ वर्ष का समय लगता है आरम्भिक घटनाओं और अन्तर्की घटनाओं के मध्य में। किन्तु यह दोष राय साहब के चन्द्रगुप्त के अनुकरण करने के कारण आया है। प्रसाद जी ने राय बाबू के चन्द्रगुप्त की दीर्घ कथा को अविकल अपनी शैली पर समेटने का प्रयास किया है। साथ ही अपनी ओर से भी बहुत कुछ बीच-बीच में कहा है। फलतः कथानक अत्यन्त विस्तार पा गया है। प्रसाद जी ने कथा ही नहीं, राय बाबू के अशिक्षा पात्रों को भी अपनाया है, कुछ में थोड़ा परिवर्तन भी किया है। राय बाबू और प्रसाद जी—दोनों के चाणक्य में स्नेही हृदय विद्यमान है। अन्तर इतना है कि राय बाबू का चाणक्य अपनी पुत्री के प्रति ममतामय है तो प्रसाद जी का चाणक्य शकटार की पुत्री सुवासिनी के प्रति प्रेम के उद्गार इधर-उधर प्रकट कर देता है। राय साहब का कात्यायन प्रसाद जी में वरुण विन जाता है और दोनों नाटकों में यह पात्र पाणिनी को मुख में रखके फिरता है। राय बाबू की हेलेन ने प्रसाद जी के चन्द्रगुप्त में कर्मे स्त्रिया नाम रख लिया है। दोनों में कई समानताएँ हैं। दोनों मार काट का विरोध करती हैं, दोनों भारत के वातावरण से बहुत प्रभावित हैं, दोनों संस्कृत पढ़ती हैं, दोनों अपने

पिता सिन्धुकुस को प्यार करती हैं और 'लक्ष्मण' उससे जमा मांगती हैं। एक यूनानी प्रणयी को दुस्कारती हैं और चन्द्रगुप्त की ओर स्नेह भरी दृष्टि से देखती हैं। अन्तर यह है कि राय साहब की हेलेन विश्व बन्धुत्व का सिद्धान्त मानती है। जिनके लिए वह अपनी आशुति देने में भी नहीं हिचकती। प्रसाद जी की कर्मे स्त्रिया में भारत-प्रेमभर है और भारतीय वीर युवक चन्द्रगुप्त की प्रेमिका एवं प्रणयिनी बनकर अन्तर्जातीय विवाह सहर्ष स्वीकार करती है। राय बाबू का ऐगटी गोनस प्रसाद जी के नाटक में फिलप्स नाम धर लेता है। राय साहब नाटक के अनुरूप प्रसाद जी ने भी चन्द्रगुप्त को यूनानी शिविर में युद्ध कौशल सीखने भेजा है, ऐसे यूनानी इतिहासकारों की साक्षी के कारण हुआ है। राय बाबू के नाटक की नई प्रसाद जी के चाणक्य और चन्द्रगुप्त वेश बदल कर सिकन्दर की सेना को इतोसाह बनाते हैं। (२—४)। राय साहब के समान प्रसाद जी का चाणक्य भी अपने राजनैतिक कार्यों की निन्दा करता है और इन कुटिल कार्यों को ब्राह्मण धर्म से दूर कर बताता है (४—५ एवं ४-१३)। प्रसाद जी ने अपने चाणक्य में हरितारायण आपटे के चाणक्य में राष्ट्रीय-स्नेह भरा है और साथ ही श्री के. एम. मुंशी के चाणक्य की उत्तार और महानता भी अपने चाणक्य की दी है। मुंशी जी के उपन्यास में चाणक्य शकटार कन्या बा प्राणयी है, प्रसाद जी का चाणक्य भी।

प्रसाद जी का 'चन्द्रगुप्त' अत्यन्त प्रौढ़ नाटक है। प्रसाद जी के नाटकों में इस नाटक का अत्यन्त उंचा स्थान है और हिन्दी साहित्य का यह एक उज्ज्वल नक्षत्र है। प्रसाद जी प्रथम कवि हैं, बाद में नाटककार परिणामतः उनका चन्द्रगुप्त काव्य गुणों से ओत प्रोत है, इसका काव्य बहुत उंचा है। यह काव्य, गद्य और पद्य के दोनों क्षेत्रों में बिखरा पड़ा है। हिन्दी संसार में इसका मान अपने काव्य गुणों के कारण अधिक है, अपनी नाट्य-कला के कारण नहीं। इसके पढ़ने और सुनने में आनन्द मिलता है, भावोद्रेक होता है। प्रसाद जी ने अपने नाटकों का निर्माण विशेषतया पढ़ने के लिए ही किया था। तभी तो वे नाटकों के दो विभाजन करते हैं—अभिनेय और पठनीय। अभिनेय की दृष्टि से देखा जाए तो ध्रुवस्थामिनी को छोड़ कर उनके अन्य नाटक सहजतया अभिनेय नहीं हैं। चन्द्र-

गुप्त के सम्बन्ध में भी वही कहा जाएगा कि इसका अभिनेत्र चरित्र कठिन है। अभिनय का विचार करते समय चन्द्रगुप्त नाटक की अनेक वस्तुएँ बाधक बन कर सामने आ खड़ी होती हैं। इसका कथानक सुरक्षा के मुक्त की नाईं फैला हुआ है। इसमें ४४ दृश्य (११+१०+६+१४) हैं। यदि प्रत्येक दृश्य औसतन १० मिनट के अभिनय में ७½ घण्टे का समय लागेगा। दृश्य परिवर्तन की तैयारी भी कुछ और समय लेगी। कुछ दृश्यों की वस्तु-योजना ऐसी है कि रंग-मंच पर उनका लाना सामान्यतया संभव नहीं है, चित्र-पटों की सहायता से भले ही उनको संभाव्य बनाया जाए। 'प्रसाद' जी ने अपने नाटकों को चित्र-पट से जोड़ने का कोई संकेत नहीं दिया है, न प्रसाद जी ने ऐसी कल्पना ही की थी; क्योंकि चित्रपटों का प्रसार उनके युग में न था। अङ्क दो के दमर्ष दृश्य में भाणव दुर्ग के भीतरी भाग में अलका धनुष संधाने बैठी है। दुर्ग प्राचीर से यवन सैनिकों को एक-एक कर के धराशयी बनाती जाती है। सिकन्दर क्रोध कर आता है और वह उसको पकड़ने का प्रयास करता है। तभी सिंहदरार आ जाता है। सिकन्दर और सिंहदरार में युद्ध होता है। उसी समय मालव सैनिक और यवन सैनिक वहाँ पहुँच कर आपस में युग्य आते हैं। यह रंग-सज्जा सरल नहीं है। पात्रों की बड़ी भारी भीड़ एकत्र हो जाती है। युद्ध भी होता है। इसी प्रकार का दृश्य है, तीसरे अङ्क का तीसरा दृश्य। रावी में वेड़े तटस्थ हैं। उन पर सिकन्दर और उसके अनुचर सैनिक चढ़ते हैं। कम से कम ये १०-१२ तो होंगे ही क्योंकि नाटककार चार का नाम देकर 'इत्यादि' लिख देता है। रावी तट पर भी १०-१२ व्यक्ति खड़े हैं जो सिकन्दर को अन्तिम बिदाई देने आए हैं। नाटककार पाँच व्यक्तियों (चन्द्रगुप्त, सिंहदरार, अलका, मालविका, अमीक) का नाम देकर आगे 'इत्यादि' लिख देता है। भारतीय रणवाद्य बजाने वाले अपना कौशल दिखा रहे हैं। ये बजाने वाले भी पाँच छः होंगे ही। क्या यह दृश्य अभिनेत्र हैं? नदी युद्ध योत कैसे रंग-मंचपर आएँगे। फिर भीम-पचीस पात्रों की भीड़। यह दृश्य कथावस्तु की दृष्टि से अनावश्यक है। नाटककार बड़ी सरलता से इसे सृज्य बना सकता था। एक तीसरा उदाहरण लीजिए। अंक तीन के नव्वे दृश्य में नाटक के प्रायः सभी पात्रों की भारी-

भीड़ जग जाती है। राक्षस, सुवासिनी, नन्द, सक्करार, वररुचि, मौर्य, मौर्य पत्नी, कल्याणी, चाशक्य, पर्वतेश्वर तो खड़े ही हैं, बहुत से प्रतिहार भी शस्त्र संभांछे हैं। अनेक प्रयोजन आते हैं और प्रतिहारों से उनका युद्ध होता है। प्रजा-जन भी २०-२५ तो हिसाने ही पड़ेगे। प्रतिहारों की संख्या इससे अधिक होनी चाहिए। प्रतिहारों और प्रजाजनों में युद्ध हो ही रहा था कि चन्द्रगुप्त के सैनिक आते हैं और वे प्रतिहारों को लक्ष्य परास्त करते हैं। यह राज्य-सभा का दृश्य है। मंच पर ५०-६० व्यक्तियों की भीड़ एकत्र करना अभिनय की दृष्टि से कभी भी उचित न माना जाएगा। नाटककार ने दृश्य-परितेज करते समय इस बात की सुविधा मंच-प्रबंधकों को नहीं दी है कि वे दो दृश्यों की सज्जा के मध्य कुछ समय लें। प्रथम अंक का प्रथम दृश्य एक मठ में अभिनीय है तो उसके बाद वाला एक राजकीय उद्यान में खेला जाता है। तीसरे दृश्य में एक टूटी फ़ोपड़ी है। प्रथम अंक के तीसरे दृश्य में युद्ध-क्षेत्र बनाता है। तो चौथे में उद्यान और पाँचवें में बन्दी-गृह, इस अंक के आठवें दृश्य में नन्ही का तट दिखाया जाता है तो नव्वे में युद्ध शिवर और दसवें में दुर्ग का भीतरी भाग। इसमें स्पष्ट है 'प्रसाद जी, चन्द्रगुप्त की स्वना शिखित व्यक्तियों के पठनार्थ ही कर रहे थे।

अभिनय न होने से क्या चन्द्रगुप्त को नाटक कहना अनुचित है? नाटक तो यह है ही। मग्न भाषा के पद्यात्मक नाटक भी नाटक कहलाते हैं। फिर यह तो नाटक कहा ही जाएगा। किन्तु वास्तविक अर्थों में नाटक वही है जो अभिनय हो। आत जो हिन्दी में अनभिनेत्र नाटकों का समूह खड़ा है और हिन्दी के पास अपना रंगमंच नहीं है, इसका कारण प्रसाद जी का यही दृष्टिकोण है कि अभिनय से रहित नाटक भी नाटक हैं। भागतेन्दु जी ने अभिनेत्र नाटक देने का प्रयास किया था। वे रंगमंच के वीज भी डाल रहे थे। उनकी असामयिक मृत्यु ने हिन्दी नाटक क्षेत्र पर बड़ा आघात किया। प्रसाद जी ने आकर रंगमंच से दूर रहने वाले नाटकों को भी नाटक मान कर भागतेन्दु जी के प्रयास को रोक दिया। प्रसाद जी के हाथों में नाटक केवल साहित्य की होमा बड़ानेवाला हो गया और उसका रंगमंच से सम्बन्ध छूट गया। दूसरी ओर पारसी

शैली के नाटक अपना जादू जनता पर डालते रहे और दर्शक उन पर टूट रहे थे। वैसे भारतेन्दु जी ने भी एक भूल कर ही भी जिससे हिन्दी का रंगमंच न बन सका। भारतेन्दु जी ने पारसी और, इन्द्र सभा नाटकों को भ्रष्ट बताया और साहित्यिक नाटकों की अलग श्रेणी खड़ी की। उन्होंने इन धूप से खेले जाने वाले नाटकों से काव्य मिश्रित साहित्यिक नाटकों को उत्तम बनाया। यही से दो धाराएँ बन जाती हैं—एक उन नाटकों की और दूसरी साहित्यिक नाटकों की एक ही समय में दो महापुरुष जन्मे जिनके नाम हैं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और किलोस्कर। दोनों को पारसी शैली में शकुन्तला नाटक देख कर अत्यन्त दुःख हुआ। दोनों ने संकल्प लिया कि इस दश में सुधार करेंगे। भारतेन्दु जी ने उसका विरोध किया और साहित्यिक नाटकों को अलग से सिंहासन पर बैठाया। दूसरी ओर किलोस्कर ने फ़ारसी शैली और साहित्यिकता का समन्वय कर अपने नाटक लिखे। इनमें फ़ारसी शैली को भी ग्रहण किया और उनमें साहित्यिकता भी भरी। फल हुआ मराठी रंगमंच उन्नत होता गया। भारतेन्दु जी का प्रयास उनके साथ विदा हो गया। उसको धक्का दिया प्रसाद जी ने और नाटक को एकान्त तपस्वी बना कर अव्य प्रसाद में बन्द कर दिया। यदि प्रसाद जी ने रंगमंच को बिल्कुल हेय मान कर दिशा को बदलाना दिया होता तो हिन्दी नाटक बड़ा समृद्ध बन जाता।

अमिनय का ध्यान तो प्रसाद जी ने नहीं रखा किन्तु नाटक को साहित्यिक बनाने में कोई कसर नहीं रखी। उनके पदों में वैसा ही आनन्द आता है, रस मिलता है और साहित्यिक सौन्दर्य की गुत्थियाँ सुलझाने में वैसा ही प्रयास करना पड़ता है, जैसा कि काव्य के अनुशीलन में। प्रसाद जी के नाटक दृश्य-काव्य के अमर प्रहरी बन कर हमारी काव्यात्मक वृत्ति को सन्तुष्ट करते हैं। हम उनके भाषा सौन्दर्य से सुप्रभ होते हैं, उनके अलङ्कार रस से अभिभूत होते हैं, उनकी काव्य कल्पनाओं को सराहते हैं और गद्य काव्य के सागर में डूब कर आनन्द प्राप्त करने में सफल होते हैं। इन नाटकों पर हमें गर्व है इन नाटकों में भी चन्द्रगुप्त का स्थान बहुत ऊँचा है। इसकी विशेषताएँ हैं : (१) चन्द्रगुप्त की भाषा संस्कृत गर्भित होते हुए भी अत्यंत सरस और ललित है। प्रसाद के नाटकों का गौरव उनकी

काव्यात्म भाषा से ही तो है। चन्द्रगुप्त की भाषा आदर्श है। यदि कहीं प्रसाद जी ने सुहावनों को अछूत न माना होता तो प्रसाद जी सोने में सुगन्ध भर गए होते। सरसता के साथ चन्द्रगुप्त की भाषा में अत्यंत सुषमता और प्रौढ़ता है। अज्ञातशत्रु की तरह न इसमें क्लृप्ता है और न स्कन्दगुप्त की दुर्दृढ़ दार्शनिकता। (२) चन्द्रगुप्त नाटक का सबसे प्रधान गुण है इसकी राष्ट्रीयता। आरम्भ से अन्त तक यह स्वर मुखरित है और पढ़ने वाले पर अमिट प्रभाव डालता है। राष्ट्रीय गीतों और संवादों के पीछे प्रसाद जी का हृदय बोलता है। भारतीय पात्र ही नहीं विदेशी कर्मचियाँ तक, भारतीयता से ओत-प्रोत है। राष्ट्रीयता के कारण ही चन्द्रगुप्त को अत्यंत अधिक मान प्राप्त हुआ है। (३) चन्द्रगुप्त नाटक के गीत भी अत्यंत रमणीय और काव्यरमक हैं। वही तो रथाई स्थान पाए हैं। गीतात्मकता की लहरी गद्य में भी व्याप्त है और गद्यात्मक कथन गद्य-काव्य बने हैं। (४) पश्चिमी नाट्य सिद्धान्तानुसार वही नाटक उत्तम स्वीकार किया जाता है। जो संघर्ष संपन्न हो। प्रसाद जी के सभी नाटकों में संघर्ष भरा है। चन्द्रगुप्त के अतिरिक्त अन्य नाटकों में भारतीय जातियों या प्रदेशों का संघर्ष चित्रित है किन्तु चन्द्रगुप्त में भारतीयों और विदेशियों का युद्ध होता है और उसमें भारतीय विजयी बनते हैं। (५) प्रसाद जी के नाटकों में नारियाँ दो वर्ग की हैं—एक वर्ग में वे स्त्रियाँ हैं जो उदात्त और महान हैं। और दूसरे वर्ग में आती हैं स्वाधेय तथा शक्ति संपन्न नारियाँ। प्रथम वर्ग के उदाहरण हैं—यहाँ राज्यश्री, पद्मावती, वासवी, मल्लिका, देवसभा, देवकी, कमल। दूसरे वर्ग का प्रतिनिधित्व करती हैं—सुरमा, शक्तिमती, कज्जना, श्यामा, अनन्त देवी, विजया। चन्द्रगुप्त में आकर प्रसाद जी की नारी-भावना ने मोड़ लिया है और वे नारियों में उदात्तात् ही देखने लगे हैं। फलतः चन्द्रगुप्त की सभी नारियाँ उदात्त हैं, यहाँ तक कि सुवासिनी भी। आगे भुवस्वामिनी में 'प्रसाद' जी ने नारी के प्रति यही दृष्टिकोण अपनाया है। कुछ विचार एवं भाव इतने मार्मिक एवं अनुभव हैं पूर्ण वे तुरन्त प्रभाव डालते हैं जैसे—

आत्म सम्मान के लिए मर मिटना ही जीवन है।"

“अतीत सुखों के लिए सोच क्यों, अनागत भविष्य के लिए मय क्यों और वर्तमान को मैं अपने अनुकूल बना ही लूँगा।”

“बौद्ध धर्म की शिक्षा; मानव व्यवहार के लिए पूर्ण नहीं हो सकती, भले ही वह संघ विहार में रहने वालों के लिए उपयुक्त हों।”

“राजनीति महलो मे नहीं रहती है।”

“ब्राह्मण के कोमल हृदय में कर्तव्य के लिए प्रलय की आँधी चला देने की भी कठोरता है।”

“ब्राह्मणत्व एक सार्वभौम शाश्वत बुद्धि वैभव है। वह अपनी रक्षा के लिए, पुष्टि के लिए और सेवा के लिए वयों का संघटन कर लेगा।”

“राजसत्ता सुव्यवस्था से बड़े तो बढ़ सकती है केवल विजयों से नहीं।”

अवसर पर एक क्षण का विलम्ब असफलता का प्रतीक हो जाता है।”

प्रत्येक नवीन परिचय में उत्सुकता थी और उसके लिए मन में सर्वस्व लुटा देने की सज्जता थी।”

“समझदारी आने पर जीवन चला जाता है— जब तक माला गूँधी जाती है, तब तक फूल कुम्हला जाते हैं।”

“सफलता का एक ही क्षण होता है।”

“व्यक्तिगत स्वतन्त्रता वहीं तक की जा सकती है, जहाँ दुमरो की स्वतन्त्रता में बाधा न पड़े।”

“परिणाम में भलाई ही मेरे कामों की कसौटी है।”

“विजयों की सीमा है परन्तु अभिलाषाओं की नहीं।”

“जीवन एक प्रश्न है और मरण है उसका जटल उत्तर।”

“राज्य किसी का नहीं, सुशासन का है।”

“मनुष्य साधारण धर्मा पशु है, विचार शील होने से मनुष्य होता है और निःस्वार्थ कर्म करने से वही देवता भी हो सकता है।”

“चाणक्य यह नहीं मानता कि कुछ असंभव है।”

“मेष के समान मुक्त वधै-ला जीवन दान, सूर्य के समान अबाध आलोक विकीर्ण करना, के समान कामना बन्धनों पचाते हुए सीमा के बाहर न जाना, यही तो ब्राह्मण का आदर्श है।”

“महत्वाकांक्षा के दाव पर मनुष्यता कदैव हारी है।”

इन उक्तियों में जीवन का गहरा अनुभव, प्रौढ़ चिन्तन और काव्य सौन्दर्य भरे हैं।

‘प्रसाद’ जी के चन्द्रगुप्त के बाद हिन्दी में चन्द्रगुप्त चाणक्य को लेकर अनेक कृतियों लिखी गई है। चार उपन्यास और तीन नाटक बने। श्री रणवीर जी वीर के उपन्यास महामन्त्री चाणक्य में चाणक्य को प्रधानता दी गई है। यहाँ चाणक्य मुद्राराक्षस के समान कूटनीति कुशल है, राय साहब के चाणक्य का हृदय रक्षता है और प्रसाद जी के चाणक्य का राष्ट्र प्रेम लिए है। डॉ० सत्यशैल विजलंकार के ऐतिहासिक उपन्यास “आचार्य विष्णु गुप्त चाणक्य” का चाणक्य भी राष्ट्र भक्त है। इस उपन्यास में चाणक्य का व्यक्तिगत अपमान नहीं होता, वरन् राष्ट्र नायक की अप्रतिष्ठा होती है। इस चाणक्य के पास मुद्राराक्षस से अधिक बड़ा गुप्तचरों का जाल है। श्री रघुवीर शरण मित्र के ऐतिहासिक उपन्यास “आग और पानी” में भी चाणक्य ही नायक है। यह उपन्यास चाणक्य सम्बन्धी सभी उपन्यासों में अशक्त उपन्यास है। प्रसाद जी की सुवासिनी के साथ और मुंशी जी की गीरी दोनों का समावेश इसमें किया गया है। इन उपन्यासों में चन्द्रगुप्त को महत्व नहीं मिला है, न चन्द्रगुप्त इनमें नायक है। मिश्रद्वय के चन्द्रगुप्त नामक ऐतिहासिक उपन्यास में चन्द्रगुप्त नायक है। किन्तु यह, उपन्यास न होकर इतिहास बन गया है।

नाटक के क्षेत्र में तीन नाटक प्राप्त होते हैं, सेठ गोविन्ददास का शशिगुप्त, जनार्दनराय नागर का आचार्य चाणक्य और रामवृक्ष बेनीपुरी का “विजेता”। सेठ गोविन्ददास का नाटक ‘शशिगुप्त’ बिलकुल प्रसाद जी के नाटक चन्द्रगुप्त के अनुकरण पर ही निर्मित हुआ है। प्रधान पात्र एवं उनके कवि जेठी हैं जो प्रसाद जी के चन्द्रगुप्त के हैं। कथासूत्र भी वही है। सेठजी ने चन्द्रगुप्त का नाम शशिगुप्त कर दिया है। पर्वतेश्वर का का नाम ‘शशिगुप्त’ में भी पर्वकृत है। हाँ, सेठ जी ने प्रसाद जी की कान्हेलिया के कार्य एवं विचार तो अपनाए पर नाम अपनाया है राय साहब की हेलेन का। शेष पात्र आमीक, गन्द, राक्षस, सिकन्दर, सिन्धुकुस प्रसाद जी के ही हैं। पात्रों का चरित्र वही है जो प्रसाद के

चन्द्रगुप्त में चित्रित है। अन्तर यह है कि भाषा सरल और परन्तु प्रसाद का भाषा-प्रसाद यहाँ है। शाश्वत मगध सम्राट बनने तक शाश्वत है। बाद में चन्द्रगुप्त ऐश्वर्य कर्मो किया गया है, इसका कारण भूमिका में बताया गया है। मौर्य कहलाने का कारण सेठ जी ने दिया है कि चन्द्रगुप्त मोरुनामक पर्वत का निवासी। इस तर्क का आधार भूमिका में दिया है। चाणक्य और चन्द्रगुप्त दोनों पंजाब वासी थे, चाणक्य तक्षशिला का और चन्द्रगुप्त मिन्ध और कुमार नदियों के मध्य मोर नामक पर्वत का।

श्री जनार्दन राय नागर का नाटक 'आचार्य विष्णु गुप्त चाणक्य' भी प्रसाद जी का अनुकरण मात्र है, उसमें कोई नवीनता नहीं। पात्र भी प्रायः वे ही सब हैं और घटनाएँ भी वही हैं। सिल्यूकस की पुत्री कॉर्नेलिया "आचार्य विष्णु गुप्त चाणक्य में कॉर्नेलिया ही है किन्तु बीच-बीच में वह हेलन भी बन जाती है। यह राय साहब के चन्द्रगुप्त का प्रभाव है। आरम्भ से अन्त तक कथा सूत्र और समकाल प्रवाह वही है जो प्रसाद जी का है। मित्रता बहुत ही अल्प है। प्रसाद जी में गान्धारराज का पुत्र आमीक है, यहाँ गान्धार का राजा 'आमीक' है। प्रसाद जी के चन्द्रगुप्त में गान्धार राज कन्या अलका है जिसका पाणिप्रदण पर्वतेश्वर अस्वीकृत कर देता है। यहाँ पर्वतेश्वर की पुत्री रजनी-गन्धा के पाणिप्रदण का प्रस्ताव गान्धार राज आमीक करता है और पर्वतेश्वर इस प्रस्ताव को ठुकरा देते हैं। पात्र और कथा प्रसंगों के ऐसे छोटे-मोटे और महत्व नहीं अन्तरों को छोड़कर आचार्य विष्णु गुप्त चाणक्य, प्रसाद के चन्द्रगुप्त का नवीन संस्करण ही है जो अपनी मुहत्ता को खो बैठता है। नागर साहब ने प्रसाद जी के पात्र और प्रसंग ही नहीं लिए, वाक्य भी उठाए हैं जो अपने परिवर्तित रूप में गौरव और तेजहीन हो बैठते हैं। कुछ उदाहरण :

चन्द्रगुप्त—

"अतीत सुखों के लिए सोच कर्मो अनागत भविष्य के लिए भय कर्मो और वर्तमान को मैं अपने अनुकूल बना ही लूँगा।"

आचार्य विष्णुगुप्त चाणक्य :—

"अतीत पर अपना वश नहीं, भविष्य पर है।"

चन्द्रगुप्त—

"गुरुकुल में केवल आचार्य की आज्ञा ही शिरोधार्य होती है।"

आ० वि० चा०—

"विद्यापीठों के कर्तव्य और उनकी मर्यादा उनके कुलपती निश्चित करते हैं।

चन्द्रगुप्त—

बौद्ध धर्म की शिक्षा मानव व्यवहार के लिए पूर्ण नहीं हो सकती, भले ही वह संघविहार में रहने वालों के लिए उपयुक्त हो।"

आ० वि० चा०—

"चन्द्रगुप्त तेरा स्थान संघाराम नहीं, रण-भूमि है।"

कहीं-कहीं तो अन्तर लाने का प्रयास हास्यास्पद हो गया है। अद्भुत एक के दूसरे दृश्य में तक्षशिला के ब्रह्मचारी सिंहरण के प्रणय को लेकर उसी प्रकार के विचार और भाव व्यक्त करते हैं जैसे कि आजकल के दिलफेंक युवक काजिओं और विश्वविद्यालयों में, ब्रह्मचारी यहाँ तक कह देता हैं "और घायल हम हो गए।" यह देशकाल के दोष ही नहीं, तक्षशिला जैसे विश्वविद्यालय के गौरव पर आघात है।

श्री रामशृङ्ग बेनीपुरी जी ने अपने लघु रूपक 'विजेता' में अवश्य एक नवीन दृष्टिकोण अपनाया है। इस नाटक का नायक चन्द्रगुप्त है। नाटककार ने अपने से पूर्व के सभी नाटकों और उपन्यासों के प्रति विद्रोह करके इस नाटक का निर्माण किया है। बेनीपुरी जी ने इस नाटक में चन्द्रगुप्त को चाणक्य की लोह शृंखला से संवेधा मुक्त किया है और चन्द्रगुप्त को चाणक्य से श्रेष्ठ और ऊँचा बनाया है। हाँ, ऐसा करने में महामहिम चाणक्य बुरी तरह से गिर गया है। पहले तीन दृश्यों में चाणक्य ऊँच उठा हुआ दिखाई देता है। किन्तु चौथे दृश्य में वह सहसा नीचे गिरजाता है। चन्द्रगुप्त आपरण्य अनशन की भूल हड़ताल अपना कर बैठ जाता है। वह ६० दिन निराहार रहकर प्राण त्याग करेगा। चाणक्य उसे विरत करना चाहता है किन्तु असफल होता है। तब वह चन्द्रगुप्त के पत्र को सिंहासन पर बिठाता है। नाटक के चार दृश्यों में चन्द्रगुप्त की चारों अवस्थाओं—कुमार, युवा, प्रौढ़ और वृद्ध अवस्था के-चार चित्र प्राप्त होते हैं। प्रसाद और राय साहब की कथा संक्षेप में यहाँ उपस्थित है। चाणक्य ही

बालक चन्द्रगुप्त को शिक्षा-वीक्षा देखकर मगध-सम्राट् सभी हिन्दी उपन्यासकारों एवं नाटककारों ने ग्राह्य बनाता है। यह अकेला नाटक है, जहाँ चाणक्य किया है किन्तु कोई भी 'प्रसाद' जी तक नहीं पहुँच पराजित दिखवाया गया है। अभिनेय एकाकी है। पाया है।

फलतः प्रसाद जी के चन्द्रगुप्त का प्रभाव बाद के

१९२ सुमेर खागर,
गोरखपुर

—डा० गोपीनाथ तिवारी

हाय, मैं कितना मनुष्यता से दूर हूँ

“बादू जी भूखा हूँ, अन्न नहीं पेट में
दयादान कीजिए।”

चौककर देखा मैं—

ढाँचा एक हड्डियों का

कंबल के टुकड़े पर

बैठा था सिकुड़ा सा

तन पर था वस्त्र बस मैली लंगोटी एक

भूख से पीड़ित हो ढाँचा वह माँगता था भीख,

जेब में हाथ डाला—रुपय ये नोट ये

पका असमंजस मैं कुछ भी न दिया उसे

× × ×

मंदिर में नचा मैं, अन्ध से झुककर

प्रतिमा के चरणों पर

रुपया चढ़ाया, भाव

हीन वह प्रतिमा थी।

× × ×

भूखा जो देव उसे कुछ भी न समझा मैं

रुपया चढ़ाया उस देव के चरण पर

जिसको है चाह नहीं रुपय की, पैसे की

हाय, कितना मनुष्यता से दूर हूँ

वीरपुर (गाजीपुर)

छत्तर-प्रदेश

—भगवत पाण्डेय 'सुधांशु'

दो कथाएँ

उस भोर महलों में खलबली मच गई। अपने शयन कक्ष में खोती हुई राजकुमारी रातोंरात अदरय हो गई थी।

राज-ज्योतिषी को खोज की आज्ञा हुई। अपने पत्रों में शोध कर वह महाराज के एकान्त कक्ष में उपस्थित हुआ। अपने सिर की भिन्ना माँगकर उसने निवेदन किया कि राजकुमारी पक्षी के राज्य में अपने प्रेमी, उस राज्य के प्रधान सेनापति के पुत्र के साथ है।

ज्योतिषी का कथन ठीक निकला गुप्त रीति ने एक सप्ताह के भीतर राजकुमारी को महाराज के सम्मुख ला उपस्थित किया। महलों के बाहर वह एक दूसरे भवन में रखी गई। राजकुल की निष्कलंक मर्यादा की दृष्टि में वह उचित हो चुकी थी।

महाराज ने पक्षी राजा से माँग की कि वह अपने सेनापति के पुत्र को अपराधी के रूप में उन्हें सौंप दें। किन्तु उस राजा ने यह माँग अस्वीकार कर दी।

अपराधी को दंड देना अनिवार्य था। महाराज ने पक्षी राज्य पर आक्रमण की योजना बना ली।

उसी बीच महाराज ने एक रात स्वप्न देखा कि उनकी छोटी—परमशपथी रानी एक पर पुरुष के प्रेमपाश में आवद्ध है। क्रोध के आवेश में उन्होंने तत्काल अपने खड्ग से उस पुरुष और अपनी नई रानी दोनों का वध कर दिया।

जागने पर महाराज को इस स्वप्न पर बड़ा आश्चर्य हुआ। उनकी कोई दूसरी नई रानी थी ही नहीं।

स्वप्न की चर्चा उन्होंने राजज्योतिषी से की। स्वप्न को अत्यन्त घोरता से समझते हुए ज्योतिषी ने विनय की कि जब तक इस स्वप्न का फल सम्मुख न आ जाए तब तक के लिए पक्षी राज्य पर आक्रमण स्थगित रखा जाए। उसने बताया कि यह स्वप्न एक मास के भीतर फलित हो जाना चाहिए।

महाराज ने ज्योतिषी का अनुरोध मान लिया।

कुछ ही दिन पीछे आखेट यात्रा के क्रम में महाराज को एक रात किसी वन के अंचल में एक तरुण साधु दम्पती का अतिथि होना पड़ा। उनके आश्चर्य

और मनोद्वेग की कोई सीमा न रही जब उन्होंने पहचाना कि अनन्य रूप में इस साधु की पत्नी को ही उन्होंने अपनी छोटी रानी तथा इस साधु को ही उसके प्रेमी के रूप में देखा था और इन्हीं दोनों का उस स्वप्न में वध किया था।

देखते ही उस अनन्य रूपवती साधु-पत्नी पर महाराज आसक्त हो गए। वह तरुणी भी उन पर अनायास ही मुग्ध हो गई। महाराज अभी युवा ही थे।

अगले ही दिन महाराज महलों को लौट आए। उनका मन सुन्दरी के प्रेमबाण से पूर्णतया विंध गया था। महल छोड़ वह तीन दिन तक दरबार में भी नहीं आ सके।

तीसरे ही दिन वह साधु अपनी पत्नी को लिए राजकक्ष में उपस्थित हुआ। उसने कहा :

“महाराज, प्रेम न उच्छिद्य होता है, न अभिकृत, और न ही वह अनन्यता की परिधि में बाँधा जा सकता है। स्वप्न की माया में आपने मेरा और मेरी पत्नी का वध किया था, किन्तु जायति के प्रकाश में ऐसा नहीं करेंगे, इसके लिए मैं आपका अभिनन्दन करता हूँ। मेरी पत्नी आप पर अनुरक्त है, उसे अंगीकार करें।

महाराज की चेतना के साथ साथ उनके राजकुल की मर्यादा की सीमाएँ भी उस दिन से बहुत विस्तृत हो गईं। दोनों राज्यो के सहस्रों सैनिकों के राक्षसपात की योजना समाप्त हो गई और राजकुमारी का भी उसके प्रेमी के साथ विवाह कर दिया गया।

(२)

एक दिन राजकुमारी अपनी कुछ सहेलियों और परिवारिकाओं के साथ पर्यटन को निकली। उसके रात्रिकालीन पक्का कमी शीप-मालाओं से जगमगाते मध्यम भवनों वाले नगरों के क्षोर में पड़ते, कमी छोटे प्रांगणों के पथिकालयों में, तो, कमी-कमी निर्जन, घने वन के किसी विशाल वट के नीचे भी पड़ जाते थे।

एक रात उनका पक्का ऐसे ही एक वन में पड़ा। अगले दिन उठ कर जब उस दल ने आगे प्रस्थान की तैयारी की, तो पाया कि राजकुमारी का बहुमूल्य मोतियों

का हार उसके गले से ही बिछुरकर कहीं खो गया था।

हार की खोज प्रारम्भ हुई। निःसन्देह उस वन में आसपास की भूमि पर ही कहीं गिर कर वह खोया ही था। जब तक हार न मिले, आगे की यात्रा स्थगित थी।

दुःखी चढ़ आई, किन्तु हार न मिला। राजकुमारी एक ओर गहरी चिन्ता में मग्न-सी बैठी थी। अन्त में उसने सभी सहेलियों पारिवारिकाओं को बुलाकर एकत्र किया और कहा, 'तुम सब बड़ी मूर्ख हो, जो उस निर्भीक मोतियों के हार की खोज में इतनी अन्धी हो रही हो। उन मोतियों से अधिक मूल्यवान् क्या कोई दूसरी वस्तु तुम्हें यहाँ नहीं दिखाई दी? तुम्हारी आँखें बन्द नहीं हैं तो तुम सभी ने उसे देखा है। जाओ, उस निष्प्राण हार की चिन्ता छोड़ कर संभार के सर्वाधिक मूल्यवान् उस रत्न को ही तुम मेरे लिए खोज लाओ।'।

राजकुमारी के इस आदेश को सुन कर सभी अनुचारिकाएँ हत-बुद्ध रह गईं। वास्तव में उन मोतियों से अधिक मूल्यवान् कोई रत्न उन्होंने उस वन में नहीं देखा था। राजकुमारी का वह हार ही संभार के सर्वाधिक मूल्यवान् मोतियों का माना जाता था।

राजकुमारी ने जब की बार मुसकराते हुए अपने स्वर में माधुर्य का भग्न-पुट देकर कहा, मेरे और तुम सबके लिए मोतियों और रत्नों से बड़ का भी कोई वस्तु है। मैंने तुमसे अभी तक छुल कर चर्चा नहीं की, किन्तु अपने लिए उसी की खोज में मैं तुम्हें साथ लेकर निकली हूँ। पार्थिव आभूषणों अलंकारों की प्राप्ति और उन्हीं के लिए पारस्परिक स्पर्धा में तुम लोग इतनी अन्धानुकरण-शील हो गई हो कि उनसे अधिक मूल्यवान् वस्तु को आँखों से देखने पर भी उसकी ओर तुम्हारा ध्यान नहीं जाता। जिस वस्तु की मुझे आन्तरिक खोज थी, वह

आज मेरी आँखों के सामने आ कर मेरे हृदय में स्थापित हो चुकी है, यद्यपि उसका वास्तव रूप इस वन के वृक्षों की ओट कहीं ओझल हो गया है। मेरे प्रति अपने स्नेह और सौहार्द के नाते क्या तुम अविलम्ब उसे खोज नहीं निकालोगी? उस खोज के साथ ही सम्भव है वह हार भी तुम्हें वहीं मिल जाए।"

राज बालाओं को अब राजकुमारी का संकेत और अभिप्राय समझते देर न लगी। उन सभी ने एक तरुण लकड़हारे को वन में लकड़ी काटते और फिर उसे बटोर कर एक ओर जाते देखा था। उन्हें ध्यान आया की निःसंदेह वह संभार का सर्वाधिक सुन्दर युवक था।

सूर्यास्त से पहले ही उन्होंने उस युवक को खोज लिया। उसी वनके अन्द में वह एक कुटिया बनाकर अपने बुद्ध माता पिता के साथ रहता था। राजकुमारी को अपनी सबसे बड़ी खोज का फल मिल गया। राजकुमारी का मुक्त हार भी लकड़ियों के गट्टों में, एक लकड़ी में लिपटा हुआ मिला। हार के मोती उसने अपनी सांगिनियों को बाँट दिये।

इस राजकुमारी और इसके खोजे हुए प्रियजन की उपर्युक्त कथा आपके लिये नहीं हो सकती है, किन्तु उनके नाम आपके सुपुर्व-परिचित हैं। दुनिया जानती है कि राजकुमारी की यह खोज इतनी आत्मीय अतः समर्थ थी कि कालान्तर में मृत्यु के देवता यमराज के हाथों से भी वह उसे मुक्त करा लाई थी। और, जैसा राजकुमारी ने अपनी अनुचारिकाओं से कहा था, क्या आज भी हम सबके सम्बन्ध में यह सत्य नहीं कि, हम अपनी खोई हुई कुछ-एक निर्जीव वस्तुओं की खोज में स्वयं इतने खो गये हैं कि आँखों-सीली अधिक मूल्यवान् एवं आराध्यवस्तु की ओर हमारा ध्यान नहीं जाता ?

केलास

आगरा

—रावी

चित्रोद्घ अपेक्षित है

प्रायः कुछ थोड़े से ही लोग, जो अपने कुसंस्कारों को त्यागकर उस अस्ती चीज पर आ जाते हैं जिस की महत्ता और उत्तमता प्रचलित रुढ़ियों से पूरे तौर पर प्रकट नहीं हो पाती, नीति शास्त्रों के विधानों को बदलवा देते हैं।

—जी अरविन्द

अवधी भोजपुरी और राजस्थानी : ग्राम-गीत

अंग्रेजी के फोक (folk) शब्द का हिन्दी में “लोक एवम् ग्राम” यह अनुवाद किया गया। अंग्रेजी में “फोक” का अर्थ है लोग, राष्ट्र, जाति, सर्वसाधारण अथवा वर्ग विशेष। इसी शब्द से फोक फिटेरेच, फोक-लोर, फोकटेल्म और फोकमांग आदि शब्द बने हैं। हिन्दी में इनके अनुरूप शब्द लोक-माहिय, लोक-वार्ता, लोक-कथा तथा लोक-गीत आदि गठे गए।

किन्तु कुछ विद्वानों ने लोक-गीतों को ग्राम-गीत की संज्ञा से अभिहित किया। आचार्य पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने ग्राम-गीत शब्द का ही प्रयोग किया है। पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने अपनी कविता कौमुदी (तीसरा भाग) में ग्राम-गीत शब्द के प्रति विशेष मोह दिखाया है। आपने “जनपद” त्रैमासिक अंक १ पृष्ठ ११ में लिखा है : “मैंने गीतों का नामकरण ग्राम-गीत शब्द से किया है, क्योंकि गीत तो ग्राम की संपत्ति हैं, शहरों में तो वे गए हैं, जन्मे नहीं; फिर ग्रामों का यह गौरव उनसे क्यों छीना जाय? ग्राम-गीत तो शहरों में भी हर संस्कार में, जातीय त्योहारों और सार्वजनिक उत्सवों में, गाए जाते हैं। इसमें मे उचित समझता हूँ कि गाँव की वह यादगा “ग्राम-गीत” शब्द द्वारा स्थायी हो जाय।

आगे वे और जोर देकर कहते हैं : “अतएव मे फिर भी यह उचित समझता हूँ कि लोक-गीत की अपेक्षा ग्राम-गीत शब्द ज्यादा उपयुक्त और न्याययुक्त है।”

वस्तुतः “लोक” और “ग्राम” का यह विवाद इसलिये पैदा हो जाता है कि इसी तक उनके अर्थ रुढ़ नहीं हो पाए हैं। लोक शब्द का अर्थ है गाँवों और शहरों में फैली तमाम जनता। इस व्यापक अर्थ को लेने पर हमारी समस्या का समाधान हो जाता है। लोक-गीत की परिधि विस्तृत और अधिक उदार है। वह अपने में ग्राम और नगर दोनों को समेटकर चलती है। लोक-गीतों के अन्तर्गत ग्राम-गीत आ जाते हैं। किन्तु लोक-गीत ग्राम-गीत के अंदर नहीं आते। लोक-गीतों में लोक अर्थात् सामान्य जन की भावनाओं की सरस, सरम और सुन्दर अभिव्यक्ति होती है जिसकी अपेक्षा संकुचित सीमा के ग्राम मात्र से नहीं की

जा सकती है। अस्तु।

अब आइए अपने विषय ग्राम-गीत पर। डॉ० इजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन है कि ग्राम-गीत आर्येतर मन्थता के वेद हैं। पाण्डित रामनरेश जी त्रिपाठी की गाँवों के प्रति विशेष प्रेमभावना का दर्शन उनके इस कथन में ही हो जाता है—“मेरी राय में ग्राम-गीत किसी पुरुष या स्त्री विशेष की रचना नहीं है, बल्कि स्वयं प्रकृति का गान है।” और द्विवेदी जी की ही भाँति कह उठते हैं कि “वेदों की तरह ग्राम-गीत भी अपौरुषय हैं।”

ग्राम-गीत सरलता, सरसता और माधुर्य से सरा-बोर वह संगीत है जो मानव के हृदय से आकस्मात् फूट पड़ता है। सरल, सीधी और अकुत्रिम अभिव्यक्ति जिसकी खास विशेषता है। भले ही उसमें भाषा, अलंकार एवं शैली का सौंदर्य न मिले। लेकिन भाव का सौंदर्य इतने मनोहर रूप में अन्यत्र दुर्लभ ही है।

अवधी ग्राम-गीत : अवध ग्राम-गीतों का अर्थ है। पग-पग पर गीत मिलते हैं। यहाँ चमार, धोबी, अहीर की अपनी-अपनी रागें हैं। कहरवा और अहीर के बिरहे तो बहुत प्रसिद्ध हैं। इनमें से अहीर को मुख्य स्थान देना होगा। ये बहुत बाल्मी-बाज होते हैं। एक कहावत द्वारा अहीरों की उजड़ता के सम्बन्ध में आप जान सकते हैं—

“अन्न न मिले तो सतुवा खाय,
मनई न मिले तो अहीर से बतुवाय”

कहरवा कहाँ का प्रिय गान है। जब वे गाँजा पीकर खरखड़िया, डोली, पालकी या पीनस उठाते हैं तो कितने ही मौलों तक अपने-अपने कहरवा उड़ाते चलते हैं। कहाँ के मधुर गान हृदय को बरबस अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं। एक कहरवा प्रस्तुत है। इसमें कोई स्त्री अपनी सास से कह रही है—

“तिसिया के तेलवा में परिया परायो साखू
बाहल जरा लसिया महिनवा दिनवा सावन के
देहु न साखू हमें कहवा कठोखिया

बाबा के पोखरवा मुबवा भीजें महिनवा
मुबवा भीजत मोरि बेनिया हेरानी साबू
बेनिया हेरानी मझधार, महिनवा
घास से कढ़ने के बाद स्त्री देवर से भी कहती है :
पैया त परी में लघुरा देवरवा, माथे
के बेनिया हेरि लाव, महिनवा दिनवा सावन के।”

एक औरें महाशय मारी रात नगर घूम आए।
उन्हें कोई जागता नहीं दिखा। पर ऐसी बात नहीं।
जागती है तो एक दुबली-पतली विरहिणी स्त्री। औ
के पति परदेश हैं—

“सगरी रयेनिया औरा घूम घामि आथि कि कोई नाहीं रे
जागे नागरी के लोगवा कि कोई नाहीं रे
जागे तो जागे एक पतरी तिरिवा कि जिन केरे रे
पियवा छाप हैं विदेसवा कि जिन केरे रे
आंगन बहारे सांवरि टटरा जो उघारे गागरिया लेके रे
सांवरि पनिया क जाय गागरिया लेके रे
गागरी तो भरि भरि धरिली जगति पर सुगनवा मुरहारे
बोले बिरहा के बोखिया, सुगनवा मुरहारे
एक तो मन होय सुगवा पटको देहरिया दोसरे मन रे
परदेसिया क चीन्ह, दोसरे मन रे”

बिरहा अहीरों का प्रिय गीत है। बिरहा दो प्रकार
के होते हैं। एक गोरू चराते वृक्ष गाया जाता है और
दूसरा विवाह आदि उत्सवों में नगाड़े पर। लेकिन सच
पूछिये तो अहीरों के बिरहे गोरू चराते वृक्ष ही निखरते
हैं बिरहा बिरह से भरा हुआ होता है। फैजाबाद जन-
पद का एक बिरहा लीजिए। यह एक सुन्दरतम बिरहे
का नमूना है—

“राम क बनिया सिता के फुलवारी
लखिमन देवरा बइठ रखवारी
फरि गए नेबुआ लटक गई डारी
तोरि तोरि नेबुआ पठावें ससुरारी
बोही नेबुआ क बने तरकारी”

अहीर अपने जाति की विशेषता बतलाते नहीं
चूकत। कुछ पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं :

“बने बने गइया चरावे रे कन्हइया,
धरे धरे ओरत पिरित

आनकी बिअहिया का सान मारि
आवे आखिर त जतिया अहीर”

अवध गांव और शहर दोनों में मेले लगे ही करते
हैं। स्त्रियाँ झुण्ड बनाकर गाती हुईं मेले जाती हैं। झुण्ड
अगर चमाइनों का है तो क्या कहना। पान खाने से
उनके गाने का कुछ और रंग-रंग हो जाता है। मेले के
एक गीत का रसास्वादन करें :

“धे देखो राम, हमारे मन घिंजा
सबके महलिया रामा दियना बरतु हैं
हरि लेखो हमरो अंधेर। हमारे०
सबके महलिया रामा जेवना बनतु है
हरि लेखो हमरी भूख। हमारे०
सबके महलिया राम गेंडुवा धुटतु हैं
हमरो हरि लेखो पियाम। हमारे०
सबके महलिया रामा बिरवा कुंचतु हैं
हमरो हरि लेखो अमलिया। हमारे०
सबके महलिया रामा सेजिया लगतु हैं
हमरो हरि लेखो नींद। हमारे०

भोजपुरी ग्राम-गीत : भोजपुर में भोजपुरी बोली
बोलने वालों की संख्या ढाई करोड़ के लगभग है।
वहाँ की जनता की उम बोली में सभी गीत प्रचलित हैं।
सोहर, जनेऊ, विवाह, गवना, जांत, कजली, बिरहा
आदि के गीत साहित्य में स्थान रखते हैं।

सोहर, विवाह और गवना के गीत बहुत ही सुन्दर
मिलते हैं। हम क्रमशः कुछ गीत आपके समक्ष रखेंगे।
सोहर उम गीत को कहते हैं जा पुत्र-पुत्री के
जन्म पर गाया जाता है। सोहर का मुख्य नाम ‘मंगल
गीत’ है। सोहर बारह दिनों तक गाया जाता है।
मुहल्ले की स्त्रियाँ आकर गाती हैं। बरही-संस्कार हो
जाने पर सोहर नहीं गाया जाता है।

पुत्र-पुत्री जन्म पर यह गीत भोजपुर के घर-घर
में गाया जाता है। गीत के कुछ अंश दृष्टव्य हैं :

“बाजन बाजेला बनहि बीखे

अजोधा में तपेला हो

लालना असीहि कोस हो अजोधा

अबद कानावा पारि जइहे हो

× × ×

हथिया ना देखो हथियारावां
भइसि वील डाबर हो
ललना गोऊ ना देखो गोऊपालावा
अजोधा हमारा लुटि गइले हो
× × ×
काकाना नूनद दान कइली
दुलरी कइली साधु दान हो
राम धन, धान लुटवले
उछाह सतति मइले हो”

विवाह भोजपुरी समाज में बहुत महत्व का समझा जाता है। विवाह बड़े धूम-धाम से संपन्न होता है। लोग काफी रुपया व्यय करते हैं। जिनके पास पैसे नहीं होते वे उधार लेकर खर्च करते हैं। कुछ तो दो-चार मीषा जमीन बेच डालते हैं। लड़कियों का विवाह यहाँ एक समस्या है। इसका एक मात्र कारण है कि अथाह दहेज की मांग होती है। बाप कन्या की कम उम्र ही में वर की खोज में निकल पड़ता है। उसकी परेशानियों का वर्णन नहीं किया जा सकता। दहेज की जोरदार माँग से पिता कहाँ-कहाँ नहीं भटकता। उदाहरण स्वरूप लक्ष्मी का पिता एक गीत में कहता है :

“पूरब खोजलौ बेटी पन्निम खोजलौ,
अवरु ओइसा जगरनाथ ए
चारो भुवन बेटी तोही बर खोजलौ,
कतही ना भिले सिरिराम ए”

कोई दूल्हा विवाह करने के लिए गाजे-बाजे के साथ चल रहा है। वह खुश है। मगर उसकी स्त्री रो रही है। वह माता-पिता के वियोग में अश्रुपात कर रही है। पूरा गीत पढ़िए :

“चलते कवन दुलहा बाजइ रे,
बन के चिरइया सब डुगुरखि जाइ रे
हम त कवन दुलहा बियहन जाइ रे
कातु चिरइया सब डुगुरखि जाइ रे
हम त कवन दुलहा बियहन जाइ रे
हंसि हंसि कवन दुलहा बिरवा लागइ रे
रोई रोई कवन सुहवा बिरवा ना लेई रे
ककरा दरपवे सुहवा बिरवा ना लेई रे
ककरा दरपवे सुहवा रोदना पसारै रे

बाबा के दरपवे सुहवा बिरवा ना लेई रे
आमा के दरपवे रोदना पसारै रे”

वर के साथ अनेक वधू के घर जाते हैं। और उसे विदा कर लाते हैं। किसी कन्या को विदा कराने कुछ व्यक्त गए हैं। दुल्हा भी है। कन्या पक्ष की ओर के लोगों की आँखें डबडबा आई हैं। सिमझियां सुनाई पड़ती हैं। कन्या की विदा की वेला आ गई। परदे से सुपजित पालकी पर चढ़ाता हुआ पति अपनी स्त्री से कहता है कि तुम मेरे घर चलो :

“आठहि काठ केटि डंड़िया
नेतवे लागेला ओदार
फानावले कवन राम डंड़िया
बहु चढ़ी चलु रे हामार”

इतने में स्त्री का भाई आ जाता है। वह प्रेम के मारे बहिन को घर छोड़ने से रोकता है :

“छेकेले कवन भइया
डंड़िया बहिन जाए ना देखे”

उसकी बहन वीन होकर कह उठती है :

“छोड़ छोड़ भइया डंड़ियवा
घरे जाए रे देव
सातो लडकिया के भारावा
एगो हमरो नाहीं”

राजस्थानी ग्राम-गीत : राजस्थान अपने ग्राम-गीतों के लिए पहले ही से विख्यात रहा है। वीर और श्रृंगार रस के सुन्दर गीत यहाँ देखने को मिलते हैं। सचमुच यहाँ इन दो रसों का ही प्राधान्य है। राजस्थान के ग्रामों में बहुत से गीत ऐसे भी भरे हैं कि कितना ही कठोर दिलवाला कोई क्यों न हो, बिना रोए रह नहीं सकेगा।

नागरिक जीवन से ग्राम-गीत कैसे सुन्दर बन पड़ते हैं। नागरिकों के पास तोसे की तकिया है तो गरीब ग्रामीणों के पास गुदड़ी। पर मजा गुदड़ी ही में है। यह ग्राम जीवन की सच्ची झोंकी अनमोल है :

“ऐ लौकस-तकिया धारे धारी बरोबरी मई करौ स
कोई कादी गुदड़ी म्हारे

बनवारी हो लाल कोन्या थारे सारे
गिरवारी हो लाल कोन्या थारे सारे”

राजस्थानी ग्राम-गीतों में चरखा-गीत बहुत प्रसिद्ध है एक गीत सुनिए :

“चाख रे चरखला, हाल रे चरखला”

यहाँ एक बिल्कुल स्वाभाविक छटा देखिए ।
चरखा का दिन है । मन्ही-मन्ही बुंदों की फुहार पड़
रही है । एक ग्राम वधू अपने परिवार की दिनचर्या
बताने में अपने गौरव का अनुभव कर रही है :

“फिरमिर फिरमिर मेहूको बरसे,
बादलियो घरावे ए
जेठ जी तो मेरा बूजा काटे,
परणयो हलियो भावे ए
फिरमिर फिरमिर मेहूको बरसे,
देवर मेरो करे झलसोटी,

जेणाणी रोटी रंयावे ए
फिरमिर फिरमिर मेहूको बरसे
बातलियो भतीजो मेरो खेड़ चरावे,
नगदल गायी घेरें ए
फिरमिर फिरमिर मेहूको बरसे
खला ने म्हारे गलछट चूरमो,
हलूयां नें खीर लापसो ए
फिरमिर फिरमिर मेहूको बरसे”

श्री सूर्यकर गायक, परिश्रम रासनरेश त्रिपाठी,
श्री देवेन्द्र सत्यार्थी, परिश्रम कृष्णदेव उपपाध्याय इत्यादि-
इत्यादि विद्वानों ने ग्राम-गीत का संकलन करके बहुत
बड़ा उपकार किया है । उनको धन्यवाद न देना अन्याय
ही होगा । मैं चाहती हूँ कि प्रत्येक गाँव का प्रत्येक गीत
शीघ्रः प्रसिद्ध हो जाय ।

इस्माईल बालीङग

लखनऊ,

—जुमारी माबा सक्सेना

धर्म मानव को ऊँचा उठाने के लिए है और दूसरों से मिल कर काम
करना सिखाता है । संकीर्ण मनोभावना से और दूसरों के विचारों को सहन न
करने से उनकी दृष्टियों में हमारे धर्म का सम्मान नहीं होता । हम मात्र अपने
धर्म का ही नहीं, अपितु दूसरों के धर्म का भी आदर करें ।

× × ×

विश्वास करना बुरा नहीं है परन्तु अन्ध-विश्वासी बन जाना बुरा है ।
विश्वास सदैव प्रेम और सद्भावना का प्रतीक होता है । इसलिए मानव को एक
दूसरे पर विश्वास करना चाहिए जो विश्वास करता है उसके साथ विश्वासघात
किसी भी दशा में नहीं करना चाहिए । यदि ऐसा हुआ तो विश्वास नाम की
कोई वस्तु संसार में नहीं रहेगी । मनुष्य का विश्वास प्राप्त बन कर रहना ही
हितकर है ।

बाघ—एक शिकारी की दृष्टि में

जिन जानवरों को आदमी के भ्रम का सबसे ज्यादा शिकार होना पड़ा है, उसमें शायद बाघ का नम्बर सबसे ऊपर आएगा। उसके सम्बन्ध में कुछ मोटी जानकारी पाने के लिए कार्बेट की पुस्तक से अधिक प्रामाणिक पुस्तक शायद परलता से नहीं मिलेगी। “मैन-ईटर्स आफ़ कुमाऊँ” नामक अपनी पुस्तक में टिप्पणी के रूप में कार्बेट ने जो कुछ लिखा है, उसी का स्वतन्त्र अनुवाद नीचे दिया जा रहा है जिससे इस बात का कुछ अनुमान आपको हो सकेगा कि मनुष्यों के लिए बाघ सामान्यतः खतरनाक प्राणी नहीं है। हाँ, किन्हीं परिस्थितियों में बाघ आदमखोर हो जाता है, पर ऐसे मामले अपवाद हैं। मनुष्य-भक्षी होना बाघ की सहज प्रकृति से कोसों दूर है। कार्बेट लिखता है :

‘‘क्योंकि इस पुस्तक (मैन-ईटर्स आफ़ कुमाऊँ) में अनेक कहानियाँ आदमखोर बाघों से सम्बन्धित हैं, अतः यह कैफ़ियत देना सम्भवतः अपेक्षित ही है कि ये प्राणी आदमखोर कैसे बन जाते हैं।

आदमखोर बाघ वह बाघ है जो ऐसी परिस्थितियों के दबाव में आकर जिन पर उसका बस नहीं चलता, एक ऐसी चीज़ खाने की आदत डालने पर विवश हो जाता है जो उसके लिए स्वाभाविक नहीं है। परिस्थितियों के दबाव का रूप दस में से नौ मामलों में घाव होता है और दसवें मामले में बुढ़ापा। वह घाव जिसके कारण एक बाघ विशेष को आदमखोर बनने पर विवश होना पड़ा है, किसी शिकारी द्वारा असावधानी से मारी गई गोली का परिणाम हो सकता है। ऐसे अवसर पर यह होता है कि शिकारी ने बाघ को घायल तो कर दिया किन्तु घायल बाघ का पीछा करके उसे समाप्त कर डालने की परवाह नहीं की। बाघ के घाव का कारण यह भी हो सकता है कि किसी साही को मारते हुए बाघ के कोई काँटा या कई काँटे चुभ जाए और वह क्रुद्ध होकर उन काँटों को निकाल फेंकने की कोशिश में उन्हें अपने शरीर में और गहरा घुसेक ले। मनुष्य बाघ का स्वाभाविक शिकार नहीं है। वृद्धावस्था

या घावों के कारण अक्षम हो जाने पर केवल अपने को जीवित रखने के लिए ही वह आदमी का मांस खाने पर विवश होता है।

बाघ अपने शिकार को मारने के लिए दो तरीके अपनाता है। या तो वह जिस जानवर को मारना चाहता है, उसके पास दबे पाँव पहुँच कर उसे सावधान होने का मौका दिए बिना ही मरपट लेता है और फिर किसी जगह छिप कर किसी जानवर के अंधे की प्रतीक्षा करता है। शिकार करते समय इन दोनों ही दशाओं में बाघ अपने आक्रमण की सफलता के लिए अपनी द्रुत गति पर और साथ ही अपने दाँतों और नखों के ऊपर निर्भर करता है। इसीलिए जब कोई बाघ एक या एक से अधिक बीड़ाजनक घावों से कष्ट पा रहा हो, अथवा उसके दाँत टूट या गिर चुके हों या खर्राब हों और नख कुँठित हो चुके हों, तब वह उन जानवरों को पकड़ सकने में असमर्थ हो जाता है जिन्हें वह जीवन भर खाता रहा है, और अतः वह आवश्यकता के दबाव से मनुष्यों को मारने लगता है। मेरा विश्वास है कि अधिकांश मामलों में बाघ किसी अचानक घटना के फलस्वरूप ही नरभक्षी बनता है। ‘अचानक घटना’ क्या है इसे स्पष्ट करने के लिए मुक्तेवर के आदमखोर मादा बाघ का दृष्टान्त दे रहा हूँ।

मुक्तेवर का नरभक्षी बाघ अपेक्षाकृत एक जवान प्राणी था। किसी साही से अपनी एक मुठमेक के फलस्वरूप उसकी एक आँख जाती रही और उसके शरीर में करीब ५० कौंटे घुस गए। ये कौंटे एक इंच से नौ इंच तक लम्बे थे और बाघ के दाहिनी भुजा और पंजे की गहियों में घुस गए थे। कई कौंटे तो मेजे की हड्डी से टकरा कर अन्दर ही मुक गए थे। इन कौंटों को अपने दाँतों से खींच कर बाहर निकालने की कोशिशों के फलस्वरूप भुजा में कई घाव बन गए थे। घावों में अंगूर पीछा के कारण वह शिकार नहीं कर सकती थी, इसलिए वह भूख से कमखोर हो गई थी। एक दिन जिस समय वह घनी घास वाले एक टुकड़े

में बैठी हुई अपने बाघ को चाट रही थी, उसी समय दुर्भाग्य से एक औरत अपने मवेशियों के लिए चारा काटने के लिए उसी घास वाले टुकड़े को चुना। पहले तो बाघ ने कोई ध्यान नहीं दिया लेकिन जब औरत घास काटते-काटते ठीक बाघ के सर पर पहुँच गई तब बाघ ने केवल एक झपट मारा। नतीजा यह हुआ कि औरत की खोपड़ी चटक गई। उसकी मृत्यु तत्काल ही हो गई थी। यह यों पता चला कि अगले दिन जब लोगों ने उसकी लाश देखी तब समय भी उसके एक हाथ में हँसिया था और दूसरी मुट्ठी से तमने वह घास पकड़ रही थी जिसे वह काटने जा रही थी।

उधर बाघ औरत को वहीं छोड़ कर लंगड़ाता हुआ एक मील दूर निकल गया जहाँ एक उखड़े हुए पेड़ के निकट उसने विश्राम के लिए शरण ली। दो दिन बाद एक आदमी इधर गिरे हुए पेड़ से इंधन के लिए सूखी लकड़ियाँ काटने के लिए आया। पेड़ के एक छिनारे बाघ लेटा हुआ था। उसने आदमी को मार डाला। उस आदमी ने लकड़ी काटने की तैयारी में अपनी कोट और कमीज उतार दी थी और बाघ ने उसे मारते समय उसकी पीठ पर नख मारे थे। यह सम्भव है कि पीठ के घावों से बहने वाले लहू की गंध ने बाघ के मन में यह इयाल पैदा किया कि यह तो कोई ऐसी चीज है जिससे भूख मिटाई जा सकती है।

जो भी हो, आदमी को छोड़ कर हटने से पहले बाघ ने उसकी पीठ का थोड़ा-सा मोंस खाया। इसके एक दिन बाद उस बाघ ने एक अन्य व्यक्ति को जान-बूझकर और अकारण मारा। इसके बाद तो वह नियमित रूप से आदमखोर बन गया और इसके पहले कि उसे मारा जा सके, वह चौबीस लोगों के प्राण ले चुका था।

ऐसा बाघ अपने कोई ताजा शिकार मारा है और खाने में व्यस्त है, आयाल बाघ, या बच्चे वाली बाघिन जरा भी खलल पड़ने पर आदमी को मार डालते हैं। लेकिन इन बाघों को किसी भी दसा में आदमखोर नहीं कहा जा सकता। व्यक्तिगत रूप से मैं तो किसी बाघ को आदमखोर करार देने से पहले उसे एक मौका दूँगा, फिर एक दूसरा मौका भी दूँगा। अगर दो से ज्यादा आदमी उसने मारे हैं तभी मैं उसे आदमखोर कहूँगा। साथ ही, मैं मृतक व्यक्ति की लाश

की शव-परीक्षा भी करूँगा—यह पता चलाने के लिए कि मारने वाला बाघ है या तेंदुआ। यह शव-परीक्षा अत्यन्त महत्व रखती है क्योंकि मैं यद्यपि कोई दृष्टान्त नहीं दूँगा तथापि मैं ऐसे अनेक मामले जानता हूँ जिनमें अनेक मौतें वन के हिल-पशुओं के मृत्यु भ्रूटमृट मढ़ी गई हैं।

एक रात जन-धारणा यह है कि सभी आदम-खोर जानवर आदमी का मोंस खाने के कारण बूढ़े और खोखरे (जिनकी खाल पर से रोएँ उब जाते हैं, जैसे खोखरा कुत्ता) होते हैं। मैं विशेषज्ञ तो नहीं हूँ, पर फिर भी मैं जोर देकर कह सकता हूँ कि आदमी का मोंस खाने वाले जानवरों की खाल खोखरी होने की बात तो दूर, कुछ ज्यादा चमकदार हो जाती है।

एक दूसरी रात धारणा यह है कि आदमखोर बाघ या तेंदुए के बच्चे भी स्वाभाविक रूप से आदम-खोर हो जाते हैं। एक हद तक यह सम्भन ठीक भी है, पर तथ्यों में यह बात मही मिद्ध नहीं होती। आदमखोर बाघ या तेंदुए के बच्चे भी आदमखोर क्यों नहीं होते, इसका एकमात्र कारण यही है कि मनुष्य उनका प्राकृतिक शिकार नहीं है।

उनका का बच्चा वही खाता है जो उसकी माँ उसके लिए उपलब्ध करती है, और मैंने तो बच्चों को आदमी मारने में अपनी माँ की सहायता करते भी देखा है। लेकिन मैं एक भी ऐसा मामला नहीं जानता जिसमें बच्चा अपनी माँ के संरक्षण से मुक्त होने के बाद अथवा अपनी माँ के मारे जाने के बाद आदमियों की हत्या करे।

हिल पशु द्वारा किसी मनुष्य को मारे जाने पर अक्सर यह संदेह व्यक्त किया जाता है कि हत्या बाघ ने की अथवा तेंदुए ने। सामान्य नियम के अनुसार—इस नियम का मैंने कोई अपवाद नहीं देखा है—जो हत्याएँ दिन में होती हैं, उन सबकी जिम्मेदारी बाघ की होती है और अन्धेरे में होने वाली हत्याओं की जिम्मेदारी तेंदुए पर। दोनों ही प्राणी लगभग अन्धेरे में शिकार की तलाश में निकलने वाले खंगली जानवर हैं, दोनों की आदतें भी लगभग समान हैं, दोनों शिकार मारने के लिए समान तरीके इस्तेमाल करते हैं और दोनों ही किसी मनुष्य को मारने के बाद उसे बठा कर बहुत दूर तक ले जाने में सक्षम हैं। अतः वह उम्मीद करना कि दोनों एक ही समय शिकार करेंगे, स्वाभाविक ही

है। और अगर दोनों अलग-अलग समय में शिकार करते हैं तो इसका कारण इन दोनों जानवरों के माहम में अन्तर है। जब कोई बाघ आदमखोर हो जाता है तब उसमें मनुष्यों के प्रति सारा भय समाप्त हो जाता है और चूंकि मनुष्य रात की अपेक्षा दिन में अधिक स्वच्छन्दतापूर्वक घूमते-फिंते हैं, इसलिए उसे दिन के समय अपना शिकार करने में आसानी होती है और रात के समय मनुष्यों की बस्तियों में घूमने की उसे कोई जरूरत नहीं है। दूसरी तरफ तेंदुआ, चाहे वह बीसियों आड़मी मार चुका है, आदमी के डर से कभी मुक्त नहीं होता और चूंकि वह दिन की रोशनी में आदमियों के आगने-पामने पकने से कतगता है, इसलिए वह रात के समय घूमते-फिंते आदमियों को शिकार बनाता है या उनके घर में रात के समय घुसता है। इन दोनों जानवरों की इन्हीं विशेषताओं के कारण (अर्थात् बाघ का आदमी से निर्भय हो जाना और तेंदुआ का आदमी से बराबर डरना) आदमखोर बाघ को आदमखोर तेंदुआ की अपेक्षा मारना कहीं अधिक सरल है।

कोई आदमखोर बाघ कितनी जल्दी-जल्दी आदमियों को मारता है, वह इन तीन बातों पर निर्भर करता है : (१) जिस क्षेत्र में उसका दौग-दौरा है उसमें उसका प्राकृतिक शिकार किस हद तक उपलब्ध है। (२) जिस अक्षमता के कारण वह आदमखोर बना है, वह किस प्रकार की है। (३) वह नर है अथवा बच्चों वाली बाधिन।

हम में से वे लोग जिन्हें किसी विषय-विशेष पर अपनी स्वयं की धारणा बनाने का अवसर नहीं प्राप्त हुआ है, स्वभावतः दूसरों की राय स्वीकार कर लेते हैं। यह तथ्य और किसी भी विषय की अपेक्षा बाधाओं के विषय में सबसे अधिक लक्षणीय है—यहाँ मेरा आशय आदमखोर बाघ से नहीं बल्कि सामान्य रूप से बाघों से है। जिस लेखक ने अपने किसी कथानक के खलनायक के दुष्ट चरित्र को उभारने के लिए सबसे पहले 'बाघ जैमा क्रूर' और 'बाघ के समान रक्त का प्यासा' जैसे शब्दों का उपयोग किया था, उसने न केवल उस जानवर के प्रति अपनी अनभिज्ञता का ही परिचय दिया जिसे वह बदनाम कर रहा था, बल्कि उसने ऐसे मुहावरों को जन्म दिया जो आज व्यापक रूप से प्रचलित हो गए हैं। ये मुहावरे ही जन-बाधाएँ के मन

में बाघ के प्रति गलत धारणा के कारण हैं। केवल थोड़े से लोग, जिन्हें बाघों के सम्बन्ध में निजी अनुभवों के आधार पर अपनी राय बनाने का अवसर मिला है, उन्हें छोड़ कर शेष भी इसी गलत धारणा से अभिभूत हैं।

जब मैं किसी पुस्तक में 'बाघ की तरह क्रूर' या 'बाघ के समान लहू का प्यासा' इस मुहावरे को देखता हूँ तो मुझे एक छोटे से बालक की याद आती है जो एक पुरानी ढंग की नाल की तरफ से भरी जाने वाली दोनाली बन्दूक लिए हुए तगाई और भासर के जंगलों में उन दिनों घूमा करता था जब उनमें आज की तुलना में दस गुनी संख्या में बाघ हुआ करते थे। और वह बन्दूक भी कैसी थी ? उसकी दाहिनी नाल पूरे ६ इंच तक फटी हुई थी और जिसका कुंदा और नाल को तंत्र के तारों से कम कर बॉध रखा गया था ताकि कहीं वे अलग न हो जाएँ। जब रात होती थी तब वह बालक जहाँ होता वहीं सो जाता। कुछ आग पाम में जला कर वह सोता था। यह आग ही उसे कुछ गर्मी पहुँचाने के साथ-साथ उसकी एक मात्र संगिनी होती थी। बीच-बीच में बाघों की आवाज से उस बालक की नींद टूट जाती थी। ये आवाजें कभी दूर से आती थीं और कभी बिल्कुल निश्चय से। बालक अपने समीप जलती हुई आग में एकाध सूखी टहनी फेंक कर निःशंक भाव से अपनी उच्छट गई नींद में फिर सो जाता—किसी प्रकार की आशंका अनुभव किए। वह अपने थोड़े से अनुभव से और अपनी ही भाँति जंगलों में अपने दिन गुजारने वालों की खबानी जो कुछ सुना था उसके आधार पर, यह बात भली भाँति जानता था कि जब तक बाघों को छेड़ा न जाय तब तक वे उसे किसी भी तरह की हानि नहीं पहुँचाएँगे। दिन में जब उसे बाघ दिखाई पकते तो वह कतरा कर निकल जाता, और अगर कतरा कर निकलना सुमकिन न होता तो वह तब तक अपने स्थान पर निश्चल खड़ा रहता जब तक बाघ उसके सामने से गुजर न जाता।

जब मुझे उस बालक की याद आती है जो एक बार खूले में चरते हुए लगभग आधे दर्जन जंगली मुर्गों के पीछे दबे पाँव जाते समय एक झाड़ी के पास पहुँचा और जब उसने उस झाड़ी के ऊपर से उस पार उठ कर देखना चाहा तो वह झाड़ी एक बार हिली, और एक बाघ झाड़ी से निकल कर विपरीत दिशा में जाने लगा।

जाते-जाते उसने घूम कर देखा, और उसके मुख पर जो भाव या वह शब्दों से भी अधिक स्पष्ट था। बाघ की मुझमुझा यह पृथ्वी हुई लगती थी, 'कहो बच्चे ! तुम यहाँ क्या कर रहे हो ? मूक प्रश्न का कोई उत्तर न पाकर बाघ मुझा और बिना एक बार भी पीछे देखे हुए धीरे चाल से आगे बढ़ गया।

और फिर मैं उन हजारों आदमियों की बात सोचता हूँ जो अंगलों में काम करते हुए या घास काटते समय या सूखी टहनियों बटोरते हुए दिनों—दिन उस स्थान के निकट से गुजरते हैं जहाँ कोई बाघ पका आराम कर रहा होता है, और जो सकुशल वापस घर पहुँचने पर यह भी नहीं जानते कि उन्हें यह तथाकथित 'क्रूर' और 'खून का प्यासा' जानवर बराबर घोर से देखता रहा या।

अब किसी भी घनी झाड़ी के पीछे से बाघ निकल पड़ा करते थे, वह बात पचास साल पुरानी पक्ष चुकी है। इन पचास सालों में से पिछले बत्तीस साल मुझे आदमखोरों का कमोवेश नियमित शिकार करते हो चुके हैं। हालाँकि ऐसे कण्ठोत्पादक दृश्य भी देखने में आए हैं जिन्हें देख कर पत्थर भी रो पड़े, फिर भी मैंने एक भी ऐसी घटना नहीं देखी है जिसमें किसी बाघ ने केवल अपनी लुधा शान्त करने अथवा अपने बच्चों की लुधा शान्त करने के अलावा जानबूझ कर क्रूरता की हो अथवा वह इस हद तक रक्त-लोभुप रहा हो कि बिना किसी उत्तेजना का कारण हुए उसने किसी मनुष्य की हाया की हो।

विधि की योजना के अनुसार एक बाघ का काम यह है कि वह प्रकृति की व्यवस्था में सन्तुलन बनाए

रखे, और यदि मजदूरी की दशा में आवश्यकतावश वह किसी मनुष्य की हत्या कर दे अथवा जब मनुष्य उसके प्राकृतिक शिकार (जिन्हें बाघ स्वाभाविक रूप से मार कर खाता है) को मनुष्य शिकार करके समाप्त प्रायः कर दे और वैसी दशा में यदि बाघ मवेशियों में से तथाकथित रूप से दो प्रतिशत मवेशी मार डाले, तो यह न्याय-संगत नहीं है कि केवल इन कार्यों के कारण एक पूरी जाति पर क्रूर और रक्त-पिपासु होने की मुहर लगा दी जाए।

शिकारी निश्चय ही रुढ़िवादी होते हैं। इसका कारण यह है कि अपनी धारणाएँ बनाने में उन्हें वर्षों लगते हैं। और चूंकि हर व्यक्ति का अपना भिन्न दृष्टिकोण होता है, इसलिए यह स्वाभाविक ही है कि उनके मत कुछ मामूली प्रश्नों पर, और कभी-कभी अहम प्रश्नों पर भी, भिन्न हों। इसीलिए मैं यह दावा नहीं करूँगा कि मैंने जो मत व्यक्त किए हैं, उन पर व्यापक रूप से महसूस होगी।

फिर भी एक बात ऐसी है जिस पर मुझे विश्वास है कि सभी शिकारी—चाहे उन्होंने किसी पेड़ की मचान से, हाथी की पीठ पर से अथवा जमीन पर से आगने सामने बाघ को देखा है—मुझसे सहमत होंगे, और वह है कि बाघ एक बहुत बड़े कलेजे वाला प्राणी है जिसका साहस असीम है और यदि उसका मूल नाश हो गया—और यदि प्रबल जनमत उसके पक्ष में तैयार नहीं होता तो उसका समूल नाश अवश्यम्भावी है—तो भारत अपने वन्य-पशुओं में से सबसे अधिक शानदार प्राणी को खो देगा।

६० नार्थ एवेन्यू,
नई दिल्ली—२

—यशोवती देवी

सब और दुःख दोनों ईश्वर प्रदत्त हैं। इसलिए दोनों को हम शांतिपूर्वक और एक ही भाव से स्वीकार करें। जो यह कहता है कि मैं दूसरों से बड़ा हूँ वह अपना पतन करता है; सबसे छोटा मानने वाला अपने को ऊँचा उठाता है।

—महात्मा गाँधी



कला-चर्चा

(१)

भारतीय काव्य और कला में वर्षा-बाहर

हर ऋतु की अपनी बहार है। वसंत की मस्ती भरी बयार और सावन की रम भीगी फुहार लोक प्रसिद्ध है। वर्षा में काली घटाओं का नील गगन में मगन हो कर विचरना; विरह व्यथित बिजली का रह-रह कर मचलना; पपीहा, मोर का घटा की छटा पर मगन होकर झूमना; पंख पंखारे हंम बकों, का बादलों में घूमना; भींगुरों का झनकारना और पुरवा का झनकारना-एक अपूर्व दृश्य वर्णस्थित करता है। वर्षा नित्य की भीति आती है और चली जाती है परन्तु हमारे दिल के 'कैमरे' पर अपना अमिट चित्र खींच जाती है। आम्रमान का काला पट रंग विरंगे चित्रों से भर जाता है। बहुपिया बादल और चंचल चपला का खेल नील पटी पर प्रारम्भ हो जाता है। नभ मंडल से भू मंडल तक एक सुहावनी समी बंध जाती है। इन दिनों बादल और बिजली के खेल से कुछ काल के लिए इन्द्रासन भी धरती पर उतर आता है।

मसि-मंडित गगन मंडल का एक सुहावना चित्र पण्डित श्रीधर पाठक द्वारा अंकित संवेधा में देखिए :

“वारि-फुहार-भरे बहारा,
सोई मोहत कुञ्ज मे मतवारे
बीजुरी-ज्योति धुआ फहरै,
घन गर्जन सन्द सोई है नगारे
रोर का घोर को और न छोर,
नरेमन की सी छटा छवि धारे
कामिन के मन को प्रिय पावम,
आयो, प्रिये नव मोहनी डारे”

यहाँ के काव्यों में रूपना और भावना के एक से एक हृदय हारी वर्षा-चित्र देखने की मिलते हैं। शैलिकालीन काव्य भूमि तो विरङ्गियों को बियोग-जल से ही भर गई थी, बेचारा सावन बरसने के लिए

तरमता ही रह रह गया। इसी लिए इस काव्य भूमि पर संयोग सुमन खिल ही नहीं पाये और सर्वत्र विरह के कोटे ही उग आए। ‘ठाकुर’ का यह शब्द चित्र देखिए :

“सुजि सहे दुकूलन बिजु छटा-सी
अटान चढ़ी घटा जोवित हैं
सुचिती ह सुने धुनि मोगन की,
रसमाती, संजोग सेंजोवति हैं
कवि ठाकुर वे पिय दूरि बसैं,
हम आसुन सों तन धोवति हैं
धनि वे धनि पावम की रतियों,
पति की छतिया लमि सोवति हैं”

वर्षा के इन बादलों ने यहाँ के कोटि नर-नारिनों को बन्दर-बन्दरियों बना कर मनमाना नाच मचा दिया है। ये घटाएँ धरती पर झुकने के साथ ही हमारा दिल चूम लेती हैं। बूंदों की लड़ियों हमारे हृदय का हार बन जाती हैं। एक नई दरी रोशनी चारों ओर छिटक जाती है और हृदय में प्यार छल छला उठता है। इस हवै और उल्लास में प्रकृति की राग रेखा प्रस्फुटित हो जाती है फिर मनुष्य का क्या पेंडना। दिन भूला के कार्य कलापो से, रातें गीत की मधुर आलापो से जाग उठती हैं। कोई महल की ऊँची अटारी में, कोई फुले वृक्ष की डाली से वर्षा की फुहार का रस लेते हैं। सावन में भूला झुकते हैं। प्रकृति की गोद में मोद भरने वाला यह भूला हमारे आमोद प्रमोद का कितना सहज सुलभ साधन है। लयात्मक रेखाओं के संयोजन सौकर्य से सुनहले सावन की मधुर कल्पना इन भूलों के द्वारा की जा सकती है।

इय अवसर पर वर्षा की रंगीली रंगीली प्रकृति पर दिल झूम उठता है। वन के ममस्त पशु पक्षी वर्षा के क्रीड़ा व्यापार में रस मगन हो उठते हैं। इस सम्बन्ध में कवि ‘वेनी’ की ये पंक्तियाँ देखिए :

“कवि 'वेनि' नई उनई है घटा,
मोरवा बन बोलत कूकन री
लहरै बिजुरी छिति-मण्डल छुवै,
लहरै मन मेन भमूकन री
पहिरौ चुनरी चुनिक डुलही,
संग लाल के भूलहु भूकन री
ऋतु पावम यो ही बितावति हो,
मरिहो, फिर बावरी हूकन री”

वर्षों के इस सुरम्य वातावरण में मानव ही नहीं प्रकृति का कण कण स्वर ताल भरे गाने और कजली की 'दीप' और तानों से मुकुरित हो उठता है। सावनी सर्मा के प्राण ये भूले कभी न भूलेंगे। इन भूलों में हमारे जीवन का उल्लास, परस्पर प्रेम का विकास और सुरभित सावन का उज्ज्वल इतिहास देखने को मिलता है।

बी० १११, अस्सी,
बाराणसी

—महेन्द्रनाथ सिंह

(२)

‘हमारी कलाओं में दीपावली का स्वरूप’

कला, समाज और धर्म के पारस्परिक सम्बन्ध पर विचार करने से ज्ञात होता है कि दीपावली यहाँ का धार्मिक सामाजिक पर्व ही नहीं बल्कि यह एक पूर्ण कलात्मक पर्व भी है। हमारे समाज में इस अवसर पर प्रत्येक वस्तु में साज-सज्जा (डेकोरेशन) का भव्य प्रदर्शन देखने को मिलता है। जैसा कि सर्व विदित है यह पर्व सारे देश में बड़े धूमधाम के साथ मनाया जाता है। दीप-मालाओं के झलावे हर घरों में लोक कलाओं की सुन्दर झलक देखने को मिल जाती है। भागत का कोई नगर या गाँव ऐसा नहीं जहाँ दीपोत्सव प्रतिवर्ष अपने नवोत्कर्ष और नव आकर्षण के साथ हर्ष और उमंग की उद्योति हमारे आँखों में न बिखेर जाता हो। कहा जाता है कि इन्हीं दिनों राम ने रावण को राण में परास्त किया था जिसकी ख़ुशी में राज्य भर में वी के दीपक जलाए गए थे। दीपावली के दिन तो हम अपनी इस परम्परा का पालन करते ही हैं साथ ही हम अपने जीवन में विशेष विशेष अवसरों पर भी दीपावली मना लिया करते हैं। ऐसे आयोजनों में हम सांस्कृतिक दृष्टिकोण को ही अधिक महत्व देते हैं और उसके धार्मिक स्वरूप की

अभिप्रेक्षिका कला और लोक कलाओं के माध्यम से करते हैं।

समय के परिवर्तन के साथ आज दीपावली का वह स्वरूप नहीं रह गया। इसमें आज हमें अनेक परिवर्तन देखने में आ रहा है। अब तो वी के जगह तेल के ही दीपक जगमग होते दिखाई देते हैं। शहरों में तो एक प्रकार से उसका भी अभाव ही देखने में आ रहा है। बिजली के सस्ते 'बल्ब' समुदाय से ही उद्योति बिखरने की प्रथा चल पड़ी है। इस अवसर पर दीप जला कर कीट पतंगों के अन्त करने का जो हमारा उद्देश्य था उसे ताक पर रख कर आज हम विज्ञान के चकाचौंध में आ गये हैं और सही रास्ते को भूल बैठे हैं। विज्ञान, धर्म और कला के समन्वय से ही मानवता का कल्याण संभव है। हमारे यहाँ धर्म का सम्बन्ध जितना विज्ञान से रहा है उतना ही कला से भी। इसी लिए विज्ञान की इन सुविधाओं के प्राप्त होते हुए भी आज हम पहले से अधिक सुखी नहीं हैं। आज समाज में धर्म नाम की कोई रुढ़िगत चीज नहीं मानने आ रही है। बल्कि वही वस्तु कला के रूप में एक परिवर्तित एवं परिवर्धित ढंग से हमारे बीच आ रही है। प्रत्येक घर में छोटे बड़े सभी सज्जाई और घर सज्जान में व्यस्त दिख पड़ते हैं। साल भर की खिलरी चीजों को सुव्यवस्थित और सुसाजसज्जत रखने की सबको एक अच्छी खासी ट्रेनिंग मिल जाती है। गृहिणियों के कार्यक्रम की ओर जब हम निहारते हैं तो ऐसा लगता है कि दीपावली ही एक मात्र ऐसा पर्व है जिसमें प्रत्येक गृहिणी अपने कला-कौशल का प्रदर्शन करने के लिए उतावली नज़र आती है। धनतेरस से ही दीपावली का कार्यक्रम प्रारम्भ हो जाता है। दीपावली के दूसरे दिन गोवर्द्धन पूजन (गोधन) होता है जिसे स्त्रियाँ बड़े हर्ष और उत्साह के साथ सम्पन्न करती हैं। इस दिन गोबर से तरह-तरह की देवी-देवताओं, नदी नाले, आदि का रूप रच कर अन्नत माला मेबा पकवान मिठाइयों से गोवर्द्धन पूजन किया जाता है। उत्तर प्रदेश, विशेष कर बाराणसी में इसे विधिवत् मनाने की प्रथा है 'गोधन' के दूसरे दिन 'भैया दूज' को भाई अपने बहन को मिठाई खिलाता है। इस प्रकार से दीपावली के ये मधुर कार्यक्रम अपनी स्मृति के रूप में प्रति वर्ष हमारे बीच आकर आनन्द और ख़ुशी की निधि दे जाते हैं।

यदि हम ऐसा कहें कि वीपावली के शुभ अवसर पर लोक कलाओं की एक प्रदर्शनी लग जाती है तो कोई अस्थुक्ति न होगी। शहर हो या देहात सब जगह वीपावली के एक सप्ताह पूर्व से ही कुम्हार मिट्टी के खिलौने और बर्तन बनाने में व्यस्त हो जाते हैं। यहाँ के वाराणसी जैसे सुप्रसिद्ध नगर का तो पृथक् ही क्या जहाँ मिट्टी-कला का एक अद्भुत प्रदर्शन देखने को मिलता है। लोक जीवन की सादगी के प्रतीक हैं इनके द्वारा बनाए गए ये खिलौने। इन सहज सुबोव खिलौनों से बाजार चमक उठता है। रंगों की ताज़गी और उनकी सफ़ाई ही उनका मुख्य आकर्षण है। दर्शक इन्हें देख कर स्वयं मुग्ध बन जाता है। इन खिलौनों की सबसे बड़ी विशेषता यही होती है कि आज भी उन पर बाहरी हवा का अमर नहीं हो पाया है, जिस उद्देश्य से उनका निर्माण हुआ है उसकी शक्ति उनसे होती है। कुछ खिलौनों में कहीं कहीं पर बाहरी प्रभाव भी देखने को मिल रहा है जो समय की गति से स्वाभाविक ही कहा जाएगा परंतु, संतोष है कि इनमें अभी पर्याप्त मात्रा में भारतीय प्रभाव वर्तमान है। काशी जैसी सांस्कृतिक नगरी में परम्परागत शैली पर काम करने वाले कारीगरों से हमें बहुत कुछ आशा है।

बर्तन बनाने की कला का भी वास्तविक रूप हमें वीपावली में ही देखने को मिलता है। ये रौतन वीपावली की साज-सज्जा को ध्यान में रख कर ही बनाये जाते हैं। बड़े और छोटे आकार के एक से एक सुघर बर्तन बनाए जाते हैं। इन सुन्दर सुझील बर्तनों पर फूल पत्तियों की मरल और घुमावदार रेखाओं द्वारा तरह तरह के आलेखन बनाए जाते हैं जिनसे बर्तन आकर्षक और कलात्मक हो उठते हैं। इन बर्तनों में मुख्य रूप से सपेदा का प्रयोग रहता है जिस पर हरा, लाल और पीला से डिज़ाइन का काम देखने को मिलता है। इन इने गिने रंगों के बीच इनका स्याही का रेखापात भी काफ़ी आकर्षक लगता है। कुछ स्थानों में वीपावली के लिए विशेष प्रकार के बर्तन और खिलौने तैयार किए जाते हैं। वाराणसी में इस अवसर पर 'भेहेहर' बनाने का बहुत प्रचार है। यह कुल ५ बर्तनों का एक सेट होता है जिसमें सबसे बड़ा बर्तन नीचे और सब से छोटा बर्तन ऊपर होता है। इन बर्तनों के अलावे अन्य दर्शनीय चीज़ों में से यहाँ के बने पीतल के बर्तन और

खिलौने होते हैं। पीतल के बने कलात्मक पात्रों के लिए काशी का नाम सुदूर देशों में बड़े आदर के साथ खिया जाता है। काठ के बने खिलौनों का तो काशी खजाना ही है। विदेशी प्रति दिन इन खिलौनों के सेट के सेट खरीदते रहते हैं।

काठ और मिट्टी के बने खिलौनों में मुख्य रूप से जानवर, चिड़ियाँ, नरनारी, देवी, देवता, तथा सामान्य घरेलू जीवन से सम्बंधित वस्तुओं को ही मॉक्री देखने को मिलती है। जानवरों में हाथी, घोड़ा, गाय, सँड, हिरन, शेर, ऊँट आदि के खिलौने अधिक मिलते हैं। प्रचलित और पालतू पशुओं के अलावे चिड़ियों के एक से एक लुभावने खिलौने वीपावली के समय तैयार किए जाते हैं। देवी-देवताओं में लक्ष्मी, गणेश, कृष्णा आदि की ही भरमार प्रत्येक दुकानों पर रहती है। नर नारियों में हमारे दैनिक जीवन से सम्बंधित खिलौने मिलते हैं। मिट्टी से बने घर और झोपड़े, तथा पेड़ और पहाड़ों के दृश्य अपने सुन्दर आकार प्रकार एवं रुचिकर रंग योजना से हमें प्रतिपल रिफ़ाया करते हैं। इन खिलौनों में दृश्य-चित्र (लेण्ड-स्केप) आदि बड़ी कुशलता से बनाए जाते हैं। पेड़ में ताड़, खजूर और डालों पर बैठाए गए बन्दर चिड़ियाओं आदि रंजक और स्वाभाविक होते हैं। बालकों के छोटे से छोटे खिलौनों से लेकर वयस्कों के उपयोगी कलात्मक वस्तुओं से बाजार सदा चमकता रहता है। काशी के बने खिलौने बच्चों खेलने के काम आने के साथ-साथ घर की शोभा बढ़ाने के भी काम आते हैं। वीपावली की खुरशी में सब लोग इन खिलौनों को मुक्त हस्त होकर खरीदते हैं। कुछ खिलौने तो अपने आकार प्रकार में बड़े होने के कारण कीमती भी होते हैं जिन्हें सब साधारण नही खरीद सकते। ऐसे खिलौनों में ऐतिहासिक पौराणिक गाथाओं के मरल ढंग से बने खिलौने होते हैं, जैसे घोड़े पर लव-कुश, राम आदि की सवारी। ये खिलौने यहाँ की लोक कला के बेजोड़ नमूने हैं। इनमें 'अनाटमी' (शरीर विज्ञान) ढूँढ़ना नादाना होगी क्योंकि इसे इन पुरतैनी कारीगरों का प्रेम और सहयोग प्राप्त है। इन खिलौनों में रूप की सादगी और भाव की पवित्रता, इने गिने चुहचुहाते रंगों का सौन्दर्य मिलेगा होगा जो दृष्टि पकते ही हमें द्रवीभूत कर देगा।

इन लोक कलाओं में अपार शक्ति और अनुल-

नीय सौन्दर्य भरा पड़ा है। आज के चतुर चित्रकारों ने इसे अपनी कला का मूल प्रेरणा स्रोत बना लिया है। चित्रकला के क्षेत्र में विशेष कर भारतीय कला में यथार्थवादी (रियलिस्टिक) प्रवृत्ति से ऊपर का ६६% चित्रकार लोक कला के आधार पर ही आज चित्रों का सृजन कर रहे हैं। इस दृष्टि से वाराणसी के चित्रकार इस ओर आज अधिक प्रयत्नशील हैं। अपने यहाँ भारतीय प्राचीन चित्रकला में दीपावली पर बहुत ही कम चित्र देखे जाते हैं। यद्यपि कला और धर्म का आपस में बहुत पुराना संबंध रहा है और आज भी धार्मिक चित्रों का अंकन होता ही आ रहा है तथापि दीपावली चित्रों का प्रकाश में न आना अकारण नहीं जान पड़ता। हो सकता है कि इन चित्रकारों ने इसे 'लक्ष्मी' का पक्ष समझ कर चित्र अंकित न किए हों। सरस्वती के उपासक लक्ष्मी को क्यों महत्व देने लगे? यही कारण है कि प्राचीन चित्रकला में सरस्वती के एक से एक कलात्मक चित्र मिलते हैं परन्तु 'लक्ष्मी' के जो प्राप्त चित्र हैं भी वे कला की दृष्टि से उतने महत्वपूर्ण नहीं हैं। यों तो राजस्थानी शैली में दीपावली के एक दो चित्र मिलते हैं जो कला की दृष्टि से उत्तम नहीं कहे जा सकते। इन चित्रों का न तो कोई धार्मिक संदेश है और न सामाजिक ही। परन्तु आधुनिक काल के बने दीपावली चित्र इन अपवादों से मुक्त हैं। यद्यपि ऐसे चित्रों में धार्मिक भावना का अभाव दीख पड़ता है तथापि सामाजिकता के विचार में इनका मूल्य बढ़ जाता है। वाराणसी जैसे संस्कृति प्रधान नगरी में दीपावली ममारोह का आयोजन सदा नवीनता लिए होता है क्योंकि इसे सदियों से लोक कलाओं का संग्रह प्राप्त है। यही तक नहीं बल्कि भारत के जो भी प्राचीन नगर हैं वहाँ दीपावली की एक अनोखी ही माँकी देखने को मिलती है।

जिन स्थानों को लोक कलाओं की सुदीर्घ परम्परा प्राप्त है और जिन्हें ऐतिहासिक और भौगोलिक महत्व भी प्राप्त है वे स्थान निश्चय ही चित्रकला के क्षेत्र में आज आगे बढ़े हुए हैं। लोक कलाओं की गोद में पला वाराणसी एक ऐसा ही नगर है जिसे ये समस्त सुविधाएँ प्राप्त रही हैं जहाँ धर्म कला और विज्ञान की सुविधाओं से अपनी संस्कृति का नवनिर्माण करने में सदा महायत्न मिलती रही है। यहाँ की धर्म आधुनिक चित्रकला

जिसे कि 'काशी शैली' कहते हैं उसमें भारतीय संस्कृति को विकासोन्मुख करने का एक सफल प्रयत्न किया गया है। इस शैली के चित्रकार अपने अध्ययन और अध्यवसाय से अपने चित्रों में नव चेतना भरने की कोशिश करते रहे हैं। धर्मचक्र के आवर्तन में रहकर भी जीवन की एक नए ढंग की कल्पना इन्होंने की है; धर्म के बाह्याङ्गमर को छोड़ कर कला की माधना ही को इन्होंने अपना प्रमुख कर्तव्य (धर्म) समझा है। कला की परिभाषा को एक संकुचित दायरे से उठा कर उसे नई प्रगति दिया है। धर्म के वास्तविक रूप को इन्होंने समाज की हँसी खुशी में इस प्रकार विखेर दिया है कि वह उसका एक अभिन्न अंग बन गया है। महादेवी 'लक्ष्मी' के चित्रण के स्थान पर गृहिणिर्मा ही अंकित की गई हैं। कहीं दीपों से जगमगाती थाल लिए हुए रमणी नृत्य कर रही है। इसी प्रकार से दीपावली के अन्तर्गत मनाए जाने वाले विभिन्न आयोजनों से सम्बन्धित अनेक चित्र इस शैली में बनाए गए हैं। 'गोवर्द्धन पूजन' और 'भैया दूज' जैसे हँसी खुशी के क्षणों को भी इन्होंने स्पर्श कर सामाजिक सम्बन्ध को सुदृढ़ करने का स्तुत्य प्रयत्न किया है।

सी० के० २-३६

सिद्धेश्वरी स्ट्रीट, वाराणसी

—महेन्द्रनाथ सिंह

(३)

प्रेरणा का स्रोत

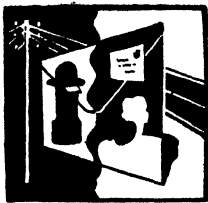
“देखिए—वह मेरा सोफ़ा है और मैं उस पर लेट जाता हूँ और तब तक प्रतीक्षा करता हूँ जब तक कि मेरा शैतान मुझे यह नहीं कहता कि मुझे क्या करना चाहिए।” —इडयार्ड किपलिंग ने कहा।

“शैतान” ?

उमने उत्तर दिया : “अन्तर्ज्ञान। अन्तर्चेतना। आप इसे चाहे किसी नाम से कह लीजिए।”

“क्या आप इसे हमेशा सुन सकते हैं ?”

“नहीं। हमेशा नहीं। परन्तु मैंने इस बात को सीखा है कि हमें तब तक प्रतीक्षा करनी चाहिए जब तक कि अन्तर्चेतना इंगित प्राप्त न हो। जब यह कुछ नहीं कहता तो इसका अर्थ नहीं होता है।”



चिन्ती-पत्री

(१)

आधुनिक साहित्य में उपन्यास

क्या उपन्यास का साहित्यिक मूल्य गिर रहा है ? कुछ साहित्यिकों और विद्वानों का मत है कि उपन्यास वास्तविक साहित्य नहीं है; यह एक निम्न कोटि का साहित्य है जो कि खाली समय में केवल दिल बहलाने के उद्देश्य से आलसियों द्वारा आलसियों के लिए लिखा जाता है, अतः जीवन-सम्बन्धी गूढ़ सिद्धान्तों और तत्वों से रहित है। कविता, नाटक आदि की अपेक्षा उपन्यास लिखना और पढ़ना दोनों सरल है, अतः यह माधना-परक शुद्ध साहित्य नहीं है—ऐसा उनका मत है। मनुष्य के आधुनिक जीवन तथा साहित्य का उसमें स्थान देखते हुए प्रश्न महत्वपूर्ण तथा विचारणीय है।

विद्वानों का कहना है कि उपन्यास साहित्य का एक अपेक्षाकृत, अतः अपरिपक्व अङ्ग है; यह साहित्य के अन्य अंगों—नाटक, कविता, निबन्ध आदि—की तरह अभी पूर्णतः विकसित और उन्नत नहीं हो पाया है। औपन्यासिक उपन्यास लिखने में बड़ी मनमानी करता है; वह किसी प्रकार की साहित्यिक मर्यादा अथवा बन्धन का ध्यान नहीं रखता। इस प्रकार साहित्य का वास्तविक रूप पाठक के समक्ष कुरिष्ठ हो जाता है। साथ ही, उपन्यास युग-विशेष का साहित्य है, शुद्ध साहित्य की तरह युग-युग का—चिरन्तन—नहीं है, क्योंकि उपन्यासकार अधिकतर युग-विशेष की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक त्रुटियों, दोषों आदि के विरुद्ध ही आवाज उठाता है, ऐसी बात नहीं लिखता जो चिरन्तन हो, जिसका मानव-मात्र में सदा सम्बन्ध रहा हो और भविष्य में रहे।

वास्तव में हम मत की पृष्ठ भूमि में एक बहुत ही आपका भ्रम है—वह यह कि हम बात को पायः भुला दिया जाता है कि उपन्यास-लेखन एक अत्यन्त सूक्ष्म, साधनापरक तथा प्रतिभायुक्त कला है जो कि

बहुत कम “औपन्यासिकों” में विद्यमान होती है, विशेषतः आजकल। यह उतनी सरल कला नहीं है जितनी कि इसे समझा जाता है। आजकल बाजारों में जितने भी उपन्यास बिकते हैं, उनमें से बहुत कम उच्च कोटि के होते हैं, अधिकांश ऐसे होते हैं जिन्हें ‘उपन्यास’ की संज्ञा नहीं दी जा सकती। इसी कारण उपन्यास के सम्बन्ध में इस प्रकार की धारणा बन गई है। उपन्यास लेखन-कला निःसन्देह शुद्ध साहित्य का रूप है; उसकी सार्थकता और महत्व को सिद्ध करने के लिए योग्य उपन्यासकार की अपेक्षा है।

आज के विकट आर्थिक-संवर्ध के कारण मानव जीवन अत्यन्त व्यस्त-संघर्ष तथा अज्ञान बन गया है। मनुष्य के नित्य के जीवन में इतनी चिन्ता तथा व्यवस्था है कि उसे मनोरंजन के लिए बहुत थोड़ा समय मिलता है। इस थोड़े-से समय में प्रत्येक मनुष्य अपनी हवि के अनुसार मनोरंजन के विभिन्न साधनों खेल, पुस्तक, पत्र-पत्रिका, रेडियो, सिनेमा आदि का सहारा लेता है। अब देखना यह है कि क्या आज उपन्यास मनुष्य का मनोरंजन करने के साथ साहित्य का अन्तरंग अंग होने के नाते, अपना नित्यदायित्व पूरी तरह निभाता है ? क्या वह मनोरंजन के साथ साहित्य का उद्देश्य (मनुष्य जीवन को अधिक सुखी और सुन्दर बनाना) भी पूरा करता है ? इसके उत्तर में हम देखते हैं कि यद्यपि आज जितना उपन्यास-साहित्य विद्यमान है उसमें से बहुत तो इस उद्देश्य को पूरा नहीं करता किन्तु जो पूरा करता है वह उपन्यास का अत्यन्त उत्कृष्ट रूप है और उसमें मनुष्य को वह सब प्राप्त हो जाता है जो वह साहित्य से चाहता है। आज हम देखते हैं कि जितने अधिक पाठक उपन्यास—उच्च कोटि के उपन्यास के हैं उनमें साहित्य के किसी अन्य अंग के नहीं। इसका क्या कारण है ? इसका कारण है उपन्यास मनुष्य को उसके नित्य प्रति के जीवन की घटनाओं के उदाहरण द्वारा जीवन का सत्य समझा

देता है और जिसे वह कविता, नाटक आदि में कम पाता है उपन्यास मनुष्य को वह 'कान्ता सम्मित उपदेश' देता है जिसे मनुष्य केवल 'उपदेश' की दृष्टि से ग्रहण नहीं करता अपितु जीवन के सत्य के रूप में ग्रहण करता है। 'चित्रलेखा', 'गोदान', 'चरित्रहीन', 'ला मिज़गाबेलम', 'रिटर्न ऑफ़ वी नेटिव', 'ए टेल ऑफ़ दू सिटीज़', 'वार एण्ड पीस' आदि मनुष्य के हृदय को छूकर उसे जीवन के अत्यधिक निकट ला देते हैं हिन्दी के उपन्यास-सम्राट् स्वर्गीय प्रेमचन्द के अनुसार उपन्यास है ही मानव-चरित्र का चित्र जिसका मूल तत्त्व मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और रहस्य को खोलना है। कलाडब बेन के अनुसार उपन्यास यथार्थ जीवन का चित्र है जिसमें अपने समय और उसकी गतिविधि का यथार्थ अनुसरण रहता है—उसमें नित्य प्रति के जीवन का महज चित्रण रहता है। इटली के सुप्रसिद्ध कलाविद् क्रोचे ने उपन्यास को 'वास्तविक जीवन का यथार्थ चित्रण' माना है।

इसी कारण उपन्यास द्वारा मनोरंजनपूर्ण, हृदय-प्राप्ती तरीके से रखा गया मनुष्य जीवन का सत्य चित्रन्तन है, युग-युग का है, स्थायी है। कहा गया है, "उपन्यास में नामों और तिथियों के अतिरिक्त और सब बातें सच्ची होती हैं और इतिहास में नामों और तिथियों के अतिरिक्त और कोई बात सच्ची नहीं होती।" उपन्यास-लेखक कुछ सच्ची अथवा सम्भावित घटनाओं को किसी नए और विलक्षण ढंग से हमारे सामने उपस्थित करता है; फिर भी हम नहीं कह सकते कि जीवन की वास्तविक घटनाओं और शक्तियों अथवा आदर्श सम्भावनाओं से वह दूर जा पड़ा है। हाँ, यदि वह इन बातों से दूर जा पड़ा हो, यदि उसकी कृति में हमें आदि से अंत तक बिल्कुल असम्भव और अनुपयुक्त बातें ही मिलें—जैसा कि आजकल उपन्यासों में मिलता है—तो हम कह सकते हैं कि लेखक ने उपन्यास के वास्तविक उद्देश्य पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया; और इस दृष्टि से उसकी कृति में रथावृत्त नहीं है, वह असाहित्यिक है। पर किसी भी भाषा के उच्च कोटि के उपन्यासों में ऐसी बात नहीं है और वे आज और सदा हर प्रकार के पाठकों का 'साहित्यिक मनोरंजन' करते हैं।

इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि उपन्यास का

साहित्यिक मूल्य आधुनिक काल में बहुत है और उसका भविष्य उज्ज्वल है।

५१-५२, मोडल बस्ती,
नई दिल्ली—५

—अरविन्द माखवीय

(२)

‘अज्ञानता’ के सम्बन्ध में

आपका 'अज्ञानता' यथार्थ में उतना ही प्रशंसनीय है जितनी की मैं उसकी प्रशंसा कर रहा हूँ। किसी व्यक्ति को अगर कवि या शायर बनने की इच्छा है, या बनना है तो उसे 'अज्ञानता' को अवश्य पढ़ना चाहिए। आपको मेरे बातों पर यकीन नहीं आया। लेकिन मैं जलते हुए दीपक की, चाँद सितारों की इतना ही नहीं बल्कि कविता लिखने में मुझे जिससे प्रोत्साहन और मदद प्राप्त हुई उस अपने पाण्डित्य 'अज्ञानता' की कसम लेकर सच कह रहा हूँ। मेरे जितने भी साथी हैं मैं सबको बड़े अभिमान से 'अज्ञानता' के बारे में विश्वास दिलाता हूँ।

यहाँ नागपुर हिन्दी मोर भवन में मैं जब भी जाता हूँ तब भी सबसे पहले 'अज्ञानता' को ढूँढ़ता हूँ। मुफ़्तिसी और समय न मिलने के कारण 'अज्ञानता' को प्राप्त करने में काफ़ी कठिनाइयाँ उपस्थित हो जाती हैं फिर भी कोशिश करके मैं उसे किसी न किसी तरह हासिल कर ही लेता हूँ।

कारण है अभिलाषा। 'अज्ञानता' में प्रकाशित होनेवाले काव्य, मुक्तक और गीतों आदि को मैं हमेशा ध्यान में पढ़ता हूँ। और शायद इसी की वजह हो सकता है कि मुझे भी कुछ लिखने की प्रेरणा प्राप्त हो रही है। मैं तो कोई काव्य नहीं हूँ और फिर मेरी मातृभाषा मराठी है। न ही मेने कोई हिन्दी की परीक्षाएँ पास की हैं। यह सब कगामात 'अज्ञानता' की है।

८/० बी. पी. देवगिरिकर

टाइपिस्ट—फ़ुड सेक्शन

—पी. एम. दोडके

जि० आफिम, नागपुर

(३)

कला का पुनर्निर्माण

हमारे देश में कला की जिन वस्तुओं को ध्वंस कर दिया गया है उनके पुनर्निर्माण के लिए कुछ विशेष प्रयत्न नहीं किए जा रहे हैं। लार्ड कर्जन की कृपा से प्राचीन ऐतिहासिक भग्नावशेषों को इस देश में पुरातत्त्व

के अनुसन्धान और अनुशीलन के लिए सुरक्षित कर दिया गया—और अब भी उनकी सुरक्षा की ओर ध्यान दिया जा रहा है परन्तु क्या अब इस बात की आवश्यकता नहीं है कि जहाँ तक संभव हो इन प्राचीन कला-प्रतिमाओं का पुनर्निर्माण किया जाए। यह ध्वंसावशेष यदि एक मात्र समय के कारण किए गए होते तब भी जहाँ तक संभव हो इनके पुनर्निर्माण की आवश्यकता थी—परन्तु इतिहास इस बात का साक्ष्य है कि अनेक स्थानों पर तो इन कला की प्रतिमाओं को जान बूझ कर तोबा गया है और इस प्रकार हमारे देश की कला के साथ बलात्कार और अत्याचार किया गया है। कला का यह विध्वंस भी एक प्रकार से हमारे देश में गुलामी के युग का ही प्रदर्शन करता है। एक देश जब गुलाम बन जाता है तो उसकी कला आदि को किस प्रकार विनष्ट किया जाता है—ये ध्वंसावशेष उसके प्रमाण हैं। कला की मूर्तियाँ किसी देश की संस्कृति और आत्मा हैं। यह सत्य है कि इन ध्वंसावशेषों में भी हमें अपने देश की कला की महानता का परिचय प्राप्त होता है परन्तु स्वतन्त्रता की प्राप्ति के पश्चात् क्या इस बात की आवश्यकता नहीं है कि जहाँ तक संभव हो—इन विध्वस्त कला-कृतियों का सुन्दर रूप से पुनर्निर्माण किया जाए।

विश्व में दो महायुद्ध हो चुके हैं। दूसरे महायुद्ध में फ्रान्स, इटली आदि देशों के कितने ही कला-कृतियों को बम वर्षण द्वारा नष्ट कर दिया गया परन्तु युद्ध की समाप्ति के पश्चात् इन महान् देशों ने अपनी इन कला-कृतियों को एक मात्र पुरातत्त्व की ही वस्तु नहीं बनाया—जहाँ तक संभव हुआ—योजनाएँ बना कर इनके पुनर्निर्माण का प्रयत्न किया और अनेक वस्तुओं को तो उन्होंने पहले से भी अच्छा बनाने का प्रयत्न किया। जो लोग आज यूरोप में जा कर कलाकृतियों के इस पुनर्निर्माण को देखते हैं वे आश्चर्य चकित रह जाते हैं कि कितनी शीघ्रता से समस्त राष्ट्र ने उस कला का पुनर्निर्माण कर लिया जिस पर कि समस्त देश को गर्व था। अथवा वह कला हमेशा के लिए समाप्त हो जाती।

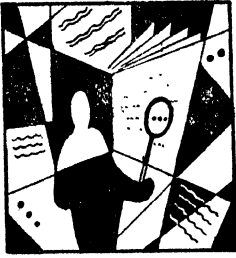
एक-विदेशी शासन के समय में यही क्या कम महत्व की बात थी कि कला के इन ध्वंसावशेषों की रक्षा की गई। उनके लिए ये आश्चर्य की वस्तुएँ हो

सकती थीं परन्तु उनके लिए ये उतनी गर्व और अभिमान की वस्तुएँ नहीं हो सकती थीं जितनी कि हमारे लिए हैं। यदि हमारे हृदय में इन कला-प्रतिमाओं के प्रति आदर की भावना है तो हमें इस बात के राष्ट्र-व्यापी प्रयत्न करने पड़ेगे कि इन कला-कृतियों का जहाँ तक भी संभव हो पुनर्निर्माण किया जाए और उन्हें उसी स्थिति में पहुँचाने का प्रयत्न किया जाए जिनमें कि वह पहले थीं। हम मानते हैं कि यह कार्य आसान नहीं है। बहुत कठिन है। कहा जा सकता है कि हमारे देश में बैसे कलाकार अब कहीं हैं जो इनका पुनर्निर्माण कर सकेंगे। इन समस्त कठिनाइयों के होते हुए भी यदि हम दिशा में प्रयत्न किया जाएगा—तो इसमें हमारे देश में एक नई कला-चेतना का अभ्युदय होगा और कलाकार स्वयं कोई ऐसा मार्ग ढूँढ़ निकालेंगे जिससे कि इन कलाकृतियों का पुनर्निर्माण एक मात्र एक स्वप्न ही नहीं रहेगा—वह क्रियात्मक रूप में परिणत हो सकेगा। कठिनाई का अर्थ न तो यह हो सकता है कि यह कार्य असंभव है और न यह कि इसके लिए प्रयत्न नहीं किया जाना चाहिए। इस समय भी हमारे देश में अनेक कार्य इस प्रकार के लिए जा रहे हैं जिनका करना यदि असंभव नहीं तो कठिन तो अवश्य प्रतीत होता है।

और यह प्रसन्नता की बात है कि इस कार्य को प्रारम्भ किया जा चुका है। सौराष्ट्र में सोमनाथ के मंदिर को पुनः बनाया गया है और यह प्रयत्न किया जा रहा है कि यह मन्दिर पहले से भी अच्छा हो। जिस प्रकार सोमनाथ के मन्दिर का पुनर्निर्माण किया जा रहा है उसी प्रकार अन्य कलाकृतियों का भी पुनर्निर्माण किया जाना चाहिए। कितनी ही कलाकृतियाँ और मन्दिर आदि इस प्रकार के हैं जो थोड़े से प्रयत्न से ही पुनर्निर्मित हो जाएँगे। हमारी प्राचीन कलाकृतियों हमें एकमात्र ध्वंसावशेषों के रूप में दिखाई देने का एकमात्र यही अर्थ हो सकता है कि हमारे राष्ट्र में इनके पुनर्निर्माण की क्षमता नहीं है। हम मानते हैं कि समस्त कलाकृतियों का निर्माण नहीं हो सकता—परन्तु जहाँ भी हो सकता है वहाँ पुनर्निर्माण का प्रयत्न अवश्य किया जाना चाहिए।

हैदराबाद

—‘कला प्रेमी’



गीर-खीर..

[समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियाँ सम्पादक 'अज्ञानता' के नाम भेजी जानी चाहिए]

हिन्दी और कन्नड़ में भक्ति-आन्दोलन का

तुलनात्मक अध्ययन

लेखक : डा. हिरण्मय

प्रकाशक : विनोद पुस्तक मन्दिर,
हारिपटल रोड, आगरा

मूल्य : १०००

यह अत्यन्त प्रसन्नता की बात है कि भारतवर्ष की भाषाओं के साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन के लिए प्रयत्न किया जाने लगा है। इस प्रकार के अध्ययन से कई इस प्रकार की बातों पर प्रकाश पड़ने की सम्भावना है जिससे कि हमारे देश के भाषाओं के साहित्य के इतिहास को एक नई दिशा प्राप्त हो सकेगी। सत्य तो यह है कि हमारे देश की भाषाओं और साहित्यों का पारस्परिक सम्बन्ध इतना निकट और गहरा है कि उन्हें एक छूरे से अलग करना कठिन है। यद्यपि भाषाओं में विभिन्नता है परन्तु उनके अन्दर जो आत्मा है वह एक ही है। वस्तु और वस्तु-विषय प्रायः एक ही हैं, उनमें बहुत कम भेद अभिलक्षित होता है। यही कारण है कि इन भाषाओं के साहित्य के इतिहास को पढ़ने से न केवल अपनी भाषा अर्थात् भारतवर्ष की अन्य भाषाओं की साहित्यिक गति-विधियों और इतिहास को समझने में बहुत सहायता प्राप्त होती है। प्रस्तुत पुस्तक के लेखक लिखते हैं : "कन्नड़ का भक्तिकाल ईसा की बारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में वीरशैव सम्प्रदाय के साथ आरंभ होता है।" इस सम्प्रदाय के कारण कन्नड़ में शिव भक्ति का एक विशिष्ट स्थान है और इसीलिए लेखक ने अपनी पुस्तक में इसी का उल्लेख किया है। सेसुगु के

साहित्य में भी शिव-भक्ति का एक महत्वपूर्ण स्थान है। पता नहीं हिन्दी के साहित्य के इतिहास में भक्ति-काल के काव्य में शिव-भक्ति के काव्य को क्यों स्थान नहीं दिया गया? विद्यापति, तुलसीदास आदि के पदों में शिव-भक्ति के अनेक पद प्राप्त होते हैं। नाथ-सम्प्रदाय का भी 'शिव' से सम्बन्ध है। हिन्दी के भक्ति-काल के साहित्य में शिव-भक्ति को भी उपयुक्त स्थान प्राप्त होना चाहिए; इसके बिना हिन्दी के भक्ति काल के इतिहास को पूर्ण नहीं कहा जा सकता। यदि प्रस्तुत पुस्तक के लेखक प्रयत्न करते तो वे शिव-भक्ति के सम्बन्ध में हिन्दी और कन्नड़ के कवियों का कुछ तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत कर सकते थे। यद्यपि लेखक ने इस पुस्तक के दूसरे अध्याय में हिन्दी में सूफी सम्प्रदाय के सम्बन्ध में लिखा है परन्तु समस्त पुस्तक को पढ़ने से यह प्रतीत नहीं होता कि कन्नड़ साहित्य पर सूफी-सम्प्रदाय का क्या प्रभाव पड़ा है? दक्षिण में गुलबर्गा में दखनी का साहित्य उत्पन्न हुआ जिसमें कि कन्नड़ के भी अनेक शब्द हैं—उसमें सूफियों का प्रभाव अत्यन्त स्पष्ट है। कुछ भी हो जब सूफियों के प्रश्न को उठाया गया है तो उसके कन्नड़ पर प्रभाव को भी दिखाया जाना आवश्यक था। इसी प्रकार यह देख कर हमें आश्चर्य हुआ कि इस पुस्तक में कर्नाटक में राम-भक्ति काव्य के सम्बन्ध में भी विशेष रूप से कुछ नहीं लिखा गया है। कन्नड़ और हिन्दी में सगुण भक्ति के काव्यों में जो राम-भक्ति का साहित्य प्राप्त होता है, उसके सम्बन्ध में इस पुस्तक में विस्तार से विवेचन करने की परम आवश्यकता थी। इतना ही नहीं यदि इस पुस्तक में हिन्दी की रामायण की कथा और चरित्र-चित्रण आदि के सम्बन्ध में हिन्दी और कन्नड़ साहित्यों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जा सकता तो इसके दोनों

भाषाओं के राम-भक्ति साहित्य की प्रबन्ध काव्य और भक्ति-सम्बन्धी विशेषताओं को समझने में सहायता प्राप्त हो सकती। इस पुस्तक में हिन्दी और कन्नड़ दोनों भाषाओं के साहित्य में निर्गुण और कृष्ण-भक्ति साहित्य के और उनकी दार्शनिक पृष्ठभूमि आदि के सम्बन्ध में ही अधिकतर लिखा गया है। इस पुस्तक में कन्नड़ साहित्य के हरिदास, हरिदास-आन्दोलन, व्यासकूट और दाधकूट आदि पर पर्याप्त और रोचक प्रकाश डाला गया है। कृष्ण-भक्ति के और यहाँ तक कि इस समस्त साहित्य और आन्दोलनों के पीछे जो दार्शनिक पृष्ठभूमि है उस पर जिस विस्तार और तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन किया जाना चाहिए था; वैसा अध्ययन इन पुस्तक में प्रस्तुत नहीं किया जा सका है। इतने पर भी पुस्तक को पढ़ने से अनुभव होता है कि लेखक ने इसको लिखने में पर्याप्त श्रम किया है। प्रस्तुत पुस्तक लेखक का रिसर्च थीसिस है जिस पर काशी-विश्वविद्यालय की ओर से लेखक को Ph. D. की उपाधि प्रदान की गई है। इस पुस्तक को पढ़ने से यह अनुभव होता है कि भारतवर्ष की भाषाओं के साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन की कितनी अधिक आवश्यकता है। भाशा है कि प्रस्तुत पुस्तक से भारतीय भाषाओं के साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन के सम्बन्ध में लेखकों को प्रेरणा और प्रोत्साहन प्राप्त होगा।

सुरपूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य

लेखक : डा. शिवप्रसाद सिंह

प्रकाशक : हिन्दी प्रकाशक पुस्तकालय,
ज्ञानवापी, वाराणसी

मूल्य : १२.५०

प्रस्तुत पुस्तक यद्यपि यह प्रदर्शित करने के लिए लिखी गई है कि सुरदास से पूर्व ब्रजभाषा का स्वरूप और साहित्य किस प्रकार का और क्या था—परन्तु लेखक ने अपनी इस पुस्तक में भाषा सम्बन्धी जितने वाद-विवादों को और पक्षों को जिस प्रकार उठाया है, वे उनका समाधान उस प्रकार प्रमाणों और तर्कों के साथ कर सके हैं इसमें सन्देह है। अच्छा

होता कि यदि लेखक अपने क्षेत्र को 'सुरपूर्व ब्रजभाषा और उसके साहित्य' तक ही सीमित रखते और इस सम्बन्ध में वे जितनी सामग्री संशुद्धी कर सके हैं—वे उसे अपनी प्रस्तुत पुस्तक में पूर्ण रूप से प्रस्तुत कर देते। हम दुःखपूर्वक इस बात को अनुभव कर रहे हैं कि आजकल की अनुसन्धान की पुस्तकों को इस प्रकार अनावश्यक रूप से विस्तृत और बृहत् करने का प्रयत्न किया जाता है कि जिससे किसी प्रकार ग्रन्थ का आकार मोटा और भारी-भरकम बन जाए। वे अपने विषय के लिए न तो आवश्यक सामग्री जुटा पाते हैं और इस सामग्री के अभाव में वे वे अपनी धारणाओं के सम्बन्ध में अनेक तर्क और बाद-विवाद तो उपस्थित कर देते हैं परन्तु आवश्यक प्रमाणों को उपस्थित नहीं कर पाते। ब्रजभाषा के सम्बन्ध में हमने इस पुस्तक से इस बात को जानना चाहा कि "ब्रजभाषा" यह नाम ऐतिहासिक रूप से कब से प्रचलित हुआ? किसने सबसे पूर्व इस भाषा को जिसके पूर्ववर्ती अनेक रूप थे—"ब्रजभाषा" कहा और जब इसे "ब्रजभाषा" कहा गया तब इसका प्रथम कवि कौन था? ब्रजभाषा से पूर्व की भाषाएँ "ब्रजभाषा" के विकास में महायक हो सकती हैं परन्तु यह किस प्रकार कहा जा सकता है कि वे "ब्रजभाषा" ही थीं। लेखक लिखते हैं : "ब्रजभाषा या हिन्दी के आरम्भ की ऐतिहासिक सूचना हमें निजामुद्दीन के" तबक़ात-ए-अक़बरी, तथा अन्य लेखकों की कृतियों में मिलती है। कालिदास के हिन्दू नरेश ने विना हीरे और महावत के हाथियों को मारलता में पकड़ने और नन पर सवारी करनेवाले तुर्कों की प्रशंसा में कुछ पद्य हिन्दी में लिखे थे।... ख़ुमरो ने ममूद इब्नमाद के "हिन्दी रीवान का उल्लेख किया है।" समझ में नहीं आता कि लेखक ने "हिन्दी" शब्द का अर्थ यहाँ "ब्रजभाषा" किस प्रकार कर दिया है। मुसलमानों ने केवल "ब्रजभाषा" को ही हिन्दी के नाम से अभिहित नहीं किया : अवधी को भी 'हिन्दी' के नाम से कहा है। इसी प्रकार "सरस्वती कंठाभरण" के "ऐसे सच्चे जि बोस्तु" को भी इस आधार पर "ब्रजभाषा" नहीं कहा जा सकता क्योंकि यह वाक्य ब्रजभाषा से मिलता जुलता है। एक आध छोटी-सी पैंक्ति के आधार पर यह सिद्ध नहीं

किया जा सकता कि यह सूर से पूर्व की व्रजभाषा है। “डिंगल” शब्द का अर्थ अलेखक ने “अनियमित” किया है परन्तु इसके लिए उन्होंने किसी प्रकार के प्रमाण को प्रस्तुत नहीं किया है। इसी प्रकार यह लिखना कि “पर्वती काल में ‘रेखता’ छन्द में आरम्भिक हिन्दी को ‘रेखता’ भाषा कहा गया।” “रेखता” शब्द फ़ारसी शब्द है। यह ठीक है कवीर आदि ने कुछ ‘रेखते’ लिखे हैं परन्तु ‘रेखता’ छन्द किस प्रकार का है—इस सम्बन्ध में लेखक ने कुछ प्रकाश नहीं डाला है। अब्दुल रहीम खानखाना ने अपनी “मदनाष्टक” में लिखा है “भुक भुक मनवाला गावता रेखता था”—इससे रेखता का अर्थ यहाँ छन्द नहीं प्रतीत होता। ‘रेखता’ एक फ़ारसी शब्द है जिसका अर्थ उर्दू के विद्वान् ‘सिली-जुली भाषा’ लिखते हैं। उर्दू को पहले रेखता के नाम से कहा जाता था। इस सम्बन्ध में आगे चलकर लेखक ने स्वयं इसी प्रकार की बातें लिखी हैं। लेखक लिखते हैं : “व्रज भाषा सदैव से ही काव्य की भाषा मानी जाती रही है।” क्या व्रजभाषा का अस्तित्व “सदैव” से था जो इसका प्रयोग ‘सदैव’ काव्य-भाषा के रूप में होता रहा है। इसी प्रकार-भाषाओं के सम्बन्ध में लेखक ने अनेक बातें इस प्रकार की लिखी हैं जिनका “विवादास्पद” होना उनके लक्ष्य और युक्तियों से समाप्त नहीं हो जाता क्योंकि उनके लिए अत्यन्त सफल प्रमाणों की आवश्यकता है। सूर से पूर्व व्रजभाषा अवश्य रही होगी जिस प्रकार बाल्मीकि से पूर्व भी संस्कृत की कविता विद्यमान रही होगी परन्तु व्रजभाषा की लोकप्रियता जिन प्रकार मुरदास के प्रादुर्भाव से अकबर के युग में हुई उससे पूर्व भी यह वही प्रकार लोकप्रिय थी यह कथन सन्देहास्पद प्रतीत होता है। अकबर के समय आगरा और फ़तहपुर सीकरी के व्रज के क्षेत्र में होने के कारण इस भाषा को राज्य का आश्रय सुगमता से प्राप्त हो गया। लेखक स्वयं लिखते हैं : “व्रजभाषा में पद-रचना का आरम्भ कब से हुआ यह, कहना कठिन है। ... व्रजभाषा के गेय पदों का प्रचलन १२ वीं, १३ वीं शताब्दी में ही हो गया था इसका कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता।” व्रजभाषा की लोकप्रियता इसी “पद-रचना” के कारण हुई। इस “पद-रचना” के सम्बन्ध में ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करने की आवश्यकता है।

इसमें सन्देह नहीं कि पुस्तक के लिखने में लेखक

ने परिश्रम किया है और बहुत-सी बातों पर नवीन प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है परन्तु पुस्तक में भाषासम्बन्धी अनेक विषयों को सम्मिश्रित कर लिया गया है इस विस्तार के कारण सूर से पूर्ववर्ती व्रज के साहित्य पर जैसा गम्भीर प्रकाश डाला जाना चाहिए था—वैसा प्रकाश नहीं डाला जा सका है।

ललितकुंज,

गगन महल कौलोनी,

हैदराबाद

—वंशीधर विद्यालंकार

विज्ञान जगत

मूल लेखक : विजियम एच० फ़ाउष

अनुवादक : देवेन्द्र कुमार

प्रकाशक : राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली-६

मूल्य : ३.००

वैज्ञानिक आविष्कारों का सरल भाषा में परिचय देने वाली यह पुस्तक अपने ही ढंग की अनूठी पुस्तक है। इस पुस्तक में विज्ञान के मूल सिद्धान्तों की बड़ी रोचक व्याख्या की गई है और अनेक चित्रों की सहायता से पाठकों को यह समझाया गया है कि मनुष्यों ने इन सिद्धान्तों का उपयोग करके किस प्रकार वैज्ञानिक चमत्कारों की सृष्टि की है।

विज्ञान के सम्बन्ध में अनेक प्रकार के प्रश्नों का उत्तर इस पुस्तक के पढ़ने से प्राप्त हो जाता है। पुस्तक की छपाई और गेटप सुन्दर है।

बापसी

लेखक : चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

प्रकाशक : राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली

मूल्य : ३.५०

श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार हिन्दी के प्रमुख कथाकारों में से हैं। ‘बापसी’ आपका दूसरा कहानी संग्रह है। आपने कहानियों में मानव चरित्र के सुन्दर और प्रभावशाली चित्र उपस्थित किए हैं। इन कहानियों में मनुष्य के अन्तर्हृदय का अध्ययन अत्यन्त सूक्ष्मता और गहराई के साथ किया गया है। संग्रह की सभी कहानियाँ सुन्दर और हृदयप्रायी हैं। कहानियों के लिखने की शैली में विशेष प्रकार का आकर्षण है। लेखक जिसका भी वर्णन करते हैं उसकी जीती-जागती तबहीर उपस्थित कर देते हैं।

सँवह की सभी कहानियाँ यथार्थ की भूमि पर आधारित हैं और उन में आदर्श का स्पर्श भी है। श्रीयुत चन्द्रगुप्त विद्यालंकार की इन कहानियों पर हिन्दी संसार गर्व कर सकता है।

मैत्री भाव

लेखिका : जेपमिन बेस्ट

प्रकाशक : अंतरचन्द्र कपूर एण्ड सन्स दिल्ली-६

मूल्य : २-२५

मध्यवर्गीय परिवार पर आधारित यह उपन्यास रोचक और सुन्दर है। इसकी कथा-वस्तु भी अपनी परिधि में सीमित है। उपन्यास का नायक जैस और नायिका एल्लिजा का चित्रण भी उपन्यासकार ने पूर्ण रूप से किया है। उपन्यास नायक जैस का जीवन जिस प्रकार व्यतीत हो रहा था उसमें कहीं भी कोई विशेषता नहीं थी किन्तु इहो अवस्था में जैस पर एक अनाथ बालक होमर का प्रभाव पड़ता है। होमर और जैस की एक नयी क्किनारे भेट होती है और वे दोनों एक दूसरे से स्नेह करने लग जाते हैं। जैस उसे अपने पुत्र जैसा मानने लगता है। किन्तु विधि-को यह सहन नहीं था और एक दिन होमर अकस्मात् डम संसार में चल बसता है। जैस पर इव घटना का प्रभाव पड़ता है। वह आवश्यकता से अधिक गंभीर हो जाता है और उसी दिन से दोपहर में भोजन की टेबुल पर बैठ कर अपनी पत्नी एल्लिजा को होमर के अकस्मात् विदा होने का दारुण समाचार सुनाता है और कहता है : “एल्लिजा, मैं अस्सी वर्ष का हो गया हूँ। आजीवन किसी न किसी प्रकार मैंने परोपकार करने का ही प्रयत्न किया है। वह ठीक है या गलत यह मैं नहीं जानता किन्तु उसके लिए मुझे क्षमा कर दिया गया है। मुझे होमर से प्यार था, मैंने उसका भी परोपकार करना चाहा था...परन्तु अब सोचता हूँ मैंने जो किया वह गलत था...और यह मेरी भूल थी। आज के बाद एल्लिजा, मानव मात्र से प्रेम करने के अतिरिक्त भगवान् मुझे कुछ नहीं माँगता।”

पुस्तक के अनुवाद में जहाँ तहाँ भूलें दृष्टिगोचर होती हैं। प्रक की अशुद्धियाँ भी हैं जिनका होना खटकता है।

विर कुमारी सभा

लेखक : मोहनलाल गुप्त

प्रकाशक : मधु प्रकाशन, चेतनंज, वाराणसी—१

मूल्य : २-२५

“विर कुमारी सभा” में १५ हास्य-व्यंग-कथाओं का संग्रह है। सर्व प्रथम कथा विर कुमारी सभा है जिसके नाम पर ही पुस्तक का नामकरण किया गया है। ‘दम नाम’ और ‘खनानीस्तान’ नामक कथाएँ लेखक के जीवन में घटित घटनाओं-सी प्रतीत होती हैं। “पाकिस्तानी-सुसराल” में भी सुसराल के हास्य व्यंग का सजीव वातावरण उपस्थित किया गया है।

हास्य रस का जीवन में महत्व पूर्ण स्थान है। बिना हास्य के जीवन में सुनापन और मनहूमता अनुभव होती है। हिन्दी साहित्य में हास्य रस की कमी है। हम को लिखने वाले बहुत कम हैं। क्योंकि हास्य रस में शिष्ट हास्य की निर्मल धारा बहनी चाहिए। यह सब हमें श्री मोहनलालजी गुप्त के हास्य साहित्य में प्राप्त होता है। श्री गुप्त जी हिन्दी साहित्य के अनुभवी लेखक, कवि, पत्रकार और हास्य रस के भी लेखक हैं। अधिकतर लोग आपको भैयाजी बनारसी के नाम से ही जानते हैं। “विर कुमारी सभा” का हास्य कथाओं में अपना ही एक विशिष्ट स्थान है।

देवताओं के देश में

लेखक : बलभद्र ठाकुर

प्रकाशक : हिन्दी भवन, जालन्धर और इलाहाबाद

मूल्य : ६-५०

हिमालय के एक परम रमणीय स्थान कुश्लू के सामाजिक जीवन को चित्रित करने वाला यह हिन्दी साहित्य में सर्वप्रथम उपन्यास है। उपन्यास को पढ़ने के पश्चात् ‘कुश्लू’ प्रदेश की जीती जागती तसवीर आँखों के सामने खिच जाती है। हिमालय के सभी भागों में देवी-देवताओं की आदिम भावना वहाँ के समाज के मन में बद्ध मूल हो गई है जो उसकी प्रगति में बाधक हो रही है। पहाड़ी लोगों के जन जीवन में नाच, गान और परस्त्री गमन आदि अत्यन्त सामान्य बातें हैं। किन्तु इन सब को लेखक ने कुशलता पूर्वक चित्रित किया है। जिससे पाठकों को उपरति ही होगी, आसक्ति नहीं।

उपन्यास की नायिका है नरथी, लीची-लाची एक पामीण बालिका; रूप और जीवन की मूर्ति। वह अपने पाठ साल के बड़े पति ठाकुर सुधराम को छोड़कर निरतु नामक विधुर के संभार में जा बसती है। निरतु पत्नी भक्त था, के एक नरथी उससे भी बढ़कर पतिपरायण। परन्तु मन्नात्र के ठेकेदार सुमेध्व ने इन्हें सुख का जीवन व्यतीत करने नहीं दिया।

विजयदशमी के मेले का चित्रण भी सुन्दर ढंग से किया गया है। तक्षण और तरुणियों के दल एक दूसरे पर तीर फेंकते हुए पुराने लोकगीत के पद को गाते हैं :

“टिकए पंज रोजी के तंदूसे
सतसौर टिकर हरजा भरा।”

और तब इसके उत्तर में तरुणियों की टोली भी उसी गीत के अगले पद को दुहराती हुई सुखर हो उठी :

“पंजको जीरे तंदूसे
ल्लाती-पान्दे सागर बकू
हो भरा हवली साईं”

लेखक ने परिव्राजक का चित्रण भी सफलता पूर्वक किया है। परिव्राजक कान्तिकारी है। सर्वत्र कान्ति का प्रचार करता रहता है। ‘कुल्लू’ में भी उसका अद्देश्य यही रहता है। किन्तु वह वहाँ के जीवन में रम-सा जाता है। ‘कुल्लू’ के सौन्दर्य को देखकर परिव्राजक भी ‘कुल्लू’ के किसी आधुनिक कवि के मुख से सुने गीत की कुछ पंक्तियों वा ठठता है;

“देश सा म्दारा श्रुषि मुनीरा
देउआ-देवीरा प्यारा
सुखेरी मौजा लुझी परदेशीए
दुखेरा कुल्लू म्दारा
हाँ, दीले दोलेरा दमाका
देश कुल्लूरा बका बका”

नायिका नरथी परिव्राजक से कहती है : मगर अब वह मिश्रित है भाई जी; जो होना था वह हो गया। जो करना था, मैं कर बैठी। इसका कोई अफसोस मुझे नहीं है। नरथी प्राण रहते यहाँ से भाग नहीं सकती। वह आखिरी सॉफ-तक लकते-लकते इस मिट्टी में लकीर

होकर मिल जाएगी, मगर अपने घर से नहीं। दूहेगी अपने घर और जमीन जायदाद पर जीते जी किसी दूसरे को अधिकार करने नहीं देगी। किसी भी प्रकार ‘कुल्लू’ की नारी अब उसनी पिछड़ी नहीं रही जितना की पहले थी। अब वह संघर्ष के लिए तत्पर है। इसका ज्वलन्त उदाहरण उपरोक्त नरथी के कथानक में है।

पहाड़ी स्थान के सामाजिक कार्यकर्त्तों और पहाड़ी लोगों के जीवन का परिचय इस उपन्यास के पढ़ने से प्राप्त होता है। प्रस्तुत पुस्तक को एक बार पढ़ना प्रारम्भ करके फिर अगली छोरने की इच्छा नहीं होती। पुस्तक का मोटाअप और छपाई सुन्दर है।

चन्द्रगुप्त मौर्य

लेखक : धूमकेतु

अनुवादक : श्यामू सन्यासी

प्रकाशक : वीरा एण्ड कंपनी पब्लिशर्स-

प्राइवेट लिमिटेड बम्बई-२

मूल्य : ६.००

‘चन्द्रगुप्त मौर्य’ नामक उपन्यास में श्री धूमकेतु ने भारतीय इतिहास के गुप्त-काल के इतिहास का सजीव चित्रण किया है। नन्द की अनार्यता और उसके आचार्य चाणक्य हिमाचल में बैठकर नन्द और अलक्ष्मन् को विनाश की तैयारी कर रहे हैं। इसकी और आचार्य चाणक्य अपनी नीति द्वारा नन्द की पत्नी को अपने अधिकार में कर लेते हैं। नन्द की रानी अपनी पुत्री के साथ अपने पति के विरुद्ध विद्रोह पर उतारू हो जाती है।

मन्त्री राज्ञ की दुरभि सन्धियों, कूट चालें और उसके गुप्त चर आचार्य चाणक्य के मार्ग में पग पग पर बाधाएँ उपस्थित करते हैं किन्तु आचार्य चाणक्य उन्हें निरस्त करते चले जाते हैं। पहाड़ी राज्यों की समस्या का भी समाधान किया गया है।

आचार्य चाणक्य ने चन्द्रगुप्त द्वारा मगध विजय करवाकर चन्द्रगुप्त के यश को और अलोकित किया है। नन्द के सेना पति भद्रसाल का चित्रण भी अनूठे ढंग से किया गया है। जो इस उपन्यास की विशेषता है।

सत्य की परिभाषा भी एक स्थान पर आकर्षक

चाणक्य द्वारा की गई है : “कई बार सत्य को जानते हुए भी न कहना अधिक सत्य होता है। केवल कहने से ही सत्य-सत्य नहीं हो जाता। सत्य को सत्य करने के लिए लोगों में उसके प्रति विश्वास भी स्तपन करना होता है।”

पुस्तक की छपाई और गेटप सुन्दर है।

हमारे सहयोगी

ज्ञानोदय : विज्ञान अंक

सम्पादक : लक्ष्मीचन्द जैन शरद देवड़ा

प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ कलकत्ता—१

मूल्य : २-०-०

विज्ञापनों के आरंभ के कलेवर में पर्याप्त अभिवृद्धि हो गई है। लेखों का चयन सुन्दर ढंग से किया गया है। हिन्दी में विज्ञान को लोकप्रिय बनाने में इस प्रकार के विशेषांक महायुक्त सिद्ध होंगे। यह विशेषांक कई दृष्टियों महत्वपूर्ण है।

इस अंक में विज्ञान की आदि उपलब्धि अग्नि, हिन्दी में वैज्ञानिक शब्दावली की समस्या, चन्द्रवरदाई और फौजी अफसर के बीच, यंत्रयुग की हिन्दी कविता, परमाणु किरणों से नई फसले, आदि उच्च कोटि के लेख हैं। हिन्दी पत्रों की सीमित सीमाएँ होते हुए भी ‘ज्ञानोदय’ का यह प्रयास स्तुत्य है। इसके लिए सम्पादक साधुवाद के पत्र है।

१७० हाईकोर्ट रोड

हैदराबाद-२

—ऋषि मामचन्द्र कोशिक

नागिन और बुलबुले

लेखक : किशोर साहू

प्रकाशक : किताब महल,

इलाहाबाद, बम्बई, दिल्ली

मूल्य : ४-०-०

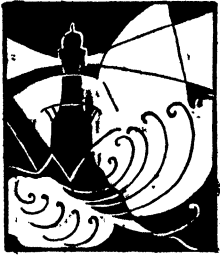
लेखक अपनी इन १२ कहानियों के संग्रह के सम्बन्ध में लिखते हैं : “नागिन और बुलबुले” की सारी कहानियाँ, ‘टेलीफोन पर’ के अतिरिक्त मेरी एकदम नई कृतियाँ हैं।...अवकाश और मूड का अनुकूल संयोग होने पर ही मैं लिखा करता हूँ।...इन कहानियों को लिखते समय लेखक के हृदय-तंत्री के तार झंकृत हो उठे थे।” हम नहीं कह सकते कि इन कहानियों को

पढ़ते समय कितने लोगों के “हृदय-तंत्री के तार झंकृत” हो उठेंगे। लेखक अपनी भूमिका में लिखते हैं : “जो साहित्यकार हाट में न गुल्लेगा और जो अपने घर के छप्पर में बैठ-बैठा केवल कल्पना के आधार पर पक्षे चर्चीता जाएगा—उसकी कृतियाँ उसके अनुभवहीन और संकुचित मस्तिष्क की खपज—नितान्त भूठी, भरी और सलत होगी।” प्रस्तुत पुस्तक में दूसरी कहानी “चाय” है और देखिए कि लेखक ने यह चाय किस प्रकार तैयार की है :

“अच्छा”, मैंने कहा, “तो थोड़ी चाय पिला दो। आए हैं तो चाय पीकर ही चलेंगे।” भागे लिखते हैं : “मेरी दृष्टि बरबस भीतर की कोठरी वाली उसी वीवार पर जमी हुई थी, जिस पर मूंगा की पगछाई पड़ रही थी। मूंगा एक ग्लान अपने स्तन से लगाए दूध निचोड़ रही थी। देखकर मैं अवाक रह गया। ‘तो मूंगा मुझे अपने दूध की चाय पिलाने जा रही है।’ मैंने सोचा। अतिथि-सत्कार की यह पराकाष्ठा थी।...चाय का स्वाद विशिष्ट था।...मूंगा की ओर देखकर मैंने कहा : ‘बड़ी अच्छी बनी है यह चाय।...ग्लान खाली करके मैंने सिगरेट सुलागाई।’ लेखक ने अपनी भूमिका में जिस “कल्पना के आधार” पर कहानी लिखने का उल्लेख किया है क्या यह “चाय” की कहानी वेमे ही आधार पर नहीं खिली गई। एक देहाती अनुभवहीन लड़की तो इस प्रकार की चाय तैयार कर सकती है—और न इस प्रकार की विशिष्ट और “भरी” चाय को कोई पी सकता है। लेखक ने अपनी इन कहानियों में अनेक स्थान पर अपनी इस प्रकार की रूचि का परिदर्शन किया गया है जिसे कि स्वस्थ और परिष्कृत नहीं कहा जा सकता। सिनेमा के लेखक जिस प्रकार साधारण जनता की निम्न भावनाओं का परिदर्शन करते हैं और अप्रोपार्जन के लिए उन्हें शोषित करते हैं—इसी प्रकार कई लेखक सर्व-सामान्य की निम्नतम भावनाओं का प्रदर्शन कर यह समझने लग जाते हैं कि वे जीवन की अनुभूतियों का और यथार्थ का चित्रण कर रहे हैं। इस प्रकार की कहानियों से कुछ विशिष्ट प्रकार के लोगों का चाहे कुछ थोड़ा-सा मनोरंजन हो जाए—तो भी शीघ्र ही उनको भी इनसे ग्लानि और उपरति होना अनिवार्य है।

हैदराबाद

—एम. एफ. त्रिपाठी



सामयिक

॥

तेलुगु साहित्य का आदिकाल तथा आधिकारिक

तेलुगु साहित्य का आरम्भ धार्मिक संघर्षों के प्रत्यक्ष रूप में हुआ। ईसा से पूर्व पहली के सातवीं शती तक जैन तथा बौद्ध धर्मों का प्रचार यहाँ अधिक हुआ। मनी राजा जैन या बौद्ध बन गए। इन दोनों धर्मों ने दक्षिण में अपना अधिकार इस तरह जमाया कि वैदिक धर्म का ह्रास-घा हो गया। सातवीं शताब्दी में कुमारिल भट्ट और शंकराचार्य आदि ने वैदिक धर्म का प्रचार किया। दसवीं शताब्दी तक जैन-बौद्ध धर्म रूपी मेघ छूट गए। वैदिक धर्म रूपी सूर्य विश्व के रंगमंच पर आकर फिर से अपना अभिनय दिखाने लगा। उस समय के कवियों का यह कर्तव्य था कि वे आर्य संस्कृति, सभ्यता तथा साहित्य को जनता में फैलाएँ। तेलुगु साहित्य के आदिकाल के कवियों ने महाभारत, रामायण तथा अनेक पुराणों का तेलुगु में अनुवाद किया। अपनी कविता के द्वारा लोगों में आर्य संस्कृति का प्रचार किया। इसी से यह “पुराण काल” कहलाया।

अमरावती तथा जगन्नाथपेट के शिलालेखों से ज्ञात होता है कि ईसा से पूर्व तीन-चार शताब्दी से आन्ध्र में जैन-बौद्ध धर्मों का विशेष व्याप्त हुआ। पुराणों में मिले आन्ध्रों के पहले यहाँ इक्ष्वाकु वंश के राजाओं ने राज्य किया। इतिहासकों का कहना है कि इक्ष्वाकु वंश के राजा लोग जैन बौद्ध धर्म पर विश्वास रखते थे।

इक्ष्वाकुओं के पश्चात् पल्लव आदि ने यहाँ शासन किया। इनके समय में बौद्ध धर्म के साथ-साथ वैदिक धर्म का भी प्रचार हुआ। इनकी राजभाषा प्राकृत थी। पल्लव वंश के राजा शैव थे। इनका राजचिह्न “नन्द” था। जब ये चालुक्य-वंशजों ने यहाँ शासन करना आरम्भ किया, तब से बौद्ध-जैनो का धर्म निरस्त हो

गया। यह सातवीं शताब्दी थी। कुमारी भट्ट ने वैदिक धर्म की नींव डाली। उनके पश्चात् शंकराचार्य ने उस नींव पर ऐसा विशाल भवन बन गया कि संसार में अब तक इसका उदाहरण नहीं मिला।

जब जैन तथा बौद्ध आन्ध्र देश में स्थान छोड़ चुके तो उन्होंने कन्नड़ देश में जाकर अपना आश्रम जमाया। उनमें पंच कवि भी एक था। जैन होने पर भी पंच कविने व्यास महाभारत का “विक्रमाजुन विजय” के नाम से कन्नड़ में अनुवाद किया। यह रचना दसवीं शताब्दी के मध्यकाल में हुई। उस समय के अधिक तेलुगु कवियों को कन्नड़ भाषा में भी विशेष परिचित था। ऐसी स्थिति में यहाँ राजराज नरेन्द्र ई. १०२२, अगस्त १६ तारीख के दिन सिंहासन पर बैठे। इनकी राजधानी राजमहेन्द्र थी।

गद्दी पर बैठने के पश्चात् राज राजा ने देखा कि जैन-बौद्ध धर्म देश में निरस्त हो गये हैं। इनके स्थान पर आर्य संस्कृति के विचार फैलाना चाहिए। जनता को वैदिक विचारधारा से परिचित कराना चाहिए। यह स्नेह कर राजा राजनरेन्द्र ने अपने दायारी कवि नक्षत्रा से निवेदन किया कि वे महाभारत का अनुवाद करें। नक्षत्रा भट्ट ने आन्ध्र महाभारत की रचना इसी दृष्टि से की कि जनता के हृदय पर फिर से वैदिक धर्म का प्रभाव पड़े। इसी दृष्टि से उन्होंने व्यास भारत की गाथा को आन्ध्र वातावरण के अनुकूल कुछ घटाया और कुछ बढ़ाया भी है। इनके बाद के कवियों ने नक्षत्रा के मार्ग पर चल कर अनेक पुराणों का अनुवाद किया। इससे तेलुगु साहित्य में यह पुराण काल कहलाया।

महाकवि नक्षत्रा भट्ट तथा उनके भारतः नक्षत्रा भट्ट, एरिप्रगडा एवं तिकन तेलुगु भाषा के कविग्रन्थ हैं। इन तीनों ने संस्कृत महाभारत का पद्य प्रबंध के रूप में आन्ध्री कन्नड़ किया; यह “आन्ध्र महाभारत” आन्ध्र भाषा के कवियों आदिः सारः कवियों का

प्रमाण ग्रन्थ माना जाता है। नक्षत्र्या ने ही महाभारत के आन्धीकरण का श्री गणेश किया। इनके पूर्व कोई छन्दोबद्ध काव्य ग्रन्थों का तेलुगु में निर्माण नहीं हुआ। यही कारण है कि इन्हें तेलुगु का प्रथम महाकवि और इनका काव्य तेलुगु में प्रथम महाकाव्य कहलाता है। इसे पूरा करने में लगभग तीन सौ वर्ष लगे हैं और तीन महान् काव्यों को इसके लिए अपने जीवन के अधिक भाग को खर्च करना पड़ा है।

नक्षत्र्या भट्ट मुद्गल गोत्र के वैदिक ब्राह्मण थे। कुछ विद्वानों का कहना है कि नक्षत्र्या के पूर्वज महाराष्ट्र ब्राह्मण थे, जो आन्ध्र देश में आकर बस गए। लेकिन यह ठीक नहीं है। कई आचार्यो के अनुसार इन्हें वेङ्गनाडा (आन्ध्र का एक गाँव) का ही ठहराया गया है।

नक्षत्र्या वेदाध्ययन-संपन्न थे और संस्कृत तथा तेलुगु उभय भाषाओं के प्रकाण्ड परिणत थे। इन्होंने भारत के मंगलाचरण में देवता की स्तुति एक संस्कृत श्लोक में की है।

कवि ने एक स्थान पर लिखा है कि महाभारत का आन्धीकरण करने में नारायण भट्ट मेरे बड़े सहायक हुए हैं।

नक्षत्र्या भट्ट महाभारत के आदि, सभा पर्व तथा अरण्य पर्व के चतुर्थ आश्रय तक आन्धीकरण करके दिवंगत हो गए। इनका लिखा “शारदारान्ध्र लुज्ज्वल-लसत्तर तारकहार पंकजुलन” नामक पद्य अंतिम था।

शैली : नक्षत्र्या भाट्टरक की शैली मृदु-मधुर एवं प्रवाहमय है। इन के शब्द अत्यन्त सरल एवं उस समय के लोगों के बोलचाल के हैं। इनकी रचना में करीब करीब दो तिहाई शब्द संस्कृत के मिलते हैं। इनकी भाषा में कठिन और क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग नहीं किया गया है इसलिए उन्हें समझने में कठिनाई नहीं होती।

नक्षत्र्या ने तपस्य व्यास की भाग्य मन्त्रिया तो अवश्य परन्तु अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए जहाँ परिवर्तन की आवश्यकता हुई वहाँ परिवर्तन कर दिया। अतः वह स्वतंत्र ग्रन्थ-मा बन गया किन्तु उसका मूल उद्देश्य उसी प्रकार का है।

संस्कृत में शकुन्तला के उपाख्यान के बाद ययाति का चरित्र है। पर नक्षत्र्या ने ययाति चरित्र के पश्चात् शकुन्तला का चरित्र रखा। व्यास ने धृतराष्ट्र के कणिक से अम्बुज की कथा सुनाई। पर नक्षत्र्या ने उस

कथा को छोड़ दिया।

भारत में नक्षत्र्या भट्ट की वैदिक दृष्टि : भारत के लिखने में कवि का मुख्य उद्देश्य यह था कि जनता में वैदिक धर्म के भावों का प्रसार हो। अब हमें यह देखना चाहिए कि नक्षत्र्या का यह उद्देश्य कहाँ तक सफल हुआ ?

कहीं-कहीं व्यास के संस्कृत श्लोकों के अनुवाद में नक्षत्र्या ने अपनी विशेष मौखिकता दिखाई। उन पद्यों में कवि ने उपासना, देवतार्चन, पूजा तथा जपादि को मुख्य कार्य के विशिष्टता दी, जो मूल में महत्व-पूर्ण नहीं हैं। उदाहरण के लिए एक संस्कृत श्लोक का अनुवाद देखिए। मूल में श्लोक इस प्रकार है :

“द्रजानामग्निहोत्रेषु यज्ञमप्रक्रियामु च
निरोकवषट्काराः स्वधा स्वाहाविवर्जिताः
विनाग्निना प्रजास्मर्वास्तत आत्मसुदुःखिताः”

जिमका अनुवाद नक्षत्र्या ने इस प्रकार किया :

“त्रिताग्न लेखन तेजारक्षमि जेसि
कनु कृत्यमुलु विनर्गत्तमुल्लये
नग्निहोत्रमुल्लदु नौयाम नादि सा
यं प्रात राहुतुल्लत नुछिगे
देवतार्चन लेदुदीप द्वादि स
द्विधुलु वर्तिस्तक विरति बोदे
वित्कार्यमुलु नितुपिड यज्ञ क्रिय
लडगे विठिन तुल्ले धरित्रि
नंत जनुलु संप्रमाकारले महा
मुनुल कडक जनिर मुनुलु नमर
वरुल कडक जनिर वारुनु
ब्रह्म कडक जनिर भयमु नोदि”

देवयानी तथा ययाति के संभाषण में भी हमें नक्षत्र्या की विशिष्टता देख पड़ती है। भगवान व्यास ने ययाति के मुँह से इतना ही कहलवाया :

“विद्यौशजसि भद्रे ते नत्वा.....भासिनी
अविता ह्यह्नि राजानो देवयानी पितुस्तव
हन्ति विप्राः सराष्ट्राणि पुराणपि हि कोपिताः”

किन्तु नक्षत्र्या का ययाति कहता है :

“छत्रिय कन्याओं से ब्राह्मण विवाह कर सकते हैं; पर ब्राह्मण कन्या से छत्रिय का विवाह धर्म विरुद्ध है। अगर मैं तुमसे विवाह करूँ तो वर्णाश्रम

अष्ट हो आया।”

यहाँ नक्षत्रा वर्णाश्रम धर्मों का यथा तथा रक्षण करना ही अधिक श्रेयस्कर समझते हैं।

और एक उदाहरण देखिए। दुष्यन्त ने कश्यप के आश्रम में प्रवेश किया। वातावरण के वर्णन में व्यास तथा नक्षत्रा के दृष्टियों में अन्तर हील पड़ता है। संस्कृत भारत में केवल प्रकृति का वर्णन ही मिलता है; किन्तु नक्षत्रा ने इस में और भी वैशिष्ट्य का मिश्रण किया है।

देखिए पद्यों का भावार्थ :—“दुष्यन्त वन के ऐसे मनोहर स्थल पर पहुँचा, जहाँ की प्रकृति के दर्शन-मात्र से तीनों दुःख दूर हो गए। मन में उठने वाली आनन्द तरंगों की सीमा नहीं रही। श्रवण मात्र ने समस्त प्राणिकोटि को पुनीत एवं पवित्र करने वाले वेदों के स्वर जहाँ मिलो व्याप्त रहा करती थी एवं जहाँ धर्मा धर्मों की अविगम चर्चा पदेव हुआ करती थी वहाँ माछात् मूर्तिमान् धर्म महर्षि कश्यप निवास करता है।”

यहाँ नक्षत्रा ने प्राकृतिक वर्णन में वेदों के श्रवणों तथा धर्म शास्त्रों की चर्चा की गोष्ठी आदि रत्न कर अपनी मौलिकता का परिचय दिया है।

नक्षत्रा ने जिय उद्देश्य को सामने रखकर महा भारत की रचना प्ररंभ की, उसमें उन्हें पूर्ण सफलता मिली।

परिदृष्टों में परंपरा से नक्षत्रा के प्रशंसा के रूप में यह निम्न लिखित श्लोक पढ़ा जाता है :

“वाचामान्ध्रमयं नाम
प्रवक्ता प्रथमोऽभवत्
आचार्यं तं कर्माश्रयां
वन्दे वागानुशासनम्”

नक्षत्रा अद्भुत तथा चन्द बरदाई : प्रथम कवि के जाते नक्षत्रा की तुलना हम हिन्दी साहित्य के चन्द बरदाई से कर सकते हैं।

१. चन्द और नक्षत्रा दोनों एक समान महा-कवि ही नहीं बरन् आदि कवि भी थे, भले ही भाषाओं में भिन्नता हो।

२. दोनों का उद्देश्य वैदिक (हिन्दू) धर्म का पुन-स्थापन करना ही था। उनके काल और परिस्थितियों में भिन्नता है।

३. दोनों राजाश्रय कवि तथा राजा के प्राथम समान थे।

४. दोनों के ग्रन्थ वास्तविकता की कसौटी पर सत्य हैं भले ही इतिहास की कसौटी पर वे सत्य न हों।

५. दोनों कवि अपने काव्यों को अपने जीवन में पूरा न कर सके।

आश्रमों में यह मानने में किसी को आपत्ति नहीं है कि नक्षत्रा तेलुगु के प्रथम कवि तथा उनकी लिखा ‘महाभारत’ तेलुगु का प्रथम काव्य है।

मुदिनेपल्ली,

गुडिबाबा (जि. कृष्णा)

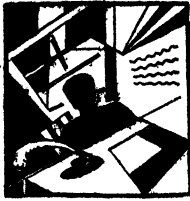
—मुराल मुसकैर्या

॥

चीन की चिकित्सा-पद्धति

चीन में प्राचीन चिकित्सा-पद्धति को पुनर्जावित करने के लिए परामन की ओर से किस प्रकार प्रयत्न किया जा रहा है इसके सम्बन्ध में “आज का चीन” में एक लेख प्रकाशित हुआ है। इस लेख में से निम्न अंश दिया जा रहा है :

“... इस समय चीन की प्राचीन चिकित्सा-पद्धति को पारचाय चिकित्सा-पद्धति के साथ जोड़ने और चीन की मेडिय-सम्बन्धी विरासत को पुनः ग्रहण करने और विकसित करने की नीति का अनुसरण किया जा रहा है। चीन के सभी भागों में बहुत-से चिकित्सा-संगठनों ने चीनी चिकित्सा-पद्धति की अल्पकालीन कक्षाओं का संगठन किया है। चिकित्सा की इस नई प्रणाली के अच्छे परिणाम निकले हैं। पीकिंग मेडिकल कालेज के डॉक्टरों ने अत्युग्र एपैरैडमाइटस की ऑपरेशन के बजाय चीनी जड़ी-बूटियों से चिकित्सा की है। चीनी चिकित्सा चीनी जनता के वर्षों के अनुभव का फल है। इस समय चीनी चिकित्सा-पद्धति की ७०,००० लोग शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। चीनी चिकित्सा-पद्धति के १३ कालेज और १०० स्कूल खोले गए हैं। चीनी चिकित्सा-पद्धति का प्रयोग करने वाले चिकित्सक तीन उम्रियों से नारी की परीक्षा करते हैं और नारी के विभिन्न लक्षणों के आधार पर चिकित्सा करते हैं। चीनी जड़ी-बूटियों के उत्पादन में भी हाल में उत्तरोत्तर वृद्धि और सुधार हुआ है। उन की किस्मों में भी वृद्धि हुई है। चीनी चिकित्सा-पद्धति के प्राचीन शास्त्र ग्रंथों को आधुनिक भाषा में पाठ्य पुस्तक के तैयार करने की दिशा में भी बहुत कुछ किया गया है।



सम्पादकीय

“अज्ञप्ता” से बिदाई

‘अज्ञप्ता’ के सम्पादकत्व के कार्य-भार को ग्रहण किए हुए हमें अब दसवाँ वर्ष चल रहा है। हमने यह कार्य मवेधा अवैतानिक रूप से किया है—यहाँ तक कि अपने किसी लेख और कविता आदि के लिए भी ‘अज्ञप्ता’ से हमने किसी प्रकार का पारिश्रमिक नहीं लिया है। यह बात नहीं है कि हम पारिश्रमिक लेना उपयुक्त नहीं समझते। ‘अज्ञप्ता’ के समस्त लेखकों को पारिश्रमिक देने का प्रयत्न किया जाता रहा है। हमें दुःख है कि लेखकों को उनकी रचनाओं के लिए जितना पारिश्रमिक दिया जाना चाहिए था वह नहीं दिया जा सका। अरुहे लेखकों और साहित्यकारों को उनकी रचनाओं के लिए जितना भी पारिश्रमिक दिया जा सके कम है। हम यह पारिश्रमिक एकमात्र एक ‘टोकन’ (Token) के रूप में ही देते थे। इस सम्बन्ध में हमारी जो विवशताएँ थीं उन्हें सुगमता से समझा जा सकता है। हम ‘अज्ञप्ता’ के संपादन के कार्य को एकमात्र सेवा-भाव से करते रहे हैं। हमें जिन प्रकार उत्तर, दक्षिण और समस्त देश के लेखकों, कवियों और साहित्यकारों का सहयोग प्राप्त हुआ है—यह उसी का परिणाम है कि हम इतने लम्बे समय तक ‘अज्ञप्ता’ का संपादन निर्विघ्न रूप से कर सके हैं। आज जब कि हम “अज्ञप्ता” के संपादन के कार्य-भार से अपने आपको मुक्त कर रहे हैं—उस समय भी हमारे कार्यालय में इतनी सामग्री है कि ‘अज्ञप्ता’ का सम्पादन इसी प्रकार अभी कई वर्षों तक किया जा सकता है। यद्यपि हम कई कारणों से विवश थे कि अपने लेखकों और कवियों को न उनके पत्र आदि का उत्तर समय पर दे पाते थे, न उनके पारिश्रमिक को ठीक समय पर भेज सकते थे—तो भी उनकी ओर से हमें जो सहयोग और सहायता प्राप्त होती रही—नमसे हमें यह विश्वास हो गया है कि जिस भाषा के साहित्यकारों से यह रिप्रेण्ड है—उस भाषा का साहित्य सर्वतोमुखी उन्नति करे—वह सम्भव है। ‘अज्ञप्ता’ के कितने ही लेखकों और पाठकों को जब यह ज्ञात हुआ कि ‘अज्ञप्ता’

का प्रकाशन आर्थिक कारणों से स्थगित किया जाने वाला है—तब उन्होंने हमें लिखा कि जब तक ‘अज्ञप्ता’ की आर्थिक स्थिति ठीक न हो जाए तब तक उनके पारिश्रमिक से कुछ लोगों को ‘अज्ञप्ता’ भेज दिया जाए। हम इस बिदाई के समय ‘अज्ञप्ता’ के उन समस्त लेखकों और कवियों के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं, जिन्होंने ‘अज्ञप्ता’ पर अपनी कृपा बनाए रखी है।

हमारा सदैव यह प्रयत्न रहा कि ‘अज्ञप्ता’ एक प्रथम कोटि की पत्रिका हो—क्योंकि हमारा यह विश्वास है कि अब ‘सेकण्ड-रेट’ पत्रिकाओं का युग समाप्त हो चुका है। अहिन्दी भाषी प्रान्तों में जो भी हिन्दी के पत्र निकलें वे प्रथम कोटि के होने चाहिए; अन्य नका अहिन्दी भाषी साहित्यकारों और जगत पर कुछ विशेष प्रभाव नहीं डाल सकता। यह सत्य है कि इसमें अधिक खर्च होता है और अनेक विवशताएँ उपस्थित हो जाती हैं—परन्तु यदि कम व्यय करके पत्रिका का संचालन कर भी लिया जाए तो इससे आर्थिक नुकसान के कम होते हुए भी किसी विशेष लाभ की संभावना नहीं है। इस अभी जित्त युग में से गुजर रहे हैं—इसमें अभी प्रथम कोटि की साहित्यिक और सांस्कृतिक पत्रिकाओं को पर्याप्त समय तक पर्याप्त आर्थिक हानि उठानी पड़ेगी। संस्कृति और साहित्य के क्षेत्र में अर्थ-लाभ ही सबसे महान् प्राप्ति नहीं हो सकती, यद्यपि यह सत्य है कि बिना अर्थ के ये समस्त कार्य संचालन नहीं हो सकते। हम अपने सम्पादक-काल में ‘अज्ञप्ता’ को साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि से प्रथम कोटि की पत्रिका कहाँ तक बना सके, इस विषय में मत-भेद हो सकते हैं। हमारा मुख्य कार्य ‘अज्ञप्ता’ का सम्पादन नहीं था, क्योंकि हमें दिन भर अन्य कार्यों में व्यस्त रहना पड़ता था और ‘अज्ञप्ता’ का कार्य प्रायः हम रात्रि में किया करते थे। इसलिए यदि हमें अपने कार्य में सफलता प्राप्त न हुई हो—तो इस सम्बन्ध में हमारी कठिनाई को समझा जा सकता है परन्तु जहाँ तक हम से संभव था, हमने इसके लिए अपनी ओर से पूरा प्रयत्न किया।

‘अजन्ता’ के सम्पादन-विभाग पर तो हमारे सम्पादन काल में कुछ विशेष व्यय ही नहीं किया गया। इसके अतिरिक्त इसके व्यवस्था-विभाग पर भी जिस प्रकार का व्यय किया जाना चाहिए था-वह भी नहीं किया गया। हमारा विश्वास है कि यदि ‘अजन्ता’ के व्यवस्था-विभाग का समुचित प्रबन्ध किया जाता तो ‘अजन्ता’ को इतनी अर्थ-हानि न होती। ‘अजन्ता’ के प्रभों से ले कर सम्पादन और व्यवस्था आदि के कार्य का उत्तरदायित्व एक व्यक्ति के लिए इतने वर्षों तक निभा सकना अत्यन्त कठिन था और यही कारण था कि हमारे लिए ‘अजन्ता’ के समस्त कार्य को सुचारु और व्यवस्थित रूप से चला सकना-कठिन ही नहीं असंभव था। कोई भी महान् कार्य कुछ योग्य और उत्तरदायित्व पूर्ण व्यक्तियों के सहयोग और सहायता के बिना नहीं किया जा सकता। हम समझते हैं कि यदि हमें उपयुक्त सहयोग प्राप्त होता तो ‘अजन्ता’ का सम्पादन अधिक व्यवस्थित और सुचारु रूप से किया जा सकता और ‘अजन्ता’ को इतनी आर्थिक हानि न उठानी पड़ती।

हमारे देश में सांस्कृतिक और साहित्यिक मासिक पत्र-पत्रिकाओं के लिए आर्थिक दृष्टि से अभी उपयुक्त वातावरण उत्पन्न नहीं हुआ है। कितने ही पत्रों को आर्थिक-संकटों के कारण बन्द करना पड़ा है। अभी तो हिन्दी-भाषी क्षेत्रों में ही हिन्दी के मासिक-पत्रों की स्थिति बहुत-कुछ ढोंवाडोल है—फिर अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में हिन्दी पत्र-पत्रिकाएँ आर्थिक दृष्टि से किस प्रकार पनप सकती हैं? हिन्दी-प्रचार-सभा ने ‘अजन्ता’ को पर्याप्त धाटा उठाकर ११ वर्ष तक चलाया, यह उसके लिए कम गौरव की बात नहीं है। सभा इस पत्रिका को अब भी चलाना नहीं चाहती-यह बात नहीं है परन्तु इस समय सभा की आर्थिक स्थिति इस प्रकार की हो गई है कि उसके लिए पत्रिका को इस रूप में चला सकना सम्भव नहीं है। वह इसके लिए अब विवशता को अनुभव कर रही है। हमें अपने सम्पादन-काल में सभा के अधिकारियों से जो सहयोग और सहायता प्राप्त होती रही है उस के लिए हम उनके प्रति अपनी कृतज्ञता अभिव्यक्त करते हैं।

हमने ‘अजन्ता’ में इन दस वर्षों में ‘सम्पादकीय’ में अधिकतर हिन्दी और भारतवर्ष की भाषाओं के सम्बन्ध में ही लिखा है। हमारा सदा यह प्रयत्न रहा

है कि अहिन्दी-भाषी प्रान्तों की जनता के सम्मुख हिन्दी के सम्बन्ध में सच्चा और स्वस्थ दृष्टिकोण प्रस्तुत किया जाए; हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं में पारस्परिक सौहार्द के सम्बन्धों को विकसित और विस्तृत किया जाए और देश में इस प्रकार का वातावरण उत्पन्न किया जाए जिस से कि हिन्दी और समस्त भारतीय भाषाएँ विश्व के साहित्य और संस्कृति में अपना उपयुक्त स्थान प्राप्त कर सकें। हम समझते हैं कि अभी हमारे देश में इस प्रकार का वातावरण उत्पन्न नहीं हुआ है, इसके लिए जन-मत को उत्पन्न करने की आवश्यकता है। हमारे कई पाठक संभवतः यह सोचते होंगे कि क्या कारण है कि ‘अजन्ता’ के ‘सम्पादकीय’ में प्रायः हिन्दी और भारतीय भाषाओं और उनकी समस्याओं आदि के सम्बन्ध में ही अधिकतर लिखा जाता है? इस पत्रिका का संचालन हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद द्वारा किया जाता था—इसलिए यह आवश्यक था कि हिन्दी और अन्य भाषा सम्बन्धी समस्याओं पर ही ‘सम्पादकीय’ में अधिकतर विचार किया जाता।

‘अजन्ता’ के लिए हिन्दी के समस्त गण्य-मान प्रकाशकों की ओर से ‘नीर-क्षीर’ में आलोचना के लिए पुस्तकें प्राप्त होती रहीं हैं। हमें दुःख है कि हम ‘नीर-क्षीर’ को जितने पृष्ठ देना चाहते थे नहीं दे पाते थे। हम आलोचना विस्तृत करना चाहते थे—इसलिए हम जितनी पुस्तकों की आलोचना करना चाहते थे नहीं कर सकते थे। हम उन प्रकाशकों से क्षमा-प्रार्थी हैं जिनके पुस्तकों की आलोचना हम प्रकाशित नहीं कर सके हैं।

पिछले कुछ समय से ‘अजन्ता’ के प्रकाशन में भी पर्याप्त अव्यवस्था हो गई थी। इसके अनेक कारण थे और अब उन कारणों के विस्तार में जाना हमें उचित नहीं प्रतीत होता। इन्हीं विवशताओं के कारण हमें इस वर्ष में बहुत-से दो-मासों के सम्मिश्रित अंक निकालने पड़े हैं।

हम ‘अजन्ता’ के लेखकों, कवियों साहित्यकारों और पाठकों से विदाई लेते हैं। अक्टूबर-नवम्बर के अंक के पश्चात् ‘अजन्ता’ निकलेगी या नहीं या किस रूप में निकलेगी-इस विषय में हमें कुछ ज्ञात नहीं है। इस के सम्बन्ध में सभा के अधिकारियों की जो नीति होगी वे स्वयं ही इसकी सूचना प्रदान करेंगे।

